।। श्री तन्त्रसारः - अभिनवगुप्तपाद विरचित ।।

श्री तन्त्रसार

अभिनवगुप्त कृत

श्लोक-बद्ध अनुवाद सहित

संस्कृत से हिंदी अनुवाद, श्लोक-दर-श्लोक अनुवाद और
शब्द-दर-शब्द शब्दकोश (विशेष संस्करण)

https://occultguide.com/scripture/tantrasaar_hindi/

OccultGuide.com

OCCULTGUIDE PUBLICATIONS

ॐ तत्सत्स्वात्मसंविद्रूपे शंभवे नमः ।

तन्त्रसारः

तन्त्रालोक का सार, स्वयं अभिनवगुप्त द्वारा

मूल पाठ · हिन्दी अनुवाद · पदपाठ

OCCULTGUIDE.COM

OCCULTGUIDE.COM

विषय-सूची

	भूमिका	iv
१	विज्ञानभेदप्रकाशनम्	१
२	अनुपायप्रकाशनम्	१६
३	शाम्भवोपायप्रकाशनम्	२२
४	शाक्तोपायप्रकाशनम्	४०
५	आणवप्रकाशनम्	६७
६	कालाध्वप्रकाशनम्	८८
७	देशाध्वप्रकाशनम्	१२०
८	तत्त्वस्वरूपप्रकाशनम्	१३५
९	तत्त्वभेदप्रकाशनम्	१७०
१०	कलाध्वप्रकाशनम्	१९७
११	शक्तिपातप्रकाशनम्	२०८
१२	स्नानप्रकाशनम्	२३०
१३	समयिदीक्षाप्रकाशनम्	२३८
१४	पुत्रकदीक्षाप्रकाशनम्	२७६
१५	सप्रत्ययदीक्षाप्रकाशनम्	२८९
१६	परोक्षदीक्षाप्रकाशनम्	२९५
१७	लिङ्गोद्धरणम्	३०५
१८	अभिषेकप्रकाशनम्	३११
१९	श्राद्धदीक्षाप्रकाशनम्	३१६
२०	शेषवर्तनप्रकाशनम्	३२४
२१	आगमप्रामाण्यप्रकाशनम्	३६०

॥ श्रीः ॥

भूमिका

ग्रन्थ

तन्त्रसार अभिनवगुप्त के अपने विशाल तन्त्रालोक का संक्षिप्त रूप है, जिसमें उस ग्रन्थ के सैंतीस आह्निकों को समेटकर बाईस आह्निकों में बाँधा गया है। पहले ही आह्निक में वे अपना उद्देश्य बताते हैं — तन्त्रालोक इतना विस्तृत है कि सब उसमें नहीं उतर सकते, इसलिए यहाँ उसका सार "सीधे शब्दों" (ऋजुवचन) में दिया जा रहा है। यह ग्रन्थ त्रिक सम्प्रदाय का है, जिसका मूल शास्त्र मालिनीविजयोत्तर है, और यह तन्त्रालोक की ही शिक्षा कम विस्तार में देता है — अधिकांश भाग गद्य में, और प्रत्येक आह्निक के अन्त में संग्रह-श्लोक, जो गद्य में कही बात को समेट देते हैं।

आरम्भ में ही मूल सिद्धान्त कहा गया है: ज्ञान ही मुक्त करता है, क्योंकि वह बाँधने वाले अज्ञान को मिटा देता है। अज्ञान दो प्रकार का है — बुद्धि का, जो सही निश्चय का अभाव है, और पुरुष का, जो सिकुड़ी हुई, बाँटने वाली चेतना है और संसार की जड़ है। दीक्षा दूसरे को हटाती है, पर दीक्षा के योग्य मन के लिए पहले वाला — परमेश्वर के वचन पर टिका पक्का ज्ञान — आवश्यक है, और त्रिक शास्त्र ही उस वचन का सार हैं।

विषय-वस्तु

पहला आह्निक ज्ञान के भेदों और प्रकाशरूप आत्मा के स्वरूप से आरम्भ होता है। अगले चार (२–५) मुक्ति के चार उपायों को घटते क्रम में लेते हैं: अनुपाय, शाम्भवोपाय (केवल इच्छा से), शाक्तोपाय (ज्ञान से), और आणवोपाय, जो अभ्यास से सिद्ध होता है। आह्निक ६–१० उस सृष्टि-संरचना की ओर मुड़ते हैं जिसे साधक को समझना है — कालाध्वा, देशाध्वा, और तत्त्वों का स्वरूप व भेद, कलाओं के मार्ग तक।

आह्निक ११ शक्तिपात, अर्थात् कृपा के अवतरण को बताता है, जो यह तय करता है कि कौन-सा जीव किस उपाय के योग्य है। आह्निक १२–१९ दीक्षा की विधि को चरण-दर-चरण बताते हैं: स्नान, समयी बनाने वाली समयि-दीक्षा, शिक्षा का उत्तराधिकारी बनाने वाली पुत्रक-दीक्षा, चिह्न-सहित दीक्षा और अनुपस्थित के लिए परोक्ष-दीक्षा, लिङ्गोद्धरण, अभिषेक, और मृतकों के लिए श्राद्ध-दीक्षा। आह्निक २० दीक्षा के बाद के आचरण को बताता है, २१ इस पूरे ग्रन्थ के आधार — शास्त्र के प्रामाण्य — की रक्षा करता है, और बाईसवाँ व अन्तिम आह्निक कुल-याग के साथ ग्रन्थ को पूर्ण करता है।

यह संस्करण

संस्कृत — गद्य और पद्य दोनों — यहाँ अपने प्राप्त पाठ में पूर्ण रूप से दी गई है। श्लोक-संख्या पूरे ग्रन्थ में एक साथ चलती है (बाईस आह्निकों में १–८८); अधिकांश गद्य-अनुच्छेदों की अपनी मुद्रित संख्या नहीं है और उन्हें यहाँ उस श्लोक के अनुसार दर्शाया गया है जिसकी ओर वे ले जाते हैं। हमारा कार्य पाठ को यथावत् पहुँचाना रहा है, उसमें संशोधन करना नहीं।

अनुवाद हमारा अपना है, इस संस्करण के लिए संस्कृत से नए सिरे से किया गया — अनुच्छेद-अनुच्छेद और श्लोक-श्लोक। पदपाठ की पंक्ति पाठ की अपनी बनावट का अनुसरण करती है: श्लोक में एक-एक शब्द करके, और गद्य में, जहाँ वाक्य-रचना छन्द की पंक्ति के बजाय वाक्यों में चलती है, वाक्यांश-दर-वाक्यांश।

पृष्ठ को कैसे पढ़ें

पाठ की हर इकाई — चाहे श्लोक हो या गद्य-अनुच्छेद — एक ही चार परतों में दी गई है।

देवनागरी में **संस्कृत पाठ**, हाशिए में उसकी संख्या के साथ, प्राप्त पाठ है।

उसके नीचे **अनुवाद** है, जो पहले पाठ के प्रति निष्ठावान और फिर सुपाठ्य होने का प्रयास करता है, यथासम्भव पाठ के अपने ही विचार-क्रम को बनाए रखते हुए।

पदपाठ की पंक्ति संस्कृत को शब्दों या वाक्यांशों में तोड़ती है, हर एक के नीचे संक्षिप्त अर्थ के साथ। यह संस्कृत को समझने में सहायक है, दूसरा अनुवाद नहीं। थोड़ा संस्कृत जानने वाला पाठक इसे पृष्ठ की सबसे उपयोगी पंक्ति पाएगा; बिना संस्कृत जाने वाला इसे निःसंकोच छोड़ सकता है।

हर आह्निक अपनी कोलोफन-पंक्ति (फलश्रुति) के साथ समाप्त होता है, जो प्राप्त पाठ का ही भाग है और अन्य किसी भी अंश की तरह अनूदित है।

आभार

यह पुस्तक OccultGuide.com द्वारा **निःशुल्क** उपलब्ध कराई गई है।
इसे बिना किसी परिवर्तन के प्रतिलिपि कर साझा किया जा सकता है।

अनुवाद और सहायक सामग्री OccultGuide.com का कार्य है। सुधार सादर आमन्त्रित हैं और भविष्य के संस्करणों में सम्मिलित किए जाएँगे।

॥ श्रीः ॥

प्रथममाह्निकम्

विज्ञानभेदप्रकाशनम्

पहला आह्निक बताता है कि यह ग्रन्थ क्यों लिखा गया और इसमें क्या सिखाया जाएगा। माता और पिता को, जिनके मिलन से उनका अपना हृदय बना है, विशाल तन्त्रालोक को और अपने गुरु शम्भुनाथ को प्रणाम करके अभिनवगुप्त कहते हैं कि तन्त्रालोक इतना विस्तृत है कि सब उसमें नहीं उतर सकते, इसलिए यहाँ उसका सार सीधे शब्दों में दिया जा रहा है। फिर मूल सिद्धान्त: ज्ञान मुक्त करता है, क्योंकि वह बाँधने वाले अज्ञान को मिटा देता है। अज्ञान दो तरह का है — बुद्धि का अज्ञान, जो निश्चय का न होना या उलटा निश्चय है, और पुरुष का अज्ञान, जो सिकुड़ी हुई, बाँटने वाली चेतना है और संसार की जड़ है। दीक्षा दूसरे को हटाती है, पर दीक्षा के लिए भी ऐसा मन चाहिए जो पहले से जानता हो कि क्या लेना है और क्या छोड़ना है; इसलिए बुद्धि का पक्का ज्ञान पहले आता है, और अभ्यास से वह गहरे अज्ञान को भी नष्ट कर देता है। ऐसा ज्ञान शास्त्र पर टिका है, और हर बन्धन से छुड़ाने वाला शास्त्र केवल परमेश्वर का कहा हुआ है — उसमें त्रिक शास्त्र सार हैं, और उनमें भी मालिनीविजय। फिर उपोद्घात: पाने योग्य एक ही चीज़ है, अपना स्वभाव, और वह स्वभाव प्रकाश है। प्रकाश एक है, स्वतन्त्र है, व्यापक और नित्य है; उसकी स्वतन्त्रता ही आनन्द, इच्छा, चित्, ज्ञान और क्रिया है। यही शिव है। अपनी स्वतन्त्रता से वह अपने को सिकुड़े हुए जीव के रूप में दिखाता है, और उसी स्वतन्त्रता से फिर अपने को असीम प्रकाश के रूप में प्रकट करता है — बिना किसी उपाय के, या इच्छा, ज्ञान या क्रिया के द्वारा। ये चार मार्ग ही इस ग्रन्थ का विषय हैं।

विमलकलाश्रयाभिनवसृष्टिमहा जननी भरिततनुश्च पञ्चमुखगुप्तरुचिर्जनकः ।
तदुभययामलस्फुरितभावविसर्गमयं हृदयमनुत्तरामृतकुलं मम संस्फुरतात् ॥१॥ १

मेरा हृदय जागे और चमके — वह हृदय जो सबसे ऊँचे, अमर तत्त्व के कुल का है। यह माता और पिता के मिलन से जन्मा है: माता, जो शुद्ध रचनात्मक शक्ति पर टिकी हैं और नित्य नई सृष्टि की महान जननी हैं, और पिता, जो अपने में पूर्ण हैं और जिनका प्रकाश पाँच मुखों के पीछे छिपा है।

पदपाठ विमल-कला-आश्रय-अभिनव-सृष्टि-महा — शुद्ध रचनात्मक शक्ति पर टिकी, नित्य नई सृष्टि की महान जननी · जननी — माता · भरित-तनुः — अपने में पूर्ण · च — और · पञ्च-मुख-गुप्त-रुचिः — जिनका प्रकाश पाँच मुखों के पीछे छिपा है · जनकः — पिता · तद्-उभय-यामल-स्फुरित-भाव-विसर्ग-मयम् — उन दोनों के मिलन से जन्मा · हृदयम् — हृदय · अनुत्तर-अमृत-कुलम् — सबसे ऊँचे, अमर तत्त्व के कुल का · मम — मेरा · संस्फुरतात् — जागे और चमके

विततितन्त्रालोको विगाहितुं नैव शक्यते सर्वैः ।
ऋजुवचनविरचितमिदं तु तन्त्रसारं ततः शृणुत ॥२॥ २

विस्तृत तन्त्रालोक में सब नहीं उतर सकते। इसलिए सीधे शब्दों में रचे हुए इस तन्त्रसार को — तन्त्र के सार को — सुनो।

पदपाठ वितत-तन्त्रालोकः — विस्तृत तन्त्रालोक · विगाहितुम् — में उतरना · न — नहीं · एव — ही · शक्यते — सम्भव है · सर्वैः — सबके लिए · ऋजु-वचन-विरचितम् — सीधे शब्दों में रचा हुआ · इदम् — यह · तु — पर · तन्त्रसारम् — तन्त्रसार, तन्त्र का सार · ततः — इसलिए · शृणुत — सुनो

श्रीशंभुनाथभास्करचरणनिपातप्रभापगतसंकोचम् ।
अभिनवगुप्तहृदम्बुजमेतद्विचिनुत महेशपूजनहेतोः ॥३॥ ३

यह अभिनवगुप्त का हृदय-कमल है, जो श्रीशम्भुनाथ-रूपी सूर्य की किरणों के प्रकाश से खिल गया है। महेश की पूजा के लिए इसे चुन लो।

पदपाठ श्री-शंभुनाथ-भास्कर-चरण-निपात-प्रभा-अपगत-संकोचम् — जिसका बन्द होना श्रीशम्भुनाथ-रूपी सूर्य की किरणों के पड़ने से मिट गया है · अभिनवगुप्त-हृद्-अम्बुजम् — अभिनवगुप्त का हृदय-कमल · एतत् — यह · विचिनुत — चुन लो · महेश-पूजन-हेतोः — महेश की पूजा के लिए

इह ज्ञानं मोक्षकारणं बन्धनिमित्तस्य अज्ञानस्य विरोधकत्वात्; द्विविधं च अज्ञानं बुद्धिगतं पौरुषं च; तत्र बुद्धिगतम् अनिश्चयस्वभावं, विपरीतनिश्चयात्मकं च । ४.१

पौरुषं तु विकल्पस्वभावं संकुचितप्रथात्मकं, तदेव च मूलकारणं संसारस्य इति वक्ष्यामो मलनिर्णये ।

यहाँ ज्ञान मोक्ष का कारण है, क्योंकि वह बन्धन के कारण अज्ञान का विरोधी है। अज्ञान दो तरह का है: बुद्धि का अज्ञान और पुरुष का अज्ञान। बुद्धि का अज्ञान निश्चय का न होना, या उलटा निश्चय है। पुरुष का अज्ञान बाँटने वाला विचार है — सिकुड़ा हुआ प्रकाशन — और वही संसार का मूल कारण है, जैसा हम मल के निर्णय में कहेंगे।

पदपाठ इह ज्ञानं मोक्षकारणम् — यहाँ ज्ञान मोक्ष का कारण है · बन्ध-निमित्तस्य अज्ञानस्य विरोधकत्वात् — क्योंकि वह बन्धन के कारण अज्ञान का विरोधी है · द्विविधं च अज्ञानम् — और अज्ञान दो तरह का है · बुद्धिगतं पौरुषं च — बुद्धि का और पुरुष का · तत्र बुद्धिगतम् — उनमें बुद्धि का · अनिश्चय-स्वभावम् — निश्चय का न होना है · विपरीत-निश्चय-आत्मकं च — और उलटा निश्चय है · पौरुषं तु — पर पुरुष का · विकल्प-स्वभावम् — विकल्प-स्वभाव है, बाँटने वाला विचार है · संकुचित-प्रथा-आत्मकम् — सिकुड़ा हुआ प्रकाशन है · तदेव च मूलकारणं संसारस्य — और वही संसार का मूल कारण है · इति वक्ष्यामः मल-निर्णये — यह हम मल के निर्णय में कहेंगे

तत्र पौरुषम् अज्ञानं दीक्षादिना निवर्तेतापि, किं तु दीक्षापि बुद्धिगते अनध्यवसायात्मके अज्ञाने सति न संभवति—हेयोपादेयनिश्चयपूर्वकत्वात्४.२ तत्त्वशुद्धिशिवयोजनारूपाया दीक्षाया इति ।

उनमें पुरुष का अज्ञान दीक्षा आदि से हट भी सकता है। पर जब तक बुद्धि में निश्चय-हीन अज्ञान है, तब तक दीक्षा भी सम्भव नहीं — क्योंकि दीक्षा, जो तत्त्वों की शुद्धि और शिव से जोड़ना है, उससे पहले यह पक्का निश्चय चाहिए कि क्या छोड़ना है और क्या लेना है।

पदपाठ तत्र पौरुषम् अज्ञानम् — उनमें पुरुष का अज्ञान · दीक्षा-आदिना निवर्तेत अपि — दीक्षा आदि से हट भी सकता है · किं तु दीक्षा अपि — पर दीक्षा भी · बुद्धिगते अनध्यवसाय-आत्मके अज्ञाने सति — जब तक बुद्धि में निश्चय-हीन अज्ञान है · न संभवति — सम्भव नहीं · हेय-उपादेय-निश्चय-पूर्वकत्वात् — क्योंकि उससे पहले यह निश्चय चाहिए कि क्या छोड़ना है और क्या लेना है · तत्त्व-शुद्धि-शिव-योजना-रूपायाः दीक्षायाः — दीक्षा का, जो तत्त्वों की शुद्धि और शिव से जोड़ना है · इति — ऐसा

तत्र अध्यवसायात्मकं बुद्धिनिष्ठमेव ज्ञानं प्रधानम्, तदेव च अभ्यस्यमानं पौरुषमपि अज्ञानं निहन्ति, विकल्पसंविदभ्यासस्य अविकल्पान्ततापर्यवसानात् । ४.३

विकल्पासंकुचितसंवित्प्रकाशरूपो हि आत्मा शिवस्वभाव इति सर्वथा समस्तवस्तुनिष्ठं सम्यङ्निश्चयात्मकं ज्ञानमुपादेयम् ।

इसलिए मुख्य है बुद्धि में टिका हुआ निश्चय-रूप ज्ञान। उसी का अभ्यास पुरुष के अज्ञान को भी नष्ट कर देता है, क्योंकि विकल्प-रूप चेतना का अभ्यास अन्त में निर्विकल्प में जा टिकता है। आत्मा तो विकल्प से न सिकुड़ी चेतना का प्रकाश है — स्वभाव से शिव है। इसलिए हर तरह से लेने योग्य है वह सही निश्चय-रूप ज्ञान, जो सब वस्तुओं पर टिका हो।

पदपाठ तत्र अध्यवसाय-आत्मकं बुद्धि-निष्ठम् एव ज्ञानं प्रधानम् — इसलिए मुख्य है बुद्धि में टिका हुआ निश्चय-रूप ज्ञान · तत् एव च अभ्यस्यमानम् — और वही, अभ्यास किया जाता हुआ · पौरुषम् अपि अज्ञानं निहन्ति — पुरुष के अज्ञान को भी नष्ट कर देता है · विकल्प-संवित्-अभ्यासस्य — क्योंकि विकल्प-रूप चेतना का अभ्यास · अविकल्प-अन्तता-पर्यवसानात् — अन्त में निर्विकल्प में जा टिकता है · विकल्प-असंकुचित-संवित्-प्रकाश-रूपः हि आत्मा — क्योंकि आत्मा विकल्प से न सिकुड़ी चेतना का प्रकाश है · शिव-स्वभावः इति — शिव-स्वभाव है — इसलिए · सर्वथा — हर तरह से · समस्त-वस्तु-निष्ठम् — सब वस्तुओं पर टिका · सम्यक्-निश्चय-आत्मकं ज्ञानम् — सही निश्चय-रूप ज्ञान · उपादेयम् — लेने योग्य है

तच्च शास्त्रपूर्वकम् ।
शास्त्रं च परमेश्वरभाषितमेव प्रमाणम् ।
अपरशास्त्रोक्तानामर्थानां तत्र वैविक्त्येन अभ्युपगमात्
तदर्थातिरिक्तयुक्तिसिद्धनिरूपणाच्च, तेन अपरागमोक्तं ज्ञानं तावत एव
बन्धात् विमोचकम्, न सर्वस्मात्, सर्वस्मात् तु विमोचकं परमेश्वरशास्त्रं, ४.४
पञ्चस्रोतोमयं दशाष्टादशवस्वष्टभेदभिन्नम् ।
ततोऽपि सर्वस्मात् सारं षडर्धशास्त्राणि ।
तेभ्योऽपि मालिनीविजयम् ।
तदन्तर्गतश्चार्थः संकलय्याशक्यो निरूपयितुम् ।

और वह ज्ञान शास्त्र पर टिका है। प्रमाण-रूप शास्त्र केवल परमेश्वर का कहा हुआ है — क्योंकि वह दूसरे शास्त्रों में कहे विषयों को अलग-अलग अपनी जगह स्वीकार करता है, और उनसे आगे की बात युक्ति से सिद्ध करके बताता भी है। इसलिए दूसरे आगमों में कहा ज्ञान उतने ही बन्धन से छुड़ाता है, सबसे नहीं; सबसे छुड़ाने वाला परमेश्वर का शास्त्र है, जो पाँच स्रोतों का बना है और दस, अठारह और चौंसठ भेदों में बँटा है। उस सबका सार त्रिक के शास्त्र हैं; उनमें भी मालिनीविजय; और उसके भीतर का विषय बिना समेटे बताया नहीं जा सकता।

पदपाठ तत् च शास्त्र-पूर्वकम् — और वह शास्त्र पर टिका है · शास्त्रं च परमेश्वर-भाषितम् एव प्रमाणम् — और प्रमाण-रूप शास्त्र केवल परमेश्वर का कहा हुआ है · अपर-शास्त्र-उक्तानाम् अर्थानाम् — दूसरे शास्त्रों में कहे विषयों को · तत्र वैविक्त्येन अभ्युपगमात् — क्योंकि वह उन्हें वहाँ अलग-अलग करके स्वीकार करता है · तत्-अर्थ-अतिरिक्त-युक्ति-सिद्ध-निरूपणात् च — और क्योंकि वह उनसे आगे की बात युक्ति से सिद्ध करके बताता है · तेन — इसलिए · अपर-आगम-उक्तं ज्ञानम् — दूसरे आगमों में कहा ज्ञान · तावतः एव बन्धात् विमोचकम् — उतने ही बन्धन से छुड़ाता है · न सर्वस्मात् — सबसे नहीं · सर्वस्मात् तु विमोचकं परमेश्वर-शास्त्रम् — पर सबसे छुड़ाने वाला परमेश्वर का शास्त्र है · पञ्च-

स्रोतः-मयम् — पाँच स्रोतों का बना · दश-अष्टादश-वसु-अष्ट-भेद-भिन्नम् — दस, अठारह और चौंसठ भेदों में बँटा · ततः अपि सर्वस्मात् सारम् — और उस सबका सार · षडर्ध-शास्त्राणि — त्रिक के शास्त्र हैं · तेभ्यः अपि मालिनीविजयम् — और उनमें भी मालिनीविजय · तत्-अन्तर्गतः च अर्थः — और उसके भीतर का विषय · संकलय्य अशक्यः निरूपयितुम् — बिना समेटे बताया नहीं जा सकता

न च अनिरूपितवस्तुतत्त्वस्य मुक्तत्वं मोचकत्वं वा, शुद्धस्य ज्ञानस्यैव तथारूपत्वात् इति । ४.५

स्वभ्यस्तज्ञानमूलत्वात् परपुरुषार्थस्य तत्सिद्धये इदम् आरभ्यते

और जिसने वस्तु का तत्त्व नहीं जाना, वह न मुक्त हो सकता है, न मुक्त कर सकता है, क्योंकि केवल शुद्ध ज्ञान ही ऐसा है। परम पुरुषार्थ की जड़ अच्छी तरह अभ्यास किया हुआ ज्ञान है, इसलिए उसे सिद्ध करने के लिए यह ग्रन्थ आरम्भ किया जाता है।

पदपाठ न च — और न · अनिरूपित-वस्तु-तत्त्वस्य — जिसने वस्तु का तत्त्व नहीं जाना, उसके लिए · मुक्तत्वं मोचकत्वं वा — मुक्त होना या मुक्त करना है · शुद्धस्य ज्ञानस्य एव तथा-रूपत्वात् इति — क्योंकि केवल शुद्ध ज्ञान ही ऐसा है · स्वभ्यस्त-ज्ञान-मूलत्वात् पर-पुरुषार्थस्य — क्योंकि परम पुरुषार्थ की जड़ अच्छी तरह अभ्यास किया हुआ ज्ञान है · तत्-सिद्धये — उसे सिद्ध करने के लिए · इदम् आरभ्यते — यह ग्रन्थ आरम्भ किया जाता है

अज्ञानं किल बन्धहेतुरुदितः शास्त्रे मलं तत्स्मृतं
पूर्णज्ञानकलोदये तदखिलं निर्मूलतां गच्छति ।
ध्वस्ताशेषमलात्मसंविदुदये मोक्षश्च तेनामुना
शास्त्रेण प्रकटीकरोमि निखिलं यज्ज्ञेयतत्त्वं भवेत् ॥

४

शास्त्र कहता है कि अज्ञान बन्धन का कारण है, और उसे मल कहता है। पूर्ण ज्ञान की एक कला भी उदय हो तो वह सारा निर्मूल हो जाता है; और जब सारा मल नष्ट होकर आत्म-संवित् का उदय होता है, वही मोक्ष है। इसलिए इस शास्त्र से मैं सम्पूर्ण जानने योग्य तत्त्व को प्रकट करता हूँ।

पदपाठ **अज्ञानम्** — अज्ञान · **किल** — सचमुच · **बन्ध-हेतुः** — बन्धन का कारण · **उदितः** — कहा गया है · **शास्त्रे** — शास्त्र में · **मलम्** — मल · **तत्** — वह · **स्मृतम्** — कहलाता है · **पूर्ण-ज्ञान-कला-उदये** — पूर्ण ज्ञान की एक कला भी उदय होने पर · **तत्** — वह · **अखिलम्** — पूरा · **निर्मूलताम्** — निर्मूल हो जाने को · **गच्छति** — जाता है · **ध्वस्त-अशेष-मल-आत्म-संवित्-उदये** — सारे मल के नष्ट होने पर आत्म-संवित् के उदय में · **मोक्षः** — मोक्ष · **च** — और · **तेन** — इसलिए · **अमुना** — इस · **शास्त्रेण** — शास्त्र से · **प्रकटीकरोमि** — मैं प्रकट करता हूँ · **निखिलम्** — सम्पूर्ण · **यत्** — जो · **ज्ञेय-तत्त्वम्** — जानने योग्य तत्त्व · **भवेत्** — हो

— उपोद्घातः —

तत्र इह स्वभाव एव परमोपादेयः, स च सर्वभावानां प्रकाशरूप एव अप्रकाशस्य स्वभावतानुपपत्तेः; स च नानेकः प्रकाशस्य तदितरस्वभावानुप्रवेशायोगे स्वभावभेदाभावात्; देशकालावपि च अस्य न ५.१ भेदकौ, तयोरपि तत्प्रकाशस्वभावत्वात्, इति एक एव प्रकाशः, स एव च संवित्, अर्थप्रकाशरूपा हि संवित् इति सर्वेषामत्र अविवाद एव ।

अब यहाँ अपना स्वभाव ही सबसे बड़ा पाने योग्य है। सब वस्तुओं का स्वभाव प्रकाश ही है, क्योंकि जो प्रकाश नहीं, वह किसी का स्वभाव नहीं हो सकता। और वह प्रकाश अनेक नहीं है: प्रकाश में उससे भिन्न कोई स्वभाव प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिए उसमें कोई भेद नहीं। देश और काल भी उसे नहीं बाँटते, क्योंकि वे भी उसी प्रकाश-स्वभाव के हैं। इसलिए प्रकाश एक ही है। और वही चेतना है, क्योंकि चेतना वस्तुओं का प्रकाशित होना ही है — इस पर किसी का विवाद नहीं।

पदपाठ तत्र इह स्वभावः एव परम-उपादेयः — अब यहाँ अपना स्वभाव ही सबसे बड़ा पाने योग्य है · स च सर्व-भावानां प्रकाश-रूपः एव — और सब वस्तुओं का स्वभाव प्रकाश ही है · अप्रकाशस्य स्वभावता-अनुपपत्तेः — क्योंकि जो प्रकाश नहीं, वह किसी का स्वभाव नहीं हो सकता · स च न अनेकः — और वह अनेक नहीं है · प्रकाशस्य तत्-इतर-स्वभाव-अनुप्रवेश-अयोगे — क्योंकि प्रकाश में उससे भिन्न कोई स्वभाव प्रवेश नहीं कर सकता · स्वभाव-भेद-अभावात् — उसके स्वभाव में कोई भेद नहीं · देश-कालौ अपि च अस्य न भेदकौ — देश और काल भी उसे नहीं बाँटते · तयोः अपि तत्-प्रकाश-स्वभावत्वात् — क्योंकि वे भी उसी प्रकाश-स्वभाव के हैं · इति एकः एव प्रकाशः — इसलिए प्रकाश एक ही है · स एव च संवित् — और वही संवित् है, चेतना है · अर्थ-प्रकाश-रूपा हि संवित् इति — क्योंकि चेतना वस्तुओं का प्रकाशित होना ही है · सर्वेषाम् अत्र अविवादः एव — इस पर किसी का विवाद नहीं

स च प्रकाशो न परतन्त्रः, प्रकाश्यतैव हि पारतन्त्र्यम्, प्रकाश्यता च प्रकाशान्तरापेक्षितैव, न च प्रकाशान्तरं किंचित् अस्ति इति स्वतन्त्र एकः प्रकाशः, स्वातन्त्र्यादेव च देशकालाकारावच्छेदविरहात् व्यापको नित्यः सर्वाकारनिराकारस्वभावः, तस्य च स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्तिः, तच्चमत्कार इच्छाशक्तिः, प्रकाशरूपता चिच्छक्तिः, आमर्शात्मकता ज्ञानशक्तिः, सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः इत्येवं मुख्याभिः शक्तिभिः युक्तोऽपि वस्तुत इच्छाज्ञानक्रियाशक्तियुक्तः अनवच्छिन्नः प्रकाशो निजानन्दविश्रान्तः शिवरूपः, स एव स्वातन्त्र्यात् आत्मानं संकुचितम् अवभासयन् अणुरिति उच्यते । ५.२

और वह प्रकाश किसी दूसरे के अधीन नहीं। पराधीनता तो प्रकाशित की जाने वाली वस्तु होना है, और प्रकाशित होने के लिए दूसरा प्रकाश चाहिए; पर कोई दूसरा प्रकाश है ही नहीं। इसलिए एक प्रकाश स्वतन्त्र है। उसी स्वतन्त्रता से उस पर देश, काल और आकार की कोई सीमा नहीं, इसलिए वह व्यापक, नित्य, सब आकारों वाला और निराकार है। उसकी स्वतन्त्रता आनन्द-शक्ति है; उसका चमत्कार इच्छा-शक्ति है; प्रकाश-रूप होना चित्-शक्ति है; विमर्श-रूप होना ज्ञान-शक्ति है; सब आकार धारण करना क्रिया-शक्ति है। यों इन मुख्य शक्तियों से युक्त होने पर भी वास्तव में वह इच्छा, ज्ञान और क्रिया की शक्तियों से युक्त है — अपने आनन्द में विश्राम करता हुआ असीम प्रकाश, जो शिव है। वही अपनी स्वतन्त्रता से अपने को सिकुड़ा हुआ दिखाता हुआ अणु, यानी जीव, कहलाता है।

पदपाठ स च प्रकाशः न परतन्त्रः — और वह प्रकाश किसी दूसरे के अधीन नहीं · प्रकाश्यता एव हि पारतन्त्र्यम् — क्योंकि पराधीनता तो प्रकाशित की जाने वाली वस्तु होना है · प्रकाश्यता च प्रकाश-अन्तर-अपेक्षिता एव — और प्रकाशित होने के लिए दूसरा प्रकाश चाहिए · न च प्रकाश-अन्तरं किंचित् अस्ति इति — पर कोई दूसरा प्रकाश है ही नहीं — इसलिए · स्वतन्त्रः एकः प्रकाशः — एक प्रकाश स्वतन्त्र

है · **स्वातन्त्र्यात् एव च** — और उसी स्वतन्त्रता से · **देश-काल-आकार-अवच्छेद-विरहात्** — देश, काल और आकार की सीमा न होने से · **व्यापकः नित्यः** — वह व्यापक और नित्य है · **सर्व-आकार-निराकार-स्वभावः** — सब आकारों वाला और निराकार · **तस्य च स्वातन्त्र्यम् आनन्द-शक्तिः** — उसकी स्वतन्त्रता आनन्द-शक्ति है · **तत्-चमत्कारः इच्छा-शक्तिः** — उसका चमत्कार इच्छा-शक्ति है · **प्रकाश-रूपता चित्-शक्तिः** — प्रकाश-रूप होना चित्-शक्ति है · **आमर्श-आत्मकता ज्ञान-शक्तिः** — विमर्श-रूप होना ज्ञान-शक्ति है · **सर्व-आकार-योगित्वं क्रिया-शक्तिः** — सब आकार धारण करना क्रिया-शक्ति है · **इति एवं मुख्याभिः शक्तिभिः युक्तः अपि** — यों इन मुख्य शक्तियों से युक्त होने पर भी · **वस्तुतः इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शक्ति-युक्तः** — वास्तव में इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियों से युक्त · **अनवच्छिन्नः प्रकाशः** — असीम प्रकाश · **निज-आनन्द-विश्रान्तः** — अपने आनन्द में विश्राम करता हुआ · **शिव-रूपः** — शिव-रूप है · **स एव स्वातन्त्र्यात्** — वही अपनी स्वतन्त्रता से · **आत्मानं संकुचितम् अवभासयन्** — अपने को सिकुड़ा हुआ दिखाता हुआ · **अणुः इति उच्यते** — अणु, जीव कहलाता है

पुनरपि च स्वात्मानं स्वतन्त्रतया प्रकाशयति, येन अनवच्छिन्नप्रकाशशिवरूपतयैव प्रकाशते । तत्रापि स्वातन्त्र्यवशात् अनुपायमेव स्वात्मानं प्रकाशयति सोपायं वा, सोपायत्वेऽपि इच्छा वा ज्ञानं वा क्रिया वा अभ्युपाय इति त्रैविध्यं शाम्भवशाक्ताणवभेदेन समावेशस्य, तत्र चतुर्विधमपि एतद्रूपं क्रमेण अत्र उपदिश्यते । ५.३

और फिर वह स्वतन्त्रता से अपने को प्रकट करता है, जिससे वह असीम प्रकाश शिव के रूप में ही चमकता है। उसमें भी स्वतन्त्रता के वश से वह अपने को या तो बिना किसी उपाय के प्रकट करता है या उपाय से; और उपाय हो तो वह इच्छा है, या ज्ञान, या क्रिया। इसलिए समावेश तीन तरह का है — शाम्भव, शाक्त और आणव। ये चारों रूप यहाँ क्रम से सिखाए जाते हैं।

पदपाठ पुनः अपि च — और फिर · स्वात्मानं स्वतन्त्रतया प्रकाशयति — वह स्वतन्त्रता से अपने को प्रकट करता है · येन — जिससे · अनवच्छिन्न-प्रकाश-शिव-रूपतया एव प्रकाशते — वह असीम प्रकाश शिव के रूप में ही चमकता है · तत्र अपि स्वातन्त्र्य-वशात् — उसमें भी स्वतन्त्रता के वश से · अनुपायम् एव स्वात्मानं प्रकाशयति — वह बिना किसी उपाय के अपने को प्रकट करता है · सोपायं वा — या उपाय से · सोपायत्वे अपि — और उपाय होने पर भी · इच्छा वा ज्ञानं वा क्रिया वा अभ्युपायः इति — उपाय इच्छा है, या ज्ञान, या क्रिया · त्रैविध्यं समावेशस्य — इसलिए समावेश तीन तरह का है · शाम्भव-शाक्त-आणव-भेदेन — शाम्भव, शाक्त और आणव भेद से · तत्र चतुर्विधम् अपि एतत्-रूपम् — ये चारों रूप · क्रमेण अत्र उपदिश्यते — यहाँ क्रम से सिखाए जाते हैं

आत्मा प्रकाशवपुरेष शिवः स्वतन्त्रः
स्वातन्त्र्यनर्मरभसेन निजं स्वरूपम् ।
संच्छाद्य यत्पुनरपि प्रथयेत पूर्णं
तच्च क्रमाक्रमवशादथवा त्रिभेदात् ॥५॥

५

यह आत्मा, जिसका शरीर प्रकाश है, स्वतन्त्र शिव है। अपनी स्वतन्त्रता की क्रीड़ा के वेग में वह अपने स्वरूप को ढक लेता है, और फिर उसे पूरा प्रकट करता है — एक साथ, या क्रम से तीन भेदों में।

पदपाठ आत्मा — आत्मा · प्रकाश-वपुः — प्रकाश-शरीर · एषः — यह · शिवः — शिव · स्वतन्त्रः — स्वतन्त्र · स्वातन्त्र्य-नर्म-रभसेन — अपनी स्वतन्त्रता की क्रीड़ा के वेग में · निजम् — अपने · स्वरूपम् — स्वरूप को · संच्छाद्य — ढककर · यत् — जो · पुनः — फिर · अपि — भी · प्रथयेत — प्रकट करता है · पूर्णम् — पूरा · तत् — वह · च — और · क्रम-अक्रम-वशात् — क्रम से या बिना क्रम के · अथवा — अथवा · त्रि-भेदात् — तीन भेदों से

एहु पआसऊउ अत्ताणत
सच्छन्दउ ढकइ णिअऊउ ।
पूणु पअडइ झडि अह कमवस
एहत परमत्थिण शिवरसु ॥

५.४

यह प्रकाश-रूप आत्मा स्वच्छन्द होकर अपने स्वरूप को ढक लेता है, और फिर उसे प्रकट करता है — झट से, या क्रम से। यही परमार्थ में शिव-रस है।

पदपाठ एहु पआसऊउ अत्ताणत — यह प्रकाश-रूप आत्मा · सच्छन्दउ — स्वच्छन्द होकर · ढकइ णिअऊउ — अपने स्वरूप को ढक लेता है · पूणु पअडइ — फिर उसे प्रकट करता है · झडि अह कमवस — झट से, या क्रम से · एहत परमत्थिण — यही परमार्थ में · शिवरसु — शिव-रस है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे विज्ञानभेदप्रकाशनं नाम प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में विज्ञानभेदप्रकाशन नामक पहला आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

द्वितीयमाह्निकम्

अनुपायप्रकाशनम्

ग्रन्थ का यह सबसे छोटा आह्निक उस उपाय को सिखाता है जो कोई उपाय है ही नहीं। जिस पर तीव्र शक्तिपात हुआ हो, वह गुरु का वचन एक बार सुनकर अपने आप सत्य को देख लेता है, और तब से परमेश्वर में उसका समावेश सदा उदित रहता है, आगे कुछ करना बाकी नहीं रहता। इस प्रश्न पर कि तर्क तो योग का केवल एक अंग है, फिर ऐसा देखना कैसे होता है, अभिनवगुप्त पूछते हैं कि स्वयं प्रकाशित परमेश्वर-रूप आत्मा के लिए कोई उपाय कर ही क्या सकता है: वह उसे ऐसा स्वरूप नहीं दे सकता जो उसका है ही, उसे जनवा नहीं सकता जब वह अपने आप चमक रहा है, ऐसा आवरण नहीं हटा सकता जो हो ही नहीं सकता, और उसमें प्रवेश नहीं करा सकता, क्योंकि उससे अलग कुछ है ही नहीं जो प्रवेश करे। यह सब एक चिन्मात्र तत्त्व है, जिसे काल, देश, उपाधि, आकार, शब्द या प्रमाण छू नहीं सकते, और काल से लेकर प्रमाण तक सबको अपना होना उसी की इच्छा से मिलता है। "वही मैं हूँ, और विश्व मेरे भीतर प्रतिबिम्बित है" — जो इसे दृढ़ता से देखता है, वह बिना किसी उपाय के परमेश्वर में समाविष्ट है, और मन्त्र, पूजा, ध्यान या चर्या का कोई नियम उसे नहीं बाँधता। श्लोक इसे एक चित्र में कहता है: उपायों का जाल शिव को प्रकाशित नहीं कर सकता, जैसे घड़े का दीया सूर्य को नहीं; यह देखकर उदार दृष्टि वाले क्षण भर में स्वयं-प्रकाश शिव में प्रवेश कर जाते हैं।

अथ अनुपायमेव तावत् व्याख्यास्यामः ।

यदा खलु दृढशक्तिपाताविद्धः स्वयमेव इत्थं विवेचयति सकृदेव गुरुवचनम् ।.१

अवधार्य, तदा पुनरुपायविरहितो नित्योदितः अस्य समावेशः ।

अब पहले हम अनुपाय को ही समझाएँगे। जब तीव्र शक्तिपात से बिंधा हुआ व्यक्ति गुरु का वचन एक ही बार धारण करके अपने आप इस तरह विवेचन कर लेता है, तब से उसका समावेश उपाय-रहित और नित्य उदित रहता है।

पदपाठ अथ अनुपायम् एव तावत् व्याख्यास्यामः — अब पहले हम अनुपाय को ही समझाएँगे · यदा खलु — जब · दृढ-शक्तिपात-आविद्धः — तीव्र शक्तिपात से बिंधा हुआ व्यक्ति · स्वयम् एव इत्थं विवेचयति — अपने आप इस तरह विवेचन कर लेता है · सकृत् एव गुरु-वचनम् अवधार्य — गुरु का वचन एक ही बार धारण करके · तदा पुनः — तब फिर · उपाय-विरहितः नित्य-उदितः अस्य समावेशः — उसका समावेश उपाय-रहित और नित्य उदित रहता है

अत्र च तर्क एव योगाङ्गम् इति कथं विवेचयति इति चेत्, उच्यते—योऽयं परमेश्वरः स्वप्रकाशरूपः स्वात्मा तत्र किम् उपायेन क्रियते, न स्वरूपलाभो नित्यत्वात्, न ज्ञप्तिः स्वयंप्रकाशमानत्वात्, न आवरणविगमः आवरणस्य कस्यचिदपि असंभवात्, न तदनुप्रवेशः अनुप्रवेष्टुः व्यतिरिक्तस्य अभावात् । ६.२

और यहाँ यदि पूछो कि तर्क तो योग का एक अंग ही है, फिर वह कैसे विवेचन करता है, तो कहते हैं: यह स्वयं-प्रकाश परमेश्वर अपना ही आत्मा है — उसके लिए उपाय क्या कर सकता है? स्वरूप नहीं दिला सकता, क्योंकि वह नित्य है। जनवा नहीं सकता, क्योंकि वह अपने आप चमक रहा है। आवरण नहीं हटा सकता, क्योंकि कोई भी आवरण सम्भव नहीं। उसमें प्रवेश नहीं करा सकता, क्योंकि प्रवेश करने वाला कोई उससे अलग है ही नहीं।

पदपाठ अत्र च — और यहाँ · तर्कः एव योग-अङ्गम् इति — तर्क तो योग का एक अंग ही है, इसलिए · कथं विवेचयति इति चेत् — यदि पूछो कि वह कैसे विवेचन करता है · उच्यते — तो कहते हैं · यः अयं परमेश्वरः स्व-प्रकाश-रूपः स्वात्मा — यह स्वयं-प्रकाश परमेश्वर, जो अपना ही आत्मा है · तत्र किम् उपायेन क्रियते — उसके लिए उपाय क्या कर सकता है? · न स्वरूप-लाभः नित्यत्वात् — स्वरूप नहीं दिला सकता, क्योंकि वह नित्य है · न ज्ञप्तिः स्वयं-प्रकाशमानत्वात् — जनवा नहीं सकता, क्योंकि वह अपने आप चमक रहा है · न आवरण-विगमः — आवरण नहीं हटा सकता · आवरणस्य कस्यचित् अपि असंभवात् — क्योंकि कोई भी आवरण सम्भव नहीं · न तत्-अनुप्रवेशः — उसमें प्रवेश नहीं करा सकता · अनुप्रवेष्टुः व्यतिरिक्तस्य अभावात् — क्योंकि प्रवेश करने वाला कोई उससे अलग है ही नहीं

कश्चात्र उपायः तस्यापि व्यतिरिक्तस्य अनुपपत्तेः, तस्मात् समस्तमिदमेकं चिन्मात्रतत्त्वं कालेन अकलितं, देशेन अपरिच्छिन्नम्, उपाधिभिरम्लानम्, आकृतिभिरनियन्त्रितं, शब्दैरसंदिष्टं, प्रमाणैरप्रपञ्चितं, कालादेः प्रमाणपर्यन्तस्य स्वेच्छयैव स्वरूपलाभनिमित्तं च, स्वतन्त्रं आनन्दघनं तत्त्वं, तदेव च अहम् तत्रैव अन्तर्मयि विश्वं प्रतिबिम्बितम् एवं दृढं विविञ्चानस्य शश्वदेव पारमेश्वरः समावेशो निरुपायक एव, तस्य च न मन्त्र-पूजा-ध्यान-चर्यादिनियन्त्रणा काचित् । ६.३

और यहाँ उपाय हो भी क्या, क्योंकि वह भी उससे अलग नहीं हो सकता? इसलिए यह सब एक चिन्मात्र तत्त्व है — काल से न नापा गया, देश से न घिरा, उपाधियों से न मलिन, आकारों से न बँधा, शब्दों से न बताया गया, प्रमाणों से न फैलाया गया — स्वतन्त्र, आनन्द से भरा तत्त्व, जो केवल अपनी इच्छा से काल से लेकर प्रमाण तक सबको होना देता है। "वही मैं हूँ, और वहीं मेरे भीतर विश्व प्रतिबिम्बित है।" जो इसे दृढ़ता से देखता है, उसका परमेश्वर में समावेश सदा और बिना किसी उपाय के है, और उसके लिए मन्त्र, पूजा, ध्यान, चर्या आदि का कोई नियम नहीं।

पदपाठ कः च अत्र उपायः — और यहाँ उपाय हो भी क्या · तस्य अपि व्यतिरिक्तस्य अनुपपत्तेः — क्योंकि वह भी उससे अलग नहीं हो सकता · तस्मात् — इसलिए · समस्तम् इदम् एकं चित्-मात्र-तत्त्वम् — यह सब एक चिन्मात्र तत्त्व है · कालेन अकलितम् — काल से न नापा गया · देशेन अपरिच्छिन्नम् — देश से न घिरा · उपाधिभिः अम्लानम् — उपाधियों से न मलिन · आकृतिभिः अनियन्त्रितम् — आकारों से न बँधा · शब्दैः असंदिष्टम् — शब्दों से न बताया गया · प्रमाणैः अप्रपञ्चितम् — प्रमाणों से न फैलाया गया · काल-आदेः प्रमाण-पर्यन्तस्य — और काल से लेकर प्रमाण तक सबके लिए · स्व-इच्छया एव स्वरूप-लाभ-निमित्तं च — केवल अपनी इच्छा से उनके होने का कारण · स्वतन्त्रम् आनन्द-घनं तत्त्वम् — स्वतन्त्र, आनन्द से भरा तत्त्व · तत् एव च अहम् — और वही मैं हूँ · तत्र एव अन्तः मयि विश्वं प्रतिबिम्बितम् — वहीं मेरे भीतर विश्व प्रतिबिम्बित है · एवं दृढं विविञ्चानस्य — जो इसे दृढ़ता से देखता है, उसका · शश्वत् एव पारमेश्वरः समावेशः निरुपायकः एव — परमेश्वर में समावेश सदा और बिना किसी

उपाय के है · **तस्य च** — और उसके लिए · **न मन्त्र-पूजा-ध्यान-चर्या-आदि-नियन्त्रणा काचित्** — मन्त्र, पूजा, ध्यान, चर्या आदि का कोई नियम नहीं

उपायजालं न शिवं प्रकाशयेद्
घटेन किं भाति सहस्रदीधितिः ।
विवेचयन्नित्थमुदारदर्शनः
स्वयंप्रकाशं शिवमाविशेत्क्षणात् ॥६॥ ६

उपायों का जाल शिव को प्रकाशित नहीं कर सकता। क्या हज़ार किरणों वाला सूर्य घड़े के दीये से चमकता है? यह देखकर उदार दृष्टि वाला क्षण भर में स्वयं-प्रकाश शिव में प्रवेश कर जाता है।

पदपाठ **उपाय-जालम्** — उपायों का जाल · **न** — नहीं · **शिवम्** — शिव को · **प्रकाशयेत्** — प्रकाशित कर सकता है · **घटेन** — घड़े के दीये से · **किम्** — क्या · **भाति** — चमकता है · **सहस्र-दीधितिः** — हज़ार किरणों वाला सूर्य · **विवेचयन्** — विवेचन करता हुआ · **इत्थम्** — ऐसा · **उदार-दर्शनः** — उदार दृष्टि वाला · **स्वयं-प्रकाशम्** — स्वयं-प्रकाश · **शिवम्** — शिव में · **आविशेत्** — प्रवेश करता है · **क्षणात्** — क्षण भर में

जहि जहि फुरण फुरइ सो सअलउ
परमेसरु भासइ मइ अमलउ ।
अत्ता नत सो शिव परमत्थिण ६.४
इअ जानअ कज्ज परमत्थि ण ॥

जहाँ-जहाँ कोई स्फुरण स्फुरित होता है, वह सम्पूर्ण परमेश्वर है, जो मुझमें निर्मल होकर चमकता है। आत्मा ही परमार्थ में वह शिव है। यह जानकर आगे कुछ करना बाकी नहीं रहता।

पदपाठ जहि जहि फुरण फुरइ — जहाँ-जहाँ कोई स्फुरण स्फुरित होता है · सो सअलउ परमेसरु — वह सम्पूर्ण परमेश्वर है · भासइ मइ अमलउ — जो मुझमें निर्मल होकर चमकता है · अत्ता नत सो शिव परमत्थिण — आत्मा ही परमार्थ में वह शिव है · इअ जानअ — यह जानकर · कज्ज परमत्थि ण — आगे कुछ करना बाकी नहीं

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे अनुपायप्रकाशनं नाम द्वितीयमाह्निकम् ॥ २ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में अनुपायप्रकाशन नामक दूसरा आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

तृतीयमाह्निकम्

शाम्भवोपायप्रकाशनम्

जो प्रकाशरूप शिव के अखण्ड मण्डल में सीधे प्रवेश नहीं कर पाता, वह उनकी स्वातन्त्र्य-शक्ति पर टिककर एक निर्विकल्प अनुभव से भैरव में समाविष्ट हो सकता है। इसका उपदेश प्रतिबिम्ब का चित्र है: जो कुछ है, वह बोध के आकाश में केवल प्रतिबिम्ब है, जैसे दर्पण में मुख, मुँह में स्वाद, त्वचा में स्पर्श, आकाश में प्रतिध्वनि — इनमें कोई "मूल" नहीं, फिर भी कोई कुछ नहीं भी नहीं। संसार-प्रतिबिम्ब का बिम्ब क्या है, इस पर अभिनवगुप्त कहते हैं: कुछ भी नहीं; उसका कारण केवल परमेश्वर की स्वतन्त्रता है, और पूरे विश्व को प्रतिबिम्ब की तरह धारण करना ही उन्हें विश्वरूप बनाता है। चित्-स्वभाव होने से वे अपने इस स्वरूप से अनजान नहीं रह सकते — और वह आत्म-विमर्श, जो चेतना से अलग नहीं, परम नाद है। शेष आह्निक उस नाद को वर्णमाला के रूप में खोलता है: तीन मुख्य शक्तियाँ — अनुत्तर, इच्छा और उन्मेष — अ, इ, उ हैं; उनका अपने में विश्राम आ, ई, ऊ देता है; इच्छा में क्रिया के प्रवेश से नपुंसक स्वर ऋ ॠ ऌ ॡ; ए ऐ ओ औ क्रिया-शक्ति हैं; बिन्दु अं और विसर्ग अः से सोलह बीज-स्वर पूरे होते हैं; उनसे व्यञ्जन-योनियाँ निकलती हैं — पाँच शक्तियों से पाँच वर्ग, इच्छा से अन्तःस्थ और ऊष्म, विसर्ग से ह, योनि-संयोग से क्ष। यों अनुत्तर ही कुलेश्वर है, और उसकी एक शक्ति विसर्ग है, जो आणव, शाक्त और शाम्भव — तीन तरह का है। अलग-अलग गिनने पर ये परामर्श एक भगवान् हैं, या शक्ति और शक्तिमान्, या नौ, पचास, इक्यासी — वास्तव में छह जो बारह होकर कालिकाएँ कहलाती हैं। शुद्धविद्या में वे विद्येश्वर बनते हैं; माया में साधारण वाणी के वर्ण, जो शरीर की तरह निर्जीव हैं जब तक शुद्ध परामर्श उन्हें जीवित न करें। जो आत्मा को इन सब परामर्शों का एकमात्र विश्राम-स्थान देखता है, जिसमें सब तत्त्व, भूत और भुवन प्रतिबिम्बित हैं, वह शाम्भव समावेश से जीवन्मुक्त है — और यहाँ भी मन्त्र या विधि का कोई नियम नहीं। श्लोक: सारा जगत् आत्मा में यों चमकता है जैसे दर्पण में चित्रित दृश्य, पर दर्पण से भिन्न, बोध अपने विमर्श के रस से उसे ग्रहण भी करता है।

यदेतत् प्रकाशरूपं शिवतत्त्वम् उक्तम्, तत्र अखण्डमण्डले यदा प्रवेष्टुं न शक्नोति, तदा स्वातन्त्र्यशक्तिमेव अधिकां पश्यन् निर्विकल्पमेव भैरवसमावेशम् अनुभवति, अयं च अस्य उपदेशः—सर्वमिदं भावजातं बोधगगने प्रतिबिम्बमात्रं प्रतिबिम्बलक्षणोपेतत्वात्, इदं हि प्रतिबिम्बस्य लक्षणम् —यत् भेदेन भासितम् अशक्तम् अन्यव्यामिश्रत्वेनैव भाति तत् प्रतिबिम्बम्, मुखरूपमिव दर्पणे, रस इव दन्तोदके, गन्ध इव घ्राणे, मिथुनस्पर्श इव आनन्देन्द्रिये, शूलकुन्तादिस्पर्शो वा अन्तःस्पर्शनेन्द्रिये, प्रतिश्रुत्केव व्योम्नि ।

यह जो प्रकाशरूप शिव-तत्त्व कहा गया, जब कोई उसके अखण्ड मण्डल में प्रवेश नहीं कर पाता, तब उसकी स्वातन्त्र्य-शक्ति को ही प्रधान देखता हुआ वह भैरव में निर्विकल्प समावेश का अनुभव करता है। उसका उपदेश यह है: यह सारा भाव-समूह बोध के आकाश में केवल प्रतिबिम्ब है, क्योंकि उसमें प्रतिबिम्ब के लक्षण हैं। और प्रतिबिम्ब का लक्षण यह है — जो अलग से प्रकाशित होने में असमर्थ है और दूसरे से मिलकर ही चमकता है, वह प्रतिबिम्ब है: जैसे दर्पण में मुख, मुँह के पानी में स्वाद, नाक में गन्ध, आनन्द की इन्द्रिय में मिथुन का स्पर्श, भीतरी स्पर्श-इन्द्रिय में शूल-भाले का स्पर्श, आकाश में प्रतिध्वनि।

पदपाठ यत् एतत् प्रकाश-रूपं शिव-तत्त्वम् उक्तम् — यह जो प्रकाशरूप शिव-तत्त्व कहा गया · तत्र अखण्ड-मण्डले यदा प्रवेष्टुं न शक्नोति — जब कोई उसके अखण्ड मण्डल में प्रवेश नहीं कर पाता · तदा स्वातन्त्र्य-शक्तिम् एव अधिकां पश्यन् — तब उसकी स्वातन्त्र्य-शक्ति को ही प्रधान देखता हुआ · निर्विकल्पम् एव भैरव-समावेशम् अनुभवति — वह भैरव में निर्विकल्प समावेश का अनुभव करता है · अयं च अस्य उपदेशः — और यह उसका उपदेश है · सर्वम् इदं भाव-जातं बोध-गगने प्रतिबिम्ब-मात्रम् — यह सारा भाव-समूह बोध के आकाश में केवल प्रतिबिम्ब है · प्रतिबिम्ब-लक्षण-उपेतत्वात् — क्योंकि उसमें प्रतिबिम्ब के लक्षण हैं · इदं हि प्रतिबिम्बस्य लक्षणम् — क्योंकि प्रतिबिम्ब का लक्षण यह है · यत् भेदेन भासितम् अशक्तम् — जो अलग से प्रकाशित होने में असमर्थ है · अन्य-व्यामिश्रत्वेन एव भाति — और दूसरे से मिलकर ही चमकता है · तत् प्रतिबिम्बम् — वह प्रतिबिम्ब है · मुख-रूपम् इव दर्पणे — जैसे

दर्पण में मुख · रसः इव दन्त-उदके — मुँह के पानी में स्वाद · गन्धः इव घ्राणे — नाक में गन्ध · मिथुन-स्पर्शः इव आनन्द-इन्द्रिये — आनन्द की इन्द्रिय में मिथुन का स्पर्श · शूल-कुन्त-आदि-स्पर्शः वा अन्तः-स्पर्शन-इन्द्रिये — या भीतरी स्पर्श-इन्द्रिय में शूल-भाले का स्पर्श · प्रतिश्रुत्का इव व्योम्नि — आकाश में प्रतिध्वनि

न हि स रसो मुख्यः तत्कार्यव्याधिशमनाद्यदृष्टेः ।
नापि गन्धस्पर्शौ मुख्यौ गुणिनः तत्र अभावे तयोरयोगात् कार्यपरम्परानारम्भात् च ।
न च तौ न स्तः देहोद्भूलनविसर्गादिदर्शनात् । ७.२
शब्दोऽपि न मुख्यः कोऽपि वक्ति इति आगच्छन्त्या इव प्रतिश्रुत्कायाः श्रवणात् ।

वह स्वाद मुख्य नहीं है, क्योंकि उसके कार्य, जैसे रोग का शमन, दिखते नहीं। गन्ध और स्पर्श भी मुख्य नहीं, क्योंकि वहाँ उन गुणों वाली वस्तु नहीं है और उनसे कार्यों की परम्परा नहीं चलती। पर ऐसा भी नहीं कि वे हैं ही नहीं, क्योंकि शरीर का रोमांच और स्खलन देखा जाता है। शब्द भी मुख्य नहीं, क्योंकि प्रतिध्वनि ऐसे सुनाई देती है मानो कोई बोलता आ रहा हो।

पदपाठ न हि सः रसः मुख्यः — वह स्वाद मुख्य नहीं है · तत्-कार्य-व्याधि-शमन-आदि-अदृष्टेः — क्योंकि उसके कार्य, जैसे रोग का शमन, दिखते नहीं · न अपि गन्ध-स्पर्शौ मुख्यौ — गन्ध और स्पर्श भी मुख्य नहीं · गुणिनः तत्र अभावे तयोः अयोगात् — क्योंकि वहाँ उन गुणों वाली वस्तु नहीं है · कार्य-परम्परा-अनारम्भात् च — और उनसे कार्यों की परम्परा नहीं चलती · न च तौ न स्तः — पर ऐसा भी नहीं कि वे हैं ही नहीं · देह-उद्भूलन-विसर्ग-आदि-दर्शनात् — क्योंकि शरीर का रोमांच और स्खलन देखा जाता है · शब्दः अपि न मुख्यः — शब्द भी मुख्य नहीं · कः अपि वक्ति इति आगच्छन्त्याः इव प्रतिश्रुत्कायाः श्रवणात् — क्योंकि प्रतिध्वनि ऐसे सुनाई देती है मानो कोई बोलता आ रहा हो

एवं यथा एतत् प्रतिबिम्बितं भाति तथैव विश्वं परमेश्वरप्रकाशे ।
ननु अत्र बिम्बं किं स्यात्? माभूत् किंचित् ।
ननु किम् अकारणकं तत्? हन्त तर्हि हेतुप्रश्नः—तत् किं बिम्बवाचोयुक्त्या,
हेतुश्च परमेश्वरशक्तिरेव स्वातन्त्र्यापरपर्याया भविष्यति,
विश्वप्रतिबिम्बधारित्वाच्च विश्वात्मकत्वं भगवतः, संविन्मयं हि विश्वं चैतन्यस्य ७.३
व्यक्तिस्थानम् इति, तदेव हि विश्वम् अत्र प्रतीपम् इति प्रतिबिम्बधारित्वम्
अस्य, तच्च तावत् विश्वात्मकत्वं परमेश्वरस्य स्वरूपं न अनामृष्टं भवति,
चित्स्वभावस्य स्वरूपानामर्शनानुपपत्तेः ।

जैसे ये प्रतिबिम्बित होकर चमकते हैं, वैसे ही विश्व परमेश्वर के प्रकाश में। "पर यहाँ बिम्ब क्या होगा?" कुछ भी न हो। "तो क्या वह बिना कारण का है?" अच्छा — तो प्रश्न कारण का है; फिर बिम्ब की बात क्यों? और कारण परमेश्वर की शक्ति ही होगी, जिसका दूसरा नाम स्वातन्त्र्य है। विश्व का प्रतिबिम्ब धारण करने से भगवान् विश्वरूप हैं: विश्व संविन्मय है, चैतन्य के प्रकट होने का स्थान है, और वही विश्व उलटकर उन्हीं में है — यही उनका प्रतिबिम्ब-धारण है। और यह विश्वरूपता, जो परमेश्वर का स्वरूप है, कभी अविमृष्ट नहीं रहती, क्योंकि चित्-स्वभाव का अपने स्वरूप से अनजान रहना सम्भव नहीं।

पदपाठ एवं यथा एतत् प्रतिबिम्बितं भाति — जैसे ये प्रतिबिम्बित होकर चमकते हैं · तथा एव विश्वं परमेश्वर-प्रकाशे — वैसे ही विश्व परमेश्वर के प्रकाश में · ननु अत्र बिम्बं किं स्यात् — पर यहाँ बिम्ब क्या होगा? · मा भूत् किंचित् — कुछ भी न हो · ननु किम् अकारणकं तत् — तो क्या वह बिना कारण का है? · हन्त तर्हि हेतु-प्रश्नः — अच्छा, तो प्रश्न कारण का है · तत् किं बिम्ब-वाचोयुक्त्या — तो बिम्ब की बात क्यों? · हेतुः च परमेश्वर-शक्तिः एव — और कारण परमेश्वर की शक्ति ही होगी · स्वातन्त्र्य-अपर-पर्याया भविष्यति — जिसका दूसरा नाम स्वातन्त्र्य है · विश्व-प्रतिबिम्ब-धारित्वात् च विश्व-आत्मकत्वं भगवतः — और विश्व का प्रतिबिम्ब धारण करने से भगवान् विश्वरूप हैं · संवित्-मयं हि विश्वं चैतन्यस्य व्यक्ति-

स्थानम् इति — क्योंकि विश्व संविन्मय है, चैतन्य के प्रकट होने का स्थान है · तत् एव हि विश्वम् अत्र प्रतीपम् इति — वही विश्व यहाँ उलटकर उन्हीं में है · प्रतिबिम्ब-धारित्वम् अस्य — यही उनका प्रतिबिम्ब-धारण है · तत् च तावत् विश्व-आत्मकत्वं परमेश्वरस्य स्वरूपम् — और यह विश्वरूपता, जो परमेश्वर का स्वरूप है · न अनामृष्टं भवति — कभी अविमृष्ट नहीं रहती · चित्-स्वभावस्य स्वरूप-अनामर्शन-अनुपपत्तेः — क्योंकि चित्-स्वभाव का अपने स्वरूप से अनजान रहना सम्भव नहीं

स्वरूपानामर्शने हि वस्तुतो जडतैव स्यात्, आमर्शश्च अयं न सांकेतिकः, अपि तु चित्स्वभावतामात्रनान्तरीयकः परनादगर्भ उक्तः, स च यावान् विश्वव्यवस्थापकः परमेश्वरस्य शक्तिकलापः तावन्तम् आमृशति । ७.४

क्योंकि अपने स्वरूप का विमर्श न हो तो वास्तव में जड़ता ही होगी। और यह विमर्श सांकेतिक नहीं है; यह चित्-स्वभाव होने मात्र से अभिन्न है, और इसे परम नाद का गर्भ कहा गया है। विश्व को व्यवस्था देने वाला परमेश्वर का शक्ति-समूह जितना है, उतने का वह विमर्श करता है।

पदपाठ स्वरूप-अनामर्शने हि — क्योंकि अपने स्वरूप का विमर्श न हो तो · वस्तुतः जडता एव स्यात् — वास्तव में जड़ता ही होगी · आमर्शः च अयं न सांकेतिकः — और यह विमर्श सांकेतिक नहीं है · अपि तु चित्-स्वभावता-मात्र-नान्तरीयकः — बल्कि चित्-स्वभाव होने मात्र से अभिन्न है · पर-नाद-गर्भः उक्तः — उसे परम नाद का गर्भ कहा गया है · सः च यावान् विश्व-व्यवस्थापकः परमेश्वरस्य शक्ति-कलापः — और विश्व को व्यवस्था देने वाला परमेश्वर का शक्ति-समूह जितना है · तावन्तम् आमृशति — उतने का वह विमर्श करता है

तत्र मुख्यास्तावत् तिस्रः परमेश्वरस्य शक्तयः—अनुत्तरः-इच्छा-उन्मेष इति, तदेव परामर्शत्रयम् अ-इ-उ इति, एतस्मादेव त्रितयात् सर्वः शक्तिप्रपञ्चः चर्च्यते, अनुत्तर एव हि विश्रान्तिरानन्दः, इच्छायामेव विश्रान्तिः ईशनम्, उन्मेष एव हि विश्रान्तिरूर्मिः यः क्रियाशक्तेः प्रारम्भः, तदेव परामर्शत्रयम् आ-ई-ऊ इति ।

उनमें परमेश्वर की मुख्य शक्तियाँ तीन हैं — अनुत्तर, इच्छा और उन्मेष — और यही तीन परामर्श अ, इ, उ हैं। इसी त्रय से शक्तियों का सारा विस्तार निकलता है। अनुत्तर में ही विश्राम आनन्द है; इच्छा में ही विश्राम ईशन है; उन्मेष में ही विश्राम ऊर्मि है, जो क्रिया-शक्ति का आरम्भ है — और यही तीन परामर्श आ, ई, ऊ हैं।

पदपाठ तत्र मुख्याः तावत् तिस्रः परमेश्वरस्य शक्तयः — उनमें परमेश्वर की मुख्य शक्तियाँ तीन हैं · अनुत्तरः-इच्छा-उन्मेषः इति — अनुत्तर, इच्छा और उन्मेष · तत् एव परामर्श-त्रयम् अ-इ-उ इति — यही तीन परामर्श अ, इ, उ हैं · एतस्मात् एव त्रितयात् सर्वः शक्ति-प्रपञ्चः चर्च्यते — इसी त्रय से शक्तियों का सारा विस्तार निकलता है · अनुत्तरे एव हि विश्रान्तिः आनन्दः — अनुत्तर में ही विश्राम आनन्द है · इच्छायाम् एव विश्रान्तिः ईशनम् — इच्छा में ही विश्राम ईशन है · उन्मेषे एव हि विश्रान्तिः ऊर्मिः — उन्मेष में ही विश्राम ऊर्मि है · यः क्रिया-शक्तेः प्रारम्भः — जो क्रिया-शक्ति का आरम्भ है · तत् एव परामर्श-त्रयम् आ-ई-ऊ इति — यही तीन परामर्श आ, ई, ऊ हैं

अत्र च प्राच्यं परामर्शत्रयं प्रकाशभागसारत्वात् सूर्यात्मकं, चरमं परामर्शत्रयं विश्रान्तिस्वभावाह्लादप्राधान्यात् सोमात्मकम्, इयति यावत्कर्मांशस्य अनुप्रवेशो नास्ति ।

यहाँ पहला परामर्श-त्रय सूर्य-रूप है, क्योंकि उसका सार प्रकाश का अंश है; अन्तिम परामर्श-त्रय सोम-रूप है, क्योंकि उसमें विश्राम-रूप आह्लाद प्रधान है। यहाँ तक कर्म के अंश का प्रवेश नहीं है।

पदपाठ अत्र च प्राच्यं परामर्श-त्रयम् — यहाँ पहला परामर्श-त्रय · प्रकाश-भाग-सारत्वात् सूर्य-आत्मकम् — सूर्य-रूप है, क्योंकि उसका सार प्रकाश का अंश है · चरमं परामर्श-त्रयम् — अन्तिम परामर्श-त्रय · विश्रान्ति-स्वभाव-आह्लाद-प्राधान्यात् सोम-आत्मकम् — सोम-रूप है, क्योंकि उसमें विश्राम-रूप आह्लाद प्रधान है · इयति यावत् कर्म-अंशस्य अनुप्रवेशः न अस्ति — यहाँ तक कर्म के अंश का प्रवेश नहीं है

यदा तु इच्छायाम् ईशने च कर्म अनुप्रविशति यत् तत् इष्यमाणम् ईश्यमाणम् इति च उच्यते, तदा अस्य द्वौ भेदौ प्रकाशमात्रेण रश्रुतिः, विश्रान्त्या लश्रुतिः, रलयोः प्रकाशस्तम्भस्वभावत्वात्, इष्यमाणं च न बाह्यवत् स्फुटम्, स्फुटरूपत्वे तदेव निर्माणं स्यात्, न इच्छा ईशनं वा, अतः अस्फुटत्वात् एव श्रुतिमात्रं रलयोः, न व्यञ्जनवत् स्थितिः ।

पर जब इच्छा और ईशन में कर्म प्रवेश करता है — जिसे इष्यमाण और ईश्यमाण कहते हैं — तब उसके दो भेद होते हैं: केवल प्रकाश से र की श्रुति, विश्राम से ल की श्रुति, क्योंकि र और ल प्रकाश और स्तम्भन स्वभाव के हैं। और इष्यमाण बाहरी वस्तु की तरह स्पष्ट नहीं; स्पष्ट हो तो वही निर्माण हो जाएगा, इच्छा या ईशन नहीं रहेगा। इसलिए अस्पष्ट होने से र और ल की केवल श्रुति है; व्यञ्जन की तरह उनकी स्थिति नहीं।

पदपाठ यदा तु इच्छायाम् ईशने च कर्म अनुप्रविशति — पर जब इच्छा और ईशन में कर्म प्रवेश करता है · यत् तत् इष्यमाणम् ईश्यमाणम् इति च उच्यते — जिसे इष्यमाण और ईश्यमाण कहते हैं · तदा अस्य द्वौ भेदौ — तब उसके दो भेद होते हैं · प्रकाश-मात्रेण र-श्रुतिः — केवल प्रकाश से र की श्रुति · विश्रान्त्या ल-श्रुतिः — विश्राम से ल की श्रुति · र-लयोः प्रकाश-स्तम्भ-स्वभावत्वात् — क्योंकि र और ल प्रकाश और स्तम्भन स्वभाव के हैं · इष्यमाणं च न बाह्यवत् स्फुटम् — और इष्यमाण बाहरी वस्तु की तरह स्पष्ट नहीं · स्फुट-रूपत्वे तत् एव निर्माणं स्यात् — स्पष्ट हो तो वही निर्माण हो जाएगा · न इच्छा ईशनं वा — इच्छा या ईशन नहीं रहेगा · अतः अस्फुटत्वात् एव श्रुति-मात्रं र-लयोः — इसलिए अस्पष्ट होने से र और ल की केवल श्रुति है · न व्यञ्जनवत् स्थितिः — व्यञ्जन की तरह उनकी स्थिति नहीं

तदेतद्वर्णचतुष्टयं उभयच्छायाधारित्वात् नपुंसकम्—ऋ-ॠ-ऌ-ॡ इति ।
अनुत्तरानन्दयोः इच्छादिषु यदा प्रसरः तदा वर्णद्वयम् ए-ओ इति । ७.८
तत्रापि पुनरनुत्तरानन्दसंघट्टात् वर्णद्वयम् ऐ-औ इति ।
सा इयं क्रियाशक्तिः, तदेव च वर्णचतुष्टयम् ए-ऐ ओ-औ इति ।

ये चार वर्ण — ऋ ॠ ऌ ॡ — दोनों की छाया लिए होने से नपुंसक हैं। जब अनुत्तर और आनन्द इच्छा आदि में फैलते हैं, तब दो वर्ण ए और ओ होते हैं; उनमें फिर अनुत्तर और आनन्द के संघट्ट से दो वर्ण ऐ और औ। यही क्रिया-शक्ति है, और वही ये चार वर्ण ए ऐ ओ औ हैं।

पदपाठ तत् एतत् वर्ण-चतुष्टयम् — ये चार वर्ण · उभय-छाया-धारित्वात् नपुंसकम् — दोनों की छाया लिए होने से नपुंसक हैं · ऋ-ॠ-ऌ-ॡ इति — ऋ ॠ ऌ ॡ · अनुत्तर-आनन्दयोः इच्छा-आदिषु यदा प्रसरः — जब अनुत्तर और आनन्द इच्छा आदि में फैलते हैं · तदा वर्ण-द्वयम् ए-ओ इति — तब दो वर्ण ए और ओ होते हैं · तत्र अपि पुनः अनुत्तर-आनन्द-संघट्टात् — उनमें फिर अनुत्तर और आनन्द के संघट्ट से · वर्ण-द्वयम् ऐ-औ इति — दो वर्ण ऐ और औ · सा इयं क्रिया-शक्तिः — यही क्रिया-शक्ति है · तत् एव च वर्ण-चतुष्टयम् ए-ऐ ओ-औ इति — और वही ये चार वर्ण ए ऐ ओ औ हैं

ततः पुनः क्रियाशक्त्यन्ते सर्वं कार्यभूतं यावत् अनुत्तरे प्रवेक्ष्यति, तावदेव पूर्वं संवेदनसारतया प्रकाशमात्रत्वेन बिन्दुतया आस्ते—अमिति ।
ततस्तत्रैव अनुत्तरस्य विसर्गो जायते—अः इति । ७.९
एवं षोडशकं परामर्शानां बीजस्वरूपम् उच्यते ।
तदुत्थं व्यञ्जनात्मकं योनिरूपम् ।

फिर क्रिया-शक्ति के अन्त में, जब सारा कार्य-रूप अनुत्तर में प्रवेश करने को होता है, उससे ठीक पहले वह संवेदन-सार होकर केवल प्रकाश-रूप बिन्दु बनकर रहता है: यह अं है। फिर वहीं अनुत्तर का विसर्ग जन्म लेता है: यह अः है। यों सोलह परामर्श बीज-रूप कहलाते हैं; उनसे उठा व्यञ्जन-रूप योनि है।

पदपाठ ततः पुनः क्रिया-शक्ति-अन्ते — फिर क्रिया-शक्ति के अन्त में · सर्वं कार्य-भूतं यावत् अनुत्तरे प्रवेक्ष्यति — जब सारा कार्य-रूप अनुत्तर में प्रवेश करने को होता है · तावत् एव पूर्वं — उससे ठीक पहले · संवेदन-सारतया प्रकाश-मात्रत्वेन बिन्दुतया आस्ते — वह संवेदन-सार होकर केवल प्रकाश-रूप बिन्दु बनकर रहता है · अम् इति — यह अं है · ततः तत्र एव अनुत्तरस्य विसर्गः जायते — फिर वहीं अनुत्तर का विसर्ग जन्म लेता है · अः इति — यह अः है · एवं षोडशकं परामर्शानां बीज-स्वरूपम् उच्यते — यों सोलह परामर्श बीज-रूप कहलाते हैं · तत्-उत्थं व्यञ्जन-आत्मकं योनि-रूपम् — उनसे उठा व्यञ्जन-रूप योनि है

तत्र अनुत्तरात् कवर्गः, श्रद्धायाः इच्छायाः चवर्गः, सकर्मिकाया इच्छाया द्वौ टवर्गस्तवर्गश्च, उन्मेषात् पवर्गः—शक्तिपञ्चकयोगात् पञ्चकत्वम् ।

इच्छाया एव त्रिविधाया य-र-लाः, उन्मेषात् वकारः, इच्छाया एव त्रिविधायाः श-ष-साः, विसर्गात् हकारः, योनिसंयोगजः क्षकारः । ७.१०

उनमें अनुत्तर से क-वर्ग; श्रद्धा-रूप इच्छा से च-वर्ग; कर्म-सहित इच्छा से दो — ट-वर्ग और त-वर्ग; उन्मेष से प-वर्ग — पाँच शक्तियों के योग से हर वर्ग में पाँच। तीन प्रकार की इच्छा से ही य र ल; उन्मेष से व; तीन प्रकार की इच्छा से ही श ष स; विसर्ग से ह; और योनियों के संयोग से क्ष।

पदपाठ तत्र अनुत्तरात् क-वर्गः — उनमें अनुत्तर से क-वर्ग · श्रद्धायाः इच्छायाः च-वर्गः — श्रद्धा-रूप इच्छा से च-वर्ग · सकर्मिकायाः इच्छायाः द्वौ ट-वर्गः त-वर्गः च — कर्म-सहित इच्छा से दो — ट-वर्ग और त-वर्ग · उन्मेषात् प-वर्गः — उन्मेष से प-वर्ग · शक्ति-पञ्चक-योगात् पञ्चकत्वम् — पाँच शक्तियों के योग से हर वर्ग में पाँच · इच्छायाः एव त्रिविधायाः य-र-लाः — तीन प्रकार की इच्छा से ही य र ल · उन्मेषात् व-कारः — उन्मेष से व · इच्छायाः एव त्रिविधायाः श-ष-साः — तीन प्रकार की इच्छा से ही श ष स · विसर्गात् ह-कारः — विसर्ग से ह · योनि-संयोग-जः क्ष-कारः — और योनियों के संयोग से क्ष

इत्येवम् एष भगवान् अनुत्तर एव कुलेश्वररूपः ।
तस्य च एकैव कौलिकी विसर्गशक्तिः, यया आनन्दरूपात् प्रभृति इयता
बहिःसृष्टिपर्यन्तेन प्रस्पन्दतः वर्गादिपरामर्शा एव बहिस्तत्त्वरूपतां प्राप्ताः ।
स च एष विसर्गस्त्रिधा, आणवः चित्तविश्रान्तिरूपः, शाक्तः ७.११
चित्तसंबोधलक्षणः, शांभवः चित्तप्रलयरूपः इति ।
एवं विसर्ग एव विश्वजनने भगवतः शक्तिः ।

यों यह भगवान् अनुत्तर ही कुलेश्वर-रूप है। उसकी एक ही कौलिकी विसर्ग-शक्ति है, जिससे — आनन्द-रूप से लेकर बाहरी सृष्टि तक स्पन्दित होते हुए — वर्ग आदि के परामर्श ही बाहरी तत्त्वों का रूप पा लेते हैं। यह विसर्ग तीन तरह का है: आणव, जो चित्त का विश्राम है; शाक्त, जिसका लक्षण चित्त का जागना है; शाम्भव, जो चित्त का विलय है। यों विश्व को जन्म देने में विसर्ग ही भगवान् की शक्ति है।

पदपाठ इति एवम् एषः भगवान् अनुत्तरः एव कुल-ईश्वर-रूपः — यों यह भगवान् अनुत्तर ही कुलेश्वर-रूप है · तस्य च एका एव कौलिकी विसर्ग-शक्तिः — और उसकी एक ही कौलिकी विसर्ग-शक्ति है · यया आनन्द-रूपात् प्रभृति — जिससे आनन्द-रूप से लेकर · इयता बहिः-सृष्टि-पर्यन्तेन प्रस्पन्दतः — बाहरी सृष्टि तक स्पन्दित होते हुए · वर्ग-आदि-परामर्शाः एव बहिः-तत्त्व-रूपतां प्राप्ताः — वर्ग आदि के परामर्श ही बाहरी तत्त्वों का रूप पा लेते हैं · सः च एषः विसर्गः त्रिधा — और यह विसर्ग तीन तरह का है · आणवः चित्त-विश्रान्ति-रूपः — आणव, जो चित्त का विश्राम है · शाक्तः चित्त-संबोध-लक्षणः — शाक्त, जिसका लक्षण चित्त का जागना है · शांभवः चित्त-प्रलय-रूपः इति — शाम्भव, जो चित्त का विलय है · एवं विसर्गः एव विश्व-जनने भगवतः शक्तिः — यों विश्व को जन्म देने में विसर्ग ही भगवान् की शक्ति है

इत्येवम् इयतो यदा निर्विभागतया एव परामर्शः तदा एक एव भगवान्,
बीजयोनितया भागशः परामर्शे शक्तिमान् शक्तिश्च ।
पृथक् अष्टकपरामर्शे चक्रेश्वरसाहित्येन नववर्गः, एकैकपरामर्शप्राधान्ये
पञ्चाशदात्मकता । ७.१२
तत्रापि संभवद्भागभेदपरामर्शने एकाशीतिरूपत्वम् ।
वस्तुतस्तु षट् एव परामर्शाः, प्रसरणप्रतिसंचरणयोगेन द्वादश भवन्तः
परमेश्वरस्य विश्वशक्तिपूर्णत्वं पुष्णन्ति ।
ता एव एताः परामर्शरूपत्वात् शक्तयो भगवत्यः श्रीकालिका इति निरुक्ताः ।

जब इतने सबका अविभक्त रूप से ही परामर्श हो, तब एक ही भगवान् है। बीज और योनि के रूप में दो भागों में परामर्श हो तो शक्तिमान् और शक्ति। अलग-अलग अष्टकों में परामर्श हो तो चक्रेश्वर के साथ नौ वर्ग; एक-एक परामर्श को प्रधान मानें तो पचास; और उनमें सम्भव भाग-भेदों का परामर्श करें तो इक्यासी। पर वास्तव में परामर्श छह ही हैं, जो प्रसार और प्रतिसंचार के योग से बारह होकर परमेश्वर की विश्व-शक्ति-पूर्णता का पोषण करते हैं। ये ही शक्तियाँ, भगवतियाँ, परामर्श-रूप होने से श्रीकालिका कहलाती हैं।

पदपाठ इति एवम् इयतः यदा निर्विभागतया एव परामर्शः — जब इतने सबका अविभक्त रूप से ही परामर्श हो · तदा एकः एव भगवान् — तब एक ही भगवान् है · बीज-योनितया भागशः परामर्शे — बीज और योनि के रूप में दो भागों में परामर्श हो तो · शक्तिमान् शक्तिः च — शक्तिमान् और शक्ति · पृथक् अष्टक-परामर्शे — अलग-अलग अष्टकों में परामर्श हो तो · चक्र-ईश्वर-साहित्येन नव-वर्गः — चक्रेश्वर के साथ नौ वर्ग · एक-एक-परामर्श-प्राधान्ये पञ्चाशत्-आत्मकता — एक-एक परामर्श को प्रधान मानें तो पचास · तत्र अपि संभवत्-भाग-भेद-परामर्शने एकाशीति-रूपत्वम् — और उनमें सम्भव भाग-भेदों का परामर्श करें तो इक्यासी · वस्तुतः तु षट् एव परामर्शाः — पर वास्तव में परामर्श छह ही हैं · प्रसरण-प्रतिसंचरण-योगेन द्वादश भवन्तः — जो प्रसार और प्रतिसंचार के योग से बारह होकर · परमेश्वरस्य विश्व-शक्ति-पूर्णत्वं पुष्णन्ति — परमेश्वर की विश्व-शक्ति-पूर्णता का पोषण करते हैं · ताः एव एताः परामर्श-

रूपत्वात् शक्तयः भगवत्यः — ये ही शक्तियाँ, भगवतियाँ, परामर्श-रूप होने से · **श्री-कालिकाः इति निरुक्ताः** — श्रीकालिका कहलाती हैं

एते च शक्तिरूपा एव शुद्धाः परामर्शाः शुद्धविद्यायां परापररूपत्वेन मायोन्मेषमात्रसंकोचात् विद्याविद्येश्वररूपतां भजन्ते । मायायां पुनः स्फुटीभूतभेदविभागा मायीयवर्णतां भजन्ते, ये पश्यन्तीमध्यमावैखरीषु व्यावहारिकत्वम् आसाद्य बहीरूपतत्त्वस्वभावतापत्तिपर्यन्ताः, ते च मायीया अपि शरीरकल्पत्वेन यदा दृश्यन्ते, यदा च तेषाम् उक्तनयैरेतैः जीवितस्थानीयैः शुद्धैः परामर्शैः ७.१३ **प्रत्युज्जीवनं क्रियते तदा ते सवीर्या भवन्ति, ते च तादृशा भोगमोक्षप्रदाः, इत्येवं सकलपरामर्शविश्रान्तिमात्ररूपं प्रतिबिम्बितसमस्ततत्त्वभूतभुवनभेदम् आत्मानं पश्यतो निर्विकल्पतया शांभवेन समावेशेन जीवन्मुक्तता । अत्रापि पूर्ववत् न मन्त्रादियन्त्रणा काचिदिति ।**

ये शक्ति-रूप शुद्ध परामर्श शुद्धविद्या में परापर रूप होकर — केवल माया के उन्मेष से सिकुड़कर — विद्या और विद्येश्वर का रूप लेते हैं। पर माया में, भेद-विभाग स्पष्ट हो जाने पर, वे मायीय वर्ण बन जाते हैं, जो पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी में व्यवहार-योग्य होकर बाहरी तत्त्वों का स्वभाव पाने तक जाते हैं। ये मायीय वर्ण जब शरीर जैसे देखे जाते हैं, और फिर कही गई रीति से उनके प्राण-रूप शुद्ध परामर्शों से उन्हें जीवित किया जाता है, तब वे वीर्यवान् हो जाते हैं — और ऐसे वर्ण भोग और मोक्ष देते हैं। यों जो आत्मा को सब परामर्शों के एकमात्र विश्राम-स्थान के रूप में, सब तत्त्व, भूत और भुवन के भेदों से प्रतिबिम्बित देखता है, उसे निर्विकल्प शाम्भव समावेश से जीवन्मुक्ति होती है। यहाँ भी पहले की तरह मन्त्र आदि का कोई नियम नहीं।

पदपाठ एते च शक्ति-रूपाः एव शुद्धाः परामर्शाः — और ये शक्ति-रूप शुद्ध परामर्श · शुद्ध-विद्यायां पर-अपर-रूपत्वेन — शुद्धविद्या में परापर रूप होकर · माया-उन्मेष-मात्र-संकोचात् — केवल माया के उन्मेष से

सिकुड़कर · विद्या-विद्येश्वर-रूपतां भजन्ते — विद्या और विद्येश्वर का रूप लेते हैं · मायायां पुनः स्फुटीभूत-भेद-विभागाः — पर माया में, भेद-विभाग स्पष्ट हो जाने पर · मायीय-वर्णतां भजन्ते — वे मायीय वर्ण बन जाते हैं · ये पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीषु व्यावहारिकत्वम् आसाद्य — जो पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी में व्यवहार-योग्य होकर · बहीरूप-तत्त्व-स्वभावता-आपत्ति-पर्यन्ताः — बाहरी तत्त्वों का स्वभाव पाने तक जाते हैं · ते च मायीयाः अपि शरीर-कल्पत्वेन यदा दृश्यन्ते — और ये मायीय वर्ण जब शरीर जैसे देखे जाते हैं · यदा च तेषाम् उक्त-नयैः एतैः जीवित-स्थानीयैः शुद्धैः परामर्शैः प्रत्युज्जीवनं क्रियते — और जब कही गई रीति से उनके प्राण-रूप शुद्ध परामर्शों से उन्हें फिर जीवित किया जाता है · तदा ते सवीर्याः भवन्ति — तब वे वीर्यवान् हो जाते हैं · ते च तादृशाः भोग-मोक्ष-प्रदाः — और ऐसे वर्ण भोग और मोक्ष देते हैं · इति एवं सकल-परामर्श-विश्रान्ति-मात्र-रूपम् — यों सब परामर्शों के एकमात्र विश्राम-स्थान के रूप में · प्रतिबिम्बित-समस्त-तत्त्व-भूत-भुवन-भेदम् आत्मानं पश्यतः — जो आत्मा को सब तत्त्व, भूत और भुवन के भेदों से प्रतिबिम्बित देखता है, उसे · निर्विकल्पतया शांभवेन समावेशेन जीवन्मुक्तता — निर्विकल्प शाम्भव समावेश से जीवन्मुक्ति होती है · अत्र अपि पूर्ववत् न मन्त्र-आदि-यन्त्रणा काचित् इति — यहाँ भी पहले की तरह मन्त्र आदि का कोई नियम नहीं

अन्तर्विभाति सकलं जगदात्मनीह
यद्वद्विचित्ररचना मुकुरान्तराले ।
बोधः परं निजविमर्शरसानुवृत्त्या
विश्वं परामृशति नो मुकुरस्तथा तु ॥ ७

यहाँ सारा जगत् आत्मा के भीतर चमकता है, जैसे दर्पण के भीतर रंग-बिरंगी रचना। पर बोध अपने विमर्श के रस के साथ विश्व को ग्रहण भी करता है — दर्पण वैसा नहीं करता।

पदपाठ अन्तः — भीतर · विभाति — चमकता है · सकलम् — सारा · जगत् — जगत् · आत्मनि — आत्मा में · इह — यहाँ · यद्वत् — जैसे · विचित्र-रचना — रंग-बिरंगी रचना · मुकुर-अन्तराले — दर्पण के भीतर · बोधः — बोध · परम् — पर · निज-विमर्श-रस-अनुवृत्त्या — अपने विमर्श के रस के साथ · विश्वम् — विश्व को · परामृशति — ग्रहण करता है · नो — नहीं · मुकुरः — दर्पण · तथा — वैसा · तु — तो

संवेअण निम्मल दप्पणम्मि
सअलं फुरत्त निअसारं ।
आमरिसण रस सरहस
विमट्टरूअं सइं भाइ ॥

७.१४

संवेदन के निर्मल दर्पण में सब कुछ अपने सार-रूप में चमकता है; विमर्श के रस के रहस्य सहित विश्व-रूप अपने आप चमकता है।

पदपाठ संवेअण निम्मल दप्पणम्मि — संवेदन के निर्मल दर्पण में · सअलं फुरत्त निअसारं — सब कुछ अपने सार-रूप में चमकता है · आमरिसण रस सरहस — विमर्श के रस के रहस्य सहित · विमट्टरूअं सइं भाइ — विश्व-रूप अपने आप चमकता है

इअ सुणअ विमलमेणं
निअ अप्पाणं समत्थवत्थमअम् ।
जो जोअय सो परभैरइ
बोव्व परणिव्वइं लहइ ॥

७.१५

यह सुनकर जो इस निर्मल, सब वस्तुओं से बने अपने आत्मा से जुड़ता है, वह परम भैरव होकर परम निर्वृति पाता है।

पदपाठ इअ सुणअ — यह सुनकर · विमलमेणं निअ अप्पाणं — इस निर्मल अपने आत्मा को · समत्थवत्थमअम् — सब वस्तुओं से बना हुआ · जो जोअय — जो उससे जुड़ता है · सो परभैरइ बोव्व — वह परम भैरव होकर · परणिव्वइं लहइ — परम निर्वृति पाता है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे शांभवोपायप्रकाशनं नाम तृतीयमाह्निकम्

॥ ३ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में शाम्भवोपायप्रकाशन नामक तीसरा आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

चतुर्थमाह्निकम्

शाक्तोपायप्रकाशनम्

जब कोई एक निर्विकल्प झलक में आत्मा के प्रकाश में प्रवेश नहीं कर पाता, तब वह विकल्प पर ही काम कर सकता है। सत्तर्क, सदागम और सद्गुरु के उपदेश से क्रमशः संस्कृत किया हुआ विकल्प उस "मैं बद्ध हूँ" वाले विकल्प को तोड़ देता है जो संसार चलाता है, और यह निश्चय बनता है — "मैं सब तत्त्वों से परे असीम चेतना हूँ, विश्व का प्राण हूँ, और विश्व भी मैं ही हूँ।" वैष्णव आदि, अपने ही आगम से बँधे, कभी इस ओर नहीं मुड़ते; केवल दृढ़ शक्तिपात से बिंधे लोग ही मुड़ते हैं। इससे परम तत्त्व विकल्प का विषय नहीं बन जाता, क्योंकि विकल्प केवल द्वैत की वासना को मिटाता है; तत्त्व तो सब जगह स्वयं प्रकाशित है। सत्तर्क, जो शुद्धविद्या है, अकेला साक्षात् उपाय है; योग के बाहरी अंग — यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, यहाँ तक कि ध्यान और समाधि — केवल वेद्य वस्तु तक पहुँचते हैं। अपने स्वभाव में "अभ्यास" भी सम्भव नहीं, क्योंकि वहाँ न कुछ लेना है, न छोड़ना। वह सत्तर्क अनेक रूप लेता है: याग है सब भावों को परमेश्वर में अर्पित करना, क्योंकि वे उसी में टिके हैं; होम है उन्हें उसकी संवित् की अग्नि में गला देना; जप है भीतर यह परामर्श कि "यह परम तत्त्व मेरा अपना स्वभाव है"; व्रत है देह और घड़े को एक-सा परमेश्वर देखना — "सर्वसाम्य ही परम व्रत है"; योग है उस स्वरूप का निरन्तर अनुसन्धान। परमेश्वर पूर्ण संवित्-स्वभाव है, और यह पूर्णता ही उसकी शक्ति है, जिसे आगम अनेक नामों से कहते हैं। उसकी शक्तियाँ अनगिनत हैं, पर पूरा विश्व तीन में समा जाता है — परा, जो सबको निर्विकल्प संवित् के रूप में धारण करती है; परापरा, जो दर्पण में हाथी की तरह भेद और अभेद दोनों से; अपरा, जो सबको अलग-अलग रखती है — और चौथी, स्वयं परा, कालसंकर्षिणी, जो तीनों को निगल लेती है। ये चार शक्तियाँ सृष्टि, स्थिति और संहार में काम करके बारह होती हैं; फिर आह्निक उन बारह गतियों को गिनाता है जिनसे संवित् किसी भाव को "कलित" करती है — भीतर पहली हलचल से लेकर स्वतन्त्र प्रमाता में उसके अन्तिम विलय तक। ये ही बारह कालियाँ हैं, और "कलन" का अर्थ है गति, क्षेप, ज्ञान, गणना, भोग, शब्दन और अपने में लय। यहाँ कहा गया याग, होम आदि सब इसी रूप में देखे गए महेश्वर में करना

है; विष्णु से शिव तक किसी भी स्तर को परम मानना मिथ्या दृष्टि है जिसे छोड़ना ही होगा, और किसी भी शास्त्र का शुद्धि-अशुद्धि, विधि-निषेध का कोई नियम यहाँ कुछ नहीं करता। दो श्लोक: पशु का निश्चय "मैं जड़ हूँ, बँधा हूँ, मलिन हूँ, दूसरे से चलाया जाता हूँ" उलटे दृढ़ निश्चय से तुरन्त विश्व-शरीर पति में बदल जाता है; और योगी को सदा देखना चाहिए कि यह निश्चय कैसे मिलता है, बच्चों के उपदेशों से कभी न डिगे। देशी छन्द वही कहते हैं: जैसा-जैसा निश्चय चमकता है, वैसा-वैसा प्रभाव होता है; जिसके हृदय में "मैं मलिन हूँ, मैं पशु हूँ" बसा है, उसे परम तत्त्व कैसे चमके? — जबकि परशिव-सूर्य की किरणों से खिले हृदय-कमल में विमर्श का भ्रमर गुनगुनाता है "मैं शिवनाथ हूँ, सब भावों से भरा हुआ।"

— अथ शाक्तोपायः —

तत्र यदा विकल्पं क्रमेण संस्कुरुते समनन्तरोक्तस्वरूपप्रवेशाय, तदा भावनाक्रमस्य सत्तर्कसदागमसद्गुरूपदेशपूर्वकस्य अस्ति उपयोगः । तथाहि—विकल्पबलात् एव जन्तवो बद्धम् आत्मानम् अभिमन्यन्ते, स अभिमानः संसारप्रतिबन्धहेतुः, अतः प्रतिद्वन्द्विरूपो विकल्प उदितः संसारहेतुं विकल्पं दलयति इति अभ्युदयहेतुः । ८.१

स च एवं-रूपः समस्तेभ्यः परिच्छिन्नस्वभावेभ्यः शिवान्तेभ्यः तत्त्वेभ्यो यत् उत्तीर्णम् अपरिच्छिन्नसंविन्मात्ररूपं तदेव च परमार्थः, तत् वस्तुव्यवस्थास्थानं, तत् विश्वस्य ओजः, तेन प्राणिति विश्वम्, तदेव च अहम्, अतो विश्वोत्तीर्णो विश्वात्मा च अहम् इति ।

जब कोई अभी कहे गए स्वरूप में प्रवेश के लिए विकल्प को क्रम से संस्कृत करता है, तब भावना के उस क्रम का उपयोग है जो सत्तर्क, सदागम और सद्गुरु के उपदेश से शुरू होता है। क्योंकि विकल्प के बल से ही जीव अपने को बँधा हुआ मानते हैं, और वही अभिमान उन्हें संसार में बाँधे रखता है। इसलिए उसके विरोधी रूप में उठा हुआ विकल्प संसार के कारण विकल्प को तोड़ देता है, और इस तरह वह अभ्युदय का कारण है। और वह विकल्प इस रूप का है: जो शिव तक के सब सीमित तत्त्वों से परे है, असीम केवल संवित्-रूप — वही परमार्थ है; वह वस्तुओं की व्यवस्था का आधार है; वह विश्व का ओज है; उससे विश्व जीता है; और वही मैं हूँ। इसलिए मैं विश्व से परे भी हूँ और विश्व-रूप भी।

पदपाठ तत्र यदा विकल्पं क्रमेण संस्कुरुते — वहाँ जब कोई विकल्प को क्रम से संस्कृत करता है · समनन्तर-उक्त-स्वरूप-प्रवेशाय — अभी कहे गए स्वरूप में प्रवेश के लिए · तदा भावना-क्रमस्य अस्ति उपयोगः — तब भावना के क्रम का उपयोग है · सत्तर्क-सदागम-सद्गुरु-उपदेश-पूर्वकस्य — जो सत्तर्क, सदागम और सद्गुरु के उपदेश से शुरू होता है · तथाहि — क्योंकि · विकल्प-बलात् एव जन्तवो

बद्धम् आत्मानम् अभिमन्यन्ते — विकल्प के बल से ही जीव अपने को बँधा हुआ मानते हैं · **स अभिमानः संसार-प्रतिबन्ध-हेतुः** — वह अभिमान संसार में बँधे रहने का कारण है · **अतः प्रतिद्वन्द्वि-रूपो विकल्प उदितः** — इसलिए उसके विरोधी रूप में उठा हुआ विकल्प · **संसार-हेतुं विकल्पं दलयति** — संसार के कारण विकल्प को तोड़ देता है · **इति अभ्युदय-हेतुः** — इस तरह वह अभ्युदय का कारण है · **स च एवं-रूपः** — और वह इस रूप का है · **समस्तेभ्यः परिच्छिन्न-स्वभावेभ्यः शिव-अन्तेभ्यः तत्त्वेभ्यो यत् उत्तीर्णम्** — जो शिव तक के सब सीमित स्वभाव वाले तत्त्वों से परे है · **अपरिच्छिन्न-संवित्-मात्र-रूपम्** — जो असीम केवल संवित्-रूप है · **तत् एव च परमार्थः** — वही परमार्थ है · **तत् वस्तु-व्यवस्था-स्थानम्** — वह वस्तुओं की व्यवस्था का आधार है · **तत् विश्वस्य ओजः** — वह विश्व का ओज है · **तेन प्राणिति विश्वम्** — उससे विश्व जीता है · **तत् एव च अहम्** — और वही मैं हूँ · **अतो विश्व-उत्तीर्णो विश्व-आत्मा च अहम् इति** — इसलिए मैं विश्व से परे भी हूँ और विश्व-रूप भी

स च अयं मायान्धानां न उत्पद्यते सत्तर्कादीनाम् अभावात् ।
वैष्णवाद्या हि तावन्मात्र एव आगमे रागतत्त्वेन नियमिता इति न ऊर्ध्वदर्शनेऽपि
तदुन्मुखतां भजन्ते, ततः सत्तर्कसदागमसद्गुरूपदेशद्वेषिण एव ।
यथोक्तं पारमेश्वरे—
‘वैष्णवाद्याः समस्तास्ते विद्यारागेण रञ्जिताः ।
न विन्दन्ति परं तत्त्वं सर्वज्ञज्ञानवर्जिताः ॥’ इति ।
तस्मात् शांभवदृढशक्तिपातविद्धा एव सदागमादिक्रमेण विकल्पं संस्कृत्य परं
स्वरूपं प्रविशन्ति ।

८.२

और यह विकल्प माया से अन्धे लोगों में नहीं उठता, क्योंकि उनमें सत्तर्क आदि नहीं हैं। वैष्णव आदि राग-तत्त्व से अपने ही आगम तक सीमित रखे गए हैं, इसलिए ऊँचा दर्शन सामने होने पर भी वे उसकी ओर नहीं मुड़ते; इसीलिए वे सत्तर्क, सदागम और सद्गुरु के उपदेश से द्वेष ही करते हैं। जैसा पारमेश्वर में कहा है: "वे सब वैष्णव आदि, विद्या के राग से रँगे हुए, सर्वज्ञ के ज्ञान से रहित होकर परम तत्त्व को नहीं पाते।" इसलिए केवल शाम्भव दृढ़ शक्तिपात से बिंधे हुए लोग ही सदागम आदि के क्रम से विकल्प को संस्कृत करके परम स्वरूप में प्रवेश करते हैं।

पदपाठ स च अयं माया-अन्धानां न उत्पद्यते — और यह विकल्प माया से अन्धे लोगों में नहीं उठता · सत्तर्क-आदीनाम् अभावात् — क्योंकि उनमें सत्तर्क आदि नहीं हैं · वैष्णव-आद्या हि — क्योंकि वैष्णव आदि · तावन्मात्र एव आगमे रागतत्त्वेन नियमिताः — राग-तत्त्व से अपने ही आगम तक सीमित रखे गए हैं · इति न ऊर्ध्व-दर्शने अपि तत्-उन्मुखतां भजन्ते — इसलिए ऊँचा दर्शन होने पर भी वे उसकी ओर नहीं मुड़ते · ततः सत्तर्क-सदागम-सद्गुरु-उपदेश-द्वेषिण एव — इसलिए वे सत्तर्क, सदागम और सद्गुरु के उपदेश से द्वेष ही करते हैं · यथा उक्तं पारमेश्वरे — जैसा पारमेश्वर में कहा है · वैष्णव-आद्याः समस्ताः ते — वे सब वैष्णव आदि · विद्या-रागेण रञ्जिताः — विद्या के राग से रँगे हुए · न विन्दन्ति परं तत्त्वम् — परम तत्त्व को नहीं पाते · सर्वज्ञ-ज्ञान-वर्जिताः इति — सर्वज्ञ के ज्ञान से रहित होकर · तस्मात् शांभव-दृढ-शक्तिपात-आविद्धा एव — इसलिए केवल शाम्भव दृढ़ शक्तिपात से बिंधे हुए लोग ही · सदागम-आदि-

क्रमेण विकल्पं संस्कृत्य — सदागम आदि के क्रम से विकल्प को संस्कृत करके · परं स्वरूपं प्रविशन्ति — परम स्वरूप में प्रवेश करते हैं

ननु इत्थं परं तत्त्वं विकल्प्यरूपं स्यात्?, मैवम्—विकल्पस्य द्वैताधिवासभङ्गमात्रे चरितार्थत्वात्, परं तत्त्वं तु सर्वत्र सर्वरूपतया स्वप्रकाशमेव इति न तत्र विकल्पः कस्यैचित् उपक्रियायै खण्डनायै वा । तत्र अतिदृढशक्तिपाताविद्धस्य स्वयमेव सांसिद्धिकतया सत्तर्क उदेति, योऽसौ देवीभिः दीक्षित इति उच्यते ।

८.३

अन्यस्य आगमक्रमेण इत्यादि सविस्तरं शक्तिपातप्रकाशने वक्ष्यामः ।

पर तब क्या परम तत्त्व विकल्प का विषय हो जाएगा? ऐसा नहीं। विकल्प का काम केवल द्वैत की वासना तोड़ने में पूरा हो जाता है, जबकि परम तत्त्व सब जगह सब रूपों में स्वयं प्रकाशित है; इसलिए वहाँ विकल्प न किसी चीज़ की सहायता करता है, न खण्डन। उनमें, जो अति दृढ़ शक्तिपात से बिंधा है, उसमें सत्तर्क अपने आप, सहज रूप से उठता है; उसे देवियों द्वारा दीक्षित कहा जाता है। दूसरे को आगम के क्रम से, इत्यादि — यह सब हम शक्तिपात के प्रकाशन में विस्तार से कहेंगे।

पदपाठ ननु इत्थं परं तत्त्वं विकल्प्य-रूपं स्यात् — पर तब क्या परम तत्त्व विकल्प का विषय हो जाएगा? · मा एवम् — ऐसा नहीं · विकल्पस्य द्वैत-अधिवास-भङ्ग-मात्रे चरितार्थत्वात् — क्योंकि विकल्प का काम केवल द्वैत की वासना तोड़ने में पूरा हो जाता है · परं तत्त्वं तु सर्वत्र सर्व-रूपतया स्व-प्रकाशम् एव — पर परम तत्त्व तो सब जगह सब रूपों में स्वयं प्रकाशित है · इति न तत्र विकल्पः कस्यचित् उपक्रियायै खण्डनायै वा — इसलिए वहाँ विकल्प न किसी की सहायता करता है, न खण्डन · तत्र अति-दृढ-शक्तिपात-आविद्धस्य — उनमें, जो अति दृढ़ शक्तिपात से बिंधा है, उसमें · स्वयम् एव सांसिद्धिकतया सत्तर्क उदेति — सत्तर्क अपने आप, सहज रूप से उठता है · यः असौ देवीभिः दीक्षित इति उच्यते — उसे देवियों द्वारा दीक्षित कहा जाता है · अन्यस्य आगम-क्रमेण इति-आदि — दूसरे को आगम के क्रम से, इत्यादि · सविस्तरं शक्तिपात-प्रकाशने वक्ष्यामः — शक्तिपात के प्रकाशन में विस्तार से कहेंगे

किं तु गुरोरागमनिरूपणे व्यापारः, आगमस्य च निःशङ्कसजातीयतत्प्रबन्धप्रसवनिबन्धनसमुचितविकल्पोदये व्यापारः, तथाविधविकल्पप्रबन्ध एव सत्तर्क इति उक्तः, स एव च भावना भण्यते ८.४ **अस्फुटत्वात् भूतमपि अर्थम् अभूतमिव स्फुटत्वापादनेन भाव्यते यया इति ।**

पर गुरु का काम आगम का निरूपण है, और आगम का काम ऐसा उचित विकल्प उठाना है जो निःशंक हो और अपने ही जैसे विकल्पों की अटूट धारा को जन्म दे। ऐसे विकल्पों की अटूट धारा ही सत्तर्क कही गई है। उसी को भावना भी कहते हैं, क्योंकि उससे वह वस्तु, जो है तो सही पर अस्पष्ट होने से मानो नहीं है, स्पष्ट करके मानो सत् की जाती है।

पदपाठ किं तु गुरोः आगम-निरूपणे व्यापारः — पर गुरु का काम आगम का निरूपण है · आगमस्य च व्यापारः — और आगम का काम है · निःशङ्क-सजातीय-तत्-प्रबन्ध-प्रसव-निबन्धन-समुचित-विकल्प-उदये — ऐसा उचित विकल्प उठाना जो निःशंक हो और अपने ही जैसे विकल्पों की अटूट धारा को जन्म दे · तथाविध-विकल्प-प्रबन्ध एव सत्तर्क इति उक्तः — ऐसे विकल्पों की अटूट धारा ही सत्तर्क कही गई है · स एव च भावना भण्यते — और उसी को भावना कहते हैं · अस्फुटत्वात् भूतम् अपि अर्थम् अभूतम् इव — जो वस्तु है, पर अस्पष्ट होने से मानो नहीं है · स्फुटत्व-आपादनेन भाव्यते यया इति — उसे स्पष्ट करके जिससे मानो सत् किया जाता है

न च अत्र सत्तर्कात् शुद्धविद्याप्रकाशरूपात् ऋते अन्यत् योगाङ्गं साक्षात् उपायः,
—तपःप्रभृतेः नियमवर्गस्य, अहिंसादेश्च यमप्रकारस्य, पूरकादेः
प्राणायामवर्गस्य वेद्यमात्रनिष्ठत्वेन क इव संविदि व्यापारः ।
प्रत्याहारोऽपि करणभूमिमेव सातिशयां कुर्यात्, ध्यानधारणासमाधयोऽपि ८.५
यथोत्तरम् अभ्यासक्रमेण निर्वर्त्यमाना ध्येयवस्तुतादात्म्यं ध्यातुः वितरेयुः ।
अभ्यासश्च परे तत्त्वे शिवात्मनि स्वस्वभावे न संभवत्येव ।

और यहाँ शुद्धविद्या के प्रकाश-रूप सत्तर्क को छोड़कर योग का कोई और अंग साक्षात् उपाय नहीं है। तप आदि नियम, अहिंसा आदि यम, पूरक आदि प्राणायाम — ये केवल वेद्य वस्तु पर टिके हैं, तो संवित् पर इनका भला क्या काम हो सकता है? प्रत्याहार भी केवल इन्द्रियों की भूमि को तेज़ करता है। ध्यान, धारणा और समाधि भी, एक के बाद एक अभ्यास के क्रम से किए जाएँ तो ध्याता को ध्येय वस्तु से एकता ही देंगे। और शिव-रूप परम तत्त्व में, अपने स्वभाव में, अभ्यास सम्भव ही नहीं।

पदपाठ न च अत्र सत्तर्कात् शुद्धविद्या-प्रकाश-रूपात् ऋते — और यहाँ शुद्धविद्या के प्रकाश-रूप सत्तर्क को छोड़कर · अन्यत् योग-अङ्गं साक्षात् उपायः — योग का कोई और अंग साक्षात् उपाय नहीं है · तपः-प्रभृतेः नियम-वर्गस्य — तप आदि नियमों के समूह का · अहिंसा-आदेः च यम-प्रकारस्य — अहिंसा आदि यमों का · पूरक-आदेः प्राणायाम-वर्गस्य — पूरक आदि प्राणायामों का · वेद्य-मात्र-निष्ठत्वेन — केवल वेद्य वस्तु पर टिके होने से · क इव संविदि व्यापारः — संवित् पर भला क्या काम हो सकता है? · प्रत्याहारः अपि करण-भूमिम् एव सातिशयां कुर्यात् — प्रत्याहार भी केवल इन्द्रियों की भूमि को तेज़ करता है · ध्यान-धारणा-समाधयः अपि — ध्यान, धारणा और समाधि भी · यथोत्तरम् अभ्यास-क्रमेण निर्वर्त्यमानाः — एक के बाद एक अभ्यास के क्रम से किए जाते हुए · ध्येय-वस्तु-तादात्म्यं ध्यातुः वितरेयुः — ध्याता को ध्येय वस्तु से एकता ही देंगी · अभ्यासः च परे तत्त्वे शिव-आत्मनि स्व-स्वभावे — और अभ्यास, शिव-रूप परम तत्त्व में, अपने स्वभाव में · न संभवति एव — सम्भव ही नहीं

संविद्रूढस्य प्राणबुद्धिदेहनिष्ठीकरणरूपो हि अभ्यासः—
भारोद्वहनशास्त्रार्थबोधनृत्ताभ्यासवत्, संविद्रूपे तु न किंचित् आदातव्यं न अपसरणीयम् इति कथम् अभ्यासः ।
किं तर्केणापि इति चेत्, उक्तमत्र द्वैताधिवासनिरासप्रकार एव अयं न तु अन्यत् किंचिदिति । ८.६
लौकिकेऽपि वा अभ्यासे चिदात्मत्वेन सर्वरूपस्य तस्य तस्य देहादेः अभिमतरूपताप्रकटीकरणं तदितररूपन्यग्भावनं च इति एष एव अभ्यासार्थः ।
परतत्त्वे तु न किंचित् अपास्यम् इति उक्तम् ।

जो संवित् में पहले से बैठा है, उसे प्राण, बुद्धि और देह में उतारना ही अभ्यास है — जैसे बोझ उठाने, शास्त्र समझने या नाचने का अभ्यास। पर संवित् के स्वरूप में न कुछ लेना है, न हटाना, तो अभ्यास कैसे हो? यदि कहो कि तब तर्क से भी क्या — तो यहाँ कहा जा चुका है कि यह केवल द्वैत की वासना हटाने का तरीका है, और कुछ नहीं। लौकिक अभ्यास में भी अभ्यास का अर्थ यही है: उस-उस देह आदि का, जो चित्-रूप होने से सब रूपों वाला है, चाहा हुआ रूप प्रकट करना और बाकी रूपों को दबाना। पर परम तत्त्व में कुछ हटाना नहीं है, यह कहा जा चुका।

पदपाठ संवित्-रूढस्य — जो संवित् में पहले से बैठा है, उसे · प्राण-बुद्धि-देह-निष्ठीकरण-रूपो हि अभ्यासः — प्राण, बुद्धि और देह में उतारना ही अभ्यास है · भार-उद्वहन-शास्त्रार्थ-बोध-नृत्त-अभ्यासवत् — जैसे बोझ उठाने, शास्त्र समझने या नाचने का अभ्यास · संवित्-रूपे तु न किंचित् आदातव्यं न अपसरणीयम् — पर संवित् के स्वरूप में न कुछ लेना है, न हटाना · इति कथम् अभ्यासः — तो अभ्यास कैसे हो? · किं तर्केण अपि इति चेत् — यदि कहो, तो तर्क से भी क्या? · उक्तम् अत्र — यहाँ कहा जा चुका है · द्वैत-अधिवास-निरास-प्रकार एव अयम् — यह केवल द्वैत की वासना हटाने का तरीका है · न तु अन्यत् किंचित् इति — और कुछ नहीं · लौकिके अपि वा अभ्यासे — या लौकिक अभ्यास में भी · चित्-आत्मत्वेन सर्व-रूपस्य तस्य तस्य देह-आदेः — उस-उस देह आदि का, जो चित्-रूप होने से सब रूपों वाला है · अभिमत-रूपता-प्रकटीकरणम् — चाहा हुआ रूप प्रकट करना · तत्-इतर-रूप-न्यग्भावनं च — और बाकी रूपों को

दबाना · इति एष एव अभ्यास-अर्थः — यही अभ्यास का अर्थ है · पर-तत्त्वे तु न किंचित् अपास्यम् इति उक्तम् — पर परम तत्त्व में कुछ हटाना नहीं है, यह कहा जा चुका

द्वैताधिवासोऽपि नाम न कश्चन पृथक् वस्तुभूतः अपि तु स्वरूपाख्यातिमात्रं तत्, अतो द्वैतापासनं विकल्पेन क्रियत इत्युक्तेः ।

अयं परमार्थः—स्वरूपं प्रकाशमानम् अख्यातिरूपत्वं स्वयं स्वातन्त्र्यात् गृहीतं क्रमेण प्रोज्झ्य विकासोन्मुखम्, अथ विकसत्, अथ विकसितम् इत्यनेन क्रमेण ८.७ **प्रकाशते, तथा प्रकाशनमपि परमेश्वरस्य स्वरूपमेव, तस्मात् न अत्र योगाङ्गानि साक्षात् उपायः ।**

द्वैत की वासना भी कोई अलग असली वस्तु नहीं है; वह केवल अपने स्वरूप की अख्याति है। इसीलिए कहा गया कि द्वैत का हटाना विकल्प से होता है। असल बात यह है: अपना स्वरूप, जो सदा प्रकाशित है, अपनी स्वतन्त्रता से स्वयं ओढ़े हुए अख्याति-रूप को क्रम से छोड़कर इस क्रम से प्रकाशित होता है — खिलने को उन्मुख, फिर खिलता हुआ, फिर खिला हुआ। और यह प्रकाशन भी परमेश्वर का स्वरूप ही है। इसलिए यहाँ योग के अंग साक्षात् उपाय नहीं हैं।

पदपाठ द्वैत-अधिवासः अपि नाम — द्वैत की वासना भी · न कश्चन पृथक् वस्तु-भूतः — कोई अलग असली वस्तु नहीं है · अपि तु स्वरूप-अख्याति-मात्रं तत् — बल्कि वह केवल अपने स्वरूप की अख्याति है · अतो द्वैत-अपासनं विकल्पेन क्रियते इति उक्तेः — इसीलिए कहा गया कि द्वैत का हटाना विकल्प से होता है · अयं परमार्थः — असल बात यह है · स्वरूपं प्रकाशमानम् — अपना स्वरूप, जो प्रकाशित है · अख्याति-रूपत्वं स्वयं स्वातन्त्र्यात् गृहीतं क्रमेण प्रोज्झ्य — अपनी स्वतन्त्रता से स्वयं ओढ़े हुए अख्याति-रूप को क्रम से छोड़कर · विकास-उन्मुखम्, अथ विकसत्, अथ विकसितम् — खिलने को उन्मुख, फिर खिलता हुआ, फिर खिला हुआ · इति अनेन क्रमेण प्रकाशते — इस क्रम से प्रकाशित होता है · तथा प्रकाशनम् अपि परमेश्वरस्य स्वरूपम् एव — और यह प्रकाशन भी परमेश्वर का स्वरूप ही है · तस्मात् न अत्र योग-अङ्गानि साक्षात् उपायः — इसलिए यहाँ योग के अंग साक्षात् उपाय नहीं हैं

तर्कं तु अनुगृह्णीयुरपि, सत्तर्क एव साक्षात् तत्र उपायः, स एव च शुद्धविद्या, स च बहुप्रकारतया संस्कृतो भवति, तद्यथा—यागो होमो जपो व्रतं योग इति, तत्र भावानां सर्वेषां परमेश्वर एव स्थितिः, नान्यत् व्यतिरिक्तम् अस्ति इति विकल्परूढिसिद्धये परमेश्वर एव सर्वभावार्पणं यागः, स च हृद्यत्वात् ये संविदनुप्रवेशं स्वयमेव भजन्ते तेषां सुशकं परमेश्वरे अर्पणम् इत्यभिप्रायेण हृद्यानां कुसुमतर्पणगन्धादीनां बहिरुपयोग उक्तः । ८.८

हाँ, वे तर्क की सहायता कर सकते हैं। वहाँ सत्तर्क ही साक्षात् उपाय है, और वही शुद्धविद्या है; और वह कई तरह से संस्कृत होता है, जैसे — याग, होम, जप, व्रत और योग। उनमें: सब भाव परमेश्वर में ही टिके हैं, उससे अलग और कुछ नहीं है — इस विकल्प को पक्का करने के लिए सब भावों को परमेश्वर में अर्पित करना याग है। और क्योंकि मन को प्रिय चीज़ें, जो अपने आप संवित् में प्रवेश करती हैं, परमेश्वर में आसानी से अर्पित होती हैं — इसी आशय से मन को प्रिय फूल, तर्पण, गन्ध आदि का बाहरी उपयोग कहा गया है।

पदपाठ तर्कं तु अनुगृह्णीयुः अपि — हाँ, वे तर्क की सहायता कर सकते हैं · सत्तर्क एव साक्षात् तत्र उपायः — वहाँ सत्तर्क ही साक्षात् उपाय है · स एव च शुद्धविद्या — और वही शुद्धविद्या है · स च बहु-प्रकारतया संस्कृतो भवति — और वह कई तरह से संस्कृत होता है · तद्यथा—यागो होमो जपो व्रतं योग इति — जैसे — याग, होम, जप, व्रत और योग · तत्र भावानां सर्वेषां परमेश्वर एव स्थितिः — उनमें, सब भाव परमेश्वर में ही टिके हैं · न अन्यत् व्यतिरिक्तम् अस्ति इति — उससे अलग और कुछ नहीं है · विकल्प-रूढि-सिद्धये — इस विकल्प को पक्का करने के लिए · परमेश्वरे एव सर्व-भाव-अर्पणं यागः — सब भावों को परमेश्वर में अर्पित करना याग है · स च हृद्यत्वात् — और क्योंकि मन को प्रिय चीज़ें · ये संवित्-अनुप्रवेशं स्वयम् एव भजन्ते — जो अपने आप संवित् में प्रवेश करती हैं · तेषां सुशकं परमेश्वरे अर्पणम् इति अभिप्रायेण — परमेश्वर में आसानी से अर्पित होती हैं — इस आशय से · हृद्यानां कुसुम-तर्पण-गन्ध-आदीनां बहिः-उपयोग उक्तः — मन को प्रिय फूल, तर्पण, गन्ध आदि का बाहरी उपयोग कहा गया है

सर्वे भावाः परमेश्वरतेजोमया इति रूढविकल्पप्राप्त्यै परमेशसंविदनलतेजसि समस्तभावग्रासरसिकताभिमते तत्तेजोमात्रावशेषत्वसहसमस्तभावविलापनं होमः । ८.९

तथा उभयात्मकपरामर्शोदयार्थं बाह्याभ्यन्तरादिप्रमेयरूपभिन्नभावानपेक्षयैव एवं-विधं तत् परं तत्त्वं स्वस्वभावभूतम् इति अन्तः परामर्शनं जपः ।

सब भाव परमेश्वर के तेज से बने हैं — इस पक्के विकल्प को पाने के लिए परमेश्वर की संवित् रूपी अग्नि के तेज में, जो सब भावों को निगलने में रस लेती मानी जाती है, सब भावों को इस तरह गला देना कि केवल वह तेज बचे — यह होम है। वैसे ही, दोनों रूप वाले परामर्श को उठाने के लिए, बाहरी-भीतरी आदि प्रमेय-रूप अलग-अलग भावों की अपेक्षा किए बिना ही, भीतर यह परामर्श करना कि "ऐसा वह परम तत्त्व मेरा अपना स्वभाव है" — यह जप है।

पदपाठ सर्वे भावाः परमेश्वर-तेजोमयाः इति — सब भाव परमेश्वर के तेज से बने हैं · रूढ-विकल्प-प्राप्त्यै — इस पक्के विकल्प को पाने के लिए · परमेश-संवित्-अनल-तेजसि — परमेश्वर की संवित् रूपी अग्नि के तेज में · समस्त-भाव-ग्रास-रसिकता-अभिमते — जो सब भावों को निगलने में रस लेती मानी जाती है · तत्-तेजो-मात्र-अवशेषत्व-सह-समस्त-भाव-विलापनं होमः — सब भावों को इस तरह गला देना कि केवल वह तेज बचे — यह होम है · तथा उभय-आत्मक-परामर्श-उदय-अर्थम् — वैसे ही, दोनों रूप वाले परामर्श को उठाने के लिए · बाह्य-आभ्यन्तर-आदि-प्रमेय-रूप-भिन्न-भाव-अनपेक्षया एव — बाहरी-भीतरी आदि प्रमेय-रूप अलग-अलग भावों की अपेक्षा किए बिना ही · एवं-विधं तत् परं तत्त्वं स्व-स्वभाव-भूतम् इति — कि ऐसा वह परम तत्त्व मेरा अपना स्वभाव है · अन्तः परामर्शनं जपः — भीतर यह परामर्श करना जप है

सर्वत्र सर्वदा निरुपायपरमेश्वराभिमानलाभाय परमेश्वरसमताभिमानेन देहस्यापि घटादेरपि अवलोकनं व्रतम् ।

यथोक्तं श्रीनन्दिशिखायाम्—

‘...सर्वसाम्यं परं व्रतम् ।’ इति । ८.१०

इत्थं विचित्रैः शुद्धविद्यांशरूपैः विकल्पैः यत् अनपेक्षितविकल्पं स्वाभाविकं परमार्थतत्त्वं प्रकाशते तस्यैव सनातनतथाविधप्रकाशमात्रतारूढये तत्स्वरूपानुसंधानात्मा विकल्पविशेषो योगः ।

सब जगह और सदा निरुपाय परमेश्वर होने का अभिमान पाने के लिए, परमेश्वर से समानता के अभिमान से देह को भी और घड़े आदि को भी एक-सा देखना — यह व्रत है। जैसा श्रीनन्दिशिखा में कहा है: "...सबके साथ समता ही परम व्रत है।" यों शुद्धविद्या के अंश-रूप विविध विकल्पों से जो विकल्प-निरपेक्ष, स्वाभाविक परमार्थ-तत्त्व प्रकाशित होता है, उसी के सदा वैसे केवल प्रकाश-रूप होने में पक्का बैठने के लिए उसके स्वरूप का अनुसन्धान करने वाला विशेष विकल्प — यह योग है।

पदपाठ सर्वत्र सर्वदा — सब जगह, सदा · निरुपाय-परमेश्वर-अभिमान-लाभाय — निरुपाय परमेश्वर होने का अभिमान पाने के लिए · परमेश्वर-समता-अभिमानेन — परमेश्वर से समानता के अभिमान से · देहस्य अपि घट-आदेः अपि अवलोकनं व्रतम् — देह को भी और घड़े आदि को भी देखना व्रत है · यथा उक्तं श्री-नन्दिशिखायाम् — जैसा श्रीनन्दिशिखा में कहा है · सर्व-साम्यं परं व्रतम् इति — सबके साथ समता ही परम व्रत है · इत्थं विचित्रैः शुद्धविद्या-अंश-रूपैः विकल्पैः — यों शुद्धविद्या के अंश-रूप विविध विकल्पों से · यत् अनपेक्षित-विकल्पं स्वाभाविकं परमार्थ-तत्त्वं प्रकाशते — जो विकल्प-निरपेक्ष, स्वाभाविक परमार्थ-तत्त्व प्रकाशित होता है · तस्य एव सनातन-तथाविध-प्रकाश-मात्रता-रूढये — उसी के सदा वैसे केवल प्रकाश-रूप होने में पक्का बैठने के लिए · तत्-स्वरूप-अनुसंधान-आत्मा विकल्प-विशेषो योगः — उसके स्वरूप का अनुसन्धान करने वाला विशेष विकल्प योग है

तत्र परमेश्वरः पूर्णसंवित्स्वभावः, पूर्णतैव अस्य शक्तिः,—कुलं सामर्थ्यम् ऊर्मिः हृदयं सारं स्पन्दः विभूतिः त्रीशिका काली कर्षणी चण्डी वाणी भोगो दृक् नित्या इत्यादिभिः आगमभाषाभिः तत्तदन्वर्थप्रवृत्ताभिः अभिधीयते, तेन तेन रूपेण ध्यायिनां हृदि आस्ताम् इति । ८.११

सा च समग्रशक्तितादर्शनेन पूर्णतासंवित् प्रकाशते ।

शक्तयश्च अस्य असंख्येयाः ।

किं बहुना, यत् विश्वं ता अस्यैव शक्तयः, ताः कथम् उपदेष्टुं शक्याः इति ।

यहाँ परमेश्वर पूर्ण संवित्-स्वभाव है, और यह पूर्णता ही उसकी शक्ति है। उसे आगम के इन और ऐसे शब्दों से, जो अपने-अपने सार्थक अर्थ में चलते हैं, कहा जाता है — कुल, सामर्थ्य, ऊर्मि, हृदय, सार, स्पन्द, विभूति, त्रीशिका, काली, कर्षणी, चण्डी, वाणी, भोग, दृक्, नित्या — ताकि उस-उस रूप में वह ध्यान करने वालों के हृदय में रहे। और वह पूर्णता की संवित् उसे सब शक्तियों वाला देखने से प्रकाशित होती है। उसकी शक्तियाँ अनगिनत हैं। ज़्यादा क्या कहें, जो विश्व है, वह सब उसी की शक्तियाँ हैं; उनका उपदेश कैसे हो सकता है?

पदपाठ तत्र परमेश्वरः पूर्ण-संवित्-स्वभावः — यहाँ परमेश्वर पूर्ण संवित्-स्वभाव है · पूर्णता एव अस्य शक्तिः — पूर्णता ही उसकी शक्ति है · कुलं सामर्थ्यम् ऊर्मिः हृदयं सारं स्पन्दः विभूतिः — कुल, सामर्थ्य, ऊर्मि, हृदय, सार, स्पन्द, विभूति · त्रीशिका काली कर्षणी चण्डी वाणी भोगो दृक् नित्या — त्रीशिका, काली, कर्षणी, चण्डी, वाणी, भोग, दृक्, नित्या · इति-आदिभिः आगम-भाषाभिः — इन और ऐसे आगम के शब्दों से · तत्-तत्-अन्वर्थ-प्रवृत्ताभिः अभिधीयते — जो अपने-अपने सार्थक अर्थ में चलते हैं, वह कही जाती है · तेन तेन रूपेण ध्यायिनां हृदि आस्ताम् इति — ताकि उस-उस रूप में वह ध्यान करने वालों के हृदय में रहे · सा च समग्र-शक्तिता-दर्शनेन पूर्णता-संवित् प्रकाशते — और वह पूर्णता की संवित् सब शक्तियों वाला देखने से प्रकाशित होती है · शक्तयः च अस्य असंख्येयाः — और उसकी शक्तियाँ अनगिनत हैं · किं बहुना — ज़्यादा क्या कहें · यत् विश्वं ताः अस्य एव शक्तयः — जो विश्व है, वह सब उसी की शक्तियाँ हैं · ताः कथम् उपदेष्टुं शक्याः इति — उनका उपदेश कैसे हो सकता है?

तिसृषु तावत् विश्वं समाप्यते, यया इदं शिवादिधरण्यन्तम् अविकल्प्यसंविन्मात्ररूपतया विभर्ति च पश्यति च भासयति च परमेश्वरः सा अस्य श्रीपराशक्तिः ।

यया च दर्पणहस्त्यादिवत् भेदाभेदाभ्यां सा अस्य श्रीपरापराशक्तिः ।

यया परस्परविविक्तात्मना भेदेनैव सा अस्य श्रीमदपराशक्तिः ।

एतत् त्रिविधं यया धारणम् आत्मन्येव क्रोडीकारेण अनुसन्धानात्मना ग्रसते, ८.१२

सा अस्य भगवती श्रीपरैव श्रीमन्मातृसद्भावकालकर्षिण्यादिशब्दान्तरनिरुक्ता ।

ता एताः चतस्रः शक्तयः स्वातन्त्र्यात् प्रत्येकं त्रिधैव वर्तन्ते ।

सृष्टौ स्थितौ संहारे च इति द्वादश भवन्ति ।

विश्व तीन में समा जाता है। जिस शक्ति से परमेश्वर शिव से पृथ्वी तक इस सबको निर्विकल्प केवल संवित् के रूप में धारण करता, देखता और प्रकाशित करता है — वह उसकी श्रीपरा शक्ति है। जिससे दर्पण में हाथी आदि की तरह भेद और अभेद दोनों से — वह उसकी श्रीपरापरा शक्ति है। जिससे एक-दूसरे से अलग, केवल भेद से — वह उसकी श्रीमती अपरा शक्ति है। और जिससे वह इस तीन तरह के धारण को अनुसन्धान-रूप से अपने में ही समेटकर निगल लेता है — वह उसकी भगवती श्रीपरा ही है, जिसे मातृसद्भाव, कालकर्षिणी आदि दूसरे नामों से भी कहा जाता है। ये चार शक्तियाँ स्वतन्त्रता से हर एक तीन रूप में रहती हैं — सृष्टि, स्थिति और संहार में — इस तरह बारह होती हैं।

पदपाठ तिसृषु तावत् विश्वं समाप्यते — विश्व तीन में समा जाता है · यया इदं शिव-आदि-धरणी-अन्तम् — जिससे यह शिव से पृथ्वी तक सब · अविकल्प्य-संवित्-मात्र-रूपतया — निर्विकल्प केवल संवित् के रूप में · विभर्ति च पश्यति च भासयति च परमेश्वरः — परमेश्वर धारण करता, देखता और प्रकाशित करता

है · **सा अस्य श्री-परा-शक्तिः** — वह उसकी श्रीपरा शक्ति है · **यया च दर्पण-हस्ति-आदिवत् भेद-अभेदाभ्याम्** — जिससे दर्पण में हाथी आदि की तरह भेद और अभेद दोनों से · **सा अस्य श्री-परापरा-शक्तिः** — वह उसकी श्रीपरापरा शक्ति है · **यया परस्पर-विविक्त-आत्मना भेदेन एव** — जिससे एक-दूसरे से अलग, केवल भेद से · **सा अस्य श्रीमत्-अपरा-शक्तिः** — वह उसकी श्रीमती अपरा शक्ति है · **एतत् त्रिविधं धारणम्** — इस तीन तरह के धारण को · **यया आत्मनि एव क्रोडीकारेण अनुसन्धान-आत्मना ग्रसते** — जिससे वह अनुसन्धान-रूप से अपने में ही समेटकर निगल लेता है · **सा अस्य भगवती श्री-परा एव** — वह उसकी भगवती श्रीपरा ही है · **श्रीमत्-मातृसद्भाव-कालकर्षिणी-आदि-शब्द-अन्तर-निरुक्ता** — जिसे मातृसद्भाव, कालकर्षिणी आदि दूसरे नामों से भी कहा जाता है · **ताः एताः चतस्रः शक्तयः** — ये चार शक्तियाँ · **स्वातन्त्र्यात् प्रत्येकं त्रिधा एव वर्तन्ते** — स्वतन्त्रता से हर एक तीन रूप में रहती है · **सृष्टौ स्थितौ संहारे च इति** — सृष्टि, स्थिति और संहार में · **द्वादश भवन्ति** — इस तरह बारह होती हैं

तथाहि—१ संवित् पूर्वम् अन्तरेव भावं कलयति, २ ततो बहिरपि स्फुटतया कलयति, ३ तत्रैव रक्तिमयतां गृहीत्वा ततः तमेव भावम् अन्तरुपसंजिहीर्षया कलयति, ४ ततश्च तदुपसंहारविघ्नभूतां शङ्कां निर्मिणोति च ग्रसते च, ५ ग्रस्तशङ्कांशं भावभागम् आत्मनि उपसंहारेण कलयति, ६ तत उपसंहर्तृत्वं ममेदं रूपमित्यपि स्वभावमेव कलयति, ७ तत उपसंहर्तृस्वभावकलने कस्यचिद्भावस्य वासनात्मना अवस्थितिं कस्यचित् तु संविन्मात्रावशेषतां कलयति, ८ ततः स्वरूपकलनानान्तरीयकत्वेनैव करणचक्रं कलयति, ९ ततः करणेश्वरमपि कलयति, १० ततः कल्पितं मायीयं प्रमातृरूपमपि कलयति, ११ सङ्कोचत्यागोन्मुखविकासग्रहणरसिकमपि प्रमातारं कलयति, १२ ततो विकसितमपि रूपं कलयति इति एता द्वादश भगवत्यः संविदः प्रमातॄन् एकं वापि उद्दिश्य युगपत् क्रमेण द्विशः त्रिश इत्यादिस्थित्यापि उदयभागिन्यः चक्रवदावर्तमाना बहिरपि मासकलाराश्यादिक्रमेण अन्ततो वा घटपटादिक्रमेणापि भासमानाः चक्रेश्वरस्य स्वातन्त्र्यं पुष्णत्यः श्रीकालीशब्दवाच्याः ।

८.१३

जैसे: १ संवित् पहले भाव को भीतर ही कलित करती है; २ फिर उसे बाहर भी स्पष्ट रूप से कलित करती है; ३ वहीं उसमें रँगकर, फिर उसी भाव को भीतर समेट लेने की इच्छा से कलित करती है; ४ फिर उस समेटने में बाधा बनने वाली शंका को रचती भी है और निगलती भी है; ५ जिस भाव-भाग की शंका निगल ली गई, उसे अपने में समेटकर कलित करती है; ६ फिर "समेटने वाला होना मेरा रूप है" यों अपने स्वभाव को भी कलित करती है; ७ फिर समेटने वाले स्वभाव के कलन में किसी भाव का वासना-रूप में बने रहना और किसी का केवल संवित् मात्र रह जाना कलित करती है; ८ फिर अपने स्वरूप के कलन से अभिन्न रूप में ही इन्द्रिय-चक्र को

कलित करती है; ९ फिर इन्द्रियों के स्वामी को भी कलित करती है; १० फिर कल्पित मायीय प्रमाता-रूप को भी कलित करती है; ११ संकोच छोड़ने को उन्मुख और विकास ग्रहण करने में रस लेने वाले प्रमाता को भी कलित करती है; १२ फिर पूरी तरह खिले हुए रूप को भी कलित करती है। ये बारह भगवती संविदें — अनेक प्रमाताओं या एक को लक्ष्य करके, एक साथ, क्रम से, दो-दो, तीन-तीन आदि रूप में भी उदित होती हुई, चक्र की तरह घूमती हुई, बाहर भी महीने, कला, राशि आदि के क्रम से या अन्ततः घड़ा, कपड़ा आदि के क्रम से भी प्रकाशित होती हुई, चक्रेश्वर की स्वतन्त्रता को पुष्ट करती हुई — श्रीकाली शब्द से कही जाती हैं।

पदपाठ तथाहि — जैसे · १ संवित् पूर्वम् अन्तः एव भावं कलयति — १ संवित् पहले भाव को भीतर ही कलित करती है · २ ततो बहिः अपि स्फुटतया कलयति — २ फिर बाहर भी स्पष्ट रूप से कलित करती है · ३ तत्र एव रक्तिमयतां गृहीत्वा — ३ वहीं उसमें रँगकर · ततः तम् एव भावम् अन्तः-उपसंजिहीर्षया कलयति — फिर उसी भाव को भीतर समेट लेने की इच्छा से कलित करती है · ४ ततः च तत्-उपसंहार-विघ्न-भूतां शङ्कां निर्मिणोति च ग्रसते च — ४ फिर उस समेटने में बाधा बनने वाली शंका को रचती भी है और निगलती भी है · ५ ग्रस्त-शङ्का-अंशं भाव-भागम् आत्मनि उपसंहारेण कलयति — ५ जिस भाव-भाग की शंका निगल ली गई, उसे अपने में समेटकर कलित करती है · ६ ततः उपसंहर्तृत्वं मम इदं रूपम् इति अपि स्वभावम् एव कलयति — ६ फिर "समेटने वाला होना मेरा रूप है" यों अपने स्वभाव को भी कलित करती है · ७ ततः उपसंहर्तृ-स्वभाव-कलने — ७ फिर समेटने वाले स्वभाव के कलन में · कस्यचित् भावस्य वासना-आत्मना अवस्थितिम् — किसी भाव का वासना-रूप में बने रहना · कस्यचित् तु संवित्-मात्र-अवशेषतां कलयति — और किसी का केवल संवित् मात्र रह जाना कलित करती है · ८ ततः स्वरूप-कलना-अनान्तरीयकत्वेन एव करण-चक्रं कलयति — ८ फिर अपने स्वरूप के कलन से अभिन्न रूप में ही इन्द्रिय-चक्र को कलित करती है · ९ ततः करण-ईश्वरम् अपि कलयति — ९ फिर इन्द्रियों के स्वामी को भी कलित करती है · १० ततः कल्पितं मायीयं प्रमातृ-रूपम् अपि कलयति — १० फिर कल्पित मायीय प्रमाता-रूप को भी कलित करती है · ११ सङ्कोच-त्याग-उन्मुख-विकास-ग्रहण-रसिकम् अपि प्रमातारं कलयति — ११ संकोच छोड़ने को उन्मुख और विकास ग्रहण करने में रस लेने वाले प्रमाता को भी कलित करती है · १२ ततो विकसितम् अपि रूपं कलयति इति — १२ फिर पूरी तरह खिले हुए रूप को भी कलित करती है · एताः द्वादश भगवत्यः संविदः — ये बारह भगवती संविदें · प्रमातॄन् एकं वा अपि उद्दिश्य — अनेक प्रमाताओं या एक को लक्ष्य करके · युगपत् क्रमेण द्विशः त्रिशः इति-आदि-स्थित्या अपि उदय-

भागिन्यः – एक साथ, क्रम से, दो-दो, तीन-तीन आदि रूप में भी उदित होती हुई · चक्रवत् आवर्तमानाः – चक्र की तरह घूमती हुई · बहिः अपि मास-कला-राशि-आदि-क्रमेण – बाहर भी महीने, कला, राशि आदि के क्रम से · अन्ततो वा घट-पट-आदि-क्रमेण अपि भासमानाः – या अन्ततः घड़ा, कपड़ा आदि के क्रम से भी प्रकाशित होती हुई · चक्रेश्वरस्य स्वातन्त्र्यं पुष्णत्यः – चक्रेश्वर की स्वतन्त्रता को पुष्ट करती हुई · श्री-काली-शब्द-वाच्याः – श्रीकाली शब्द से कही जाती हैं

कलनं च—गतिः क्षेपो ज्ञानं गणनं भोगीकरणं शब्दनं स्वात्मलयीकरणं च ।

यदाहुः श्रीभूतिराजगुरवः—

‘क्षेपाज्ज्ञानाच्च काली कलनवशतयाथ...।’ इति । ८.१४

एष च अर्थः तत्र तत्र मद्विरचिते विवरणे प्रकरणस्तोत्रादौ वितत्य वीक्ष्यः ।

न अतिरहस्यम् एकत्र ख्याप्यं, न च सर्वथा गोप्यम् इति हि अस्मद्गुरवः ।

और कलन का अर्थ है — गति, क्षेप, ज्ञान, गणना, भोग बनाना, शब्द करना और अपने में लीन करना। जैसा गुरु श्रीभूतिराज कहते हैं: "क्षेप से और ज्ञान से काली, और कलन के वश से..."। यह विषय जगह-जगह मेरे रचे विवरण, प्रकरण, स्तोत्र आदि में विस्तार से देखना चाहिए। क्योंकि हमारे गुरु कहते हैं: अति रहस्य एक ही जगह नहीं कहना चाहिए, और न पूरी तरह छिपाना चाहिए।

पदपाठ कलनं च – और कलन है · गतिः क्षेपो ज्ञानं गणनं भोगीकरणं शब्दनं स्वात्म-लयीकरणं च – गति, क्षेप, ज्ञान, गणना, भोग बनाना, शब्द करना और अपने में लीन करना · यत् आहुः श्री-भूतिराज-गुरवः – जैसा गुरु श्रीभूतिराज कहते हैं · क्षेपात् ज्ञानात् च काली – क्षेप से और ज्ञान से काली · कलन-वशतया अथ... इति – और कलन के वश से · एष च अर्थः – और यह विषय · तत्र तत्र मत्-विरचिते विवरणे प्रकरण-स्तोत्र-आदौ – जगह-जगह मेरे रचे विवरण, प्रकरण, स्तोत्र आदि में · वितत्य वीक्ष्यः – विस्तार से देखना चाहिए · न अति-रहस्यम् एकत्र ख्याप्यम् – अति रहस्य एक ही जगह नहीं कहना चाहिए · न च सर्वथा गोप्यम् – और न पूरी तरह छिपाना चाहिए · इति हि अस्मत्-गुरवः – ऐसा हमारे गुरु कहते हैं

तदेवम् यदुक्तं यागहोमादि तत् एवं-विधे महेश्वर एव मन्तव्यम् । सर्वे हि हेयमेव उपादेयभूमिरूपं विष्णुतः प्रभृति शिवान्तं परमशिवतया पश्यन्ति, तच्च मिथ्यादर्शनम् अवश्यत्याज्यम् अनुत्तरयोगिभिरिति, तदर्थमेव विद्याधिपतेः अनुभवस्तोत्रे महान् संरम्भः, एवं-विधे यागादौ योगान्ते च पञ्चके प्रत्येकं बहुप्रकारं निरूढिः यथा यथा भवति तथैव आचरेत्, न तु भक्ष्याभक्ष्यशुद्ध्यशुद्ध्यादिविवेचनया वस्तुधर्मोज्झितया कल्पनामात्रसारया १५ **स्वात्मा खेदनीय इति उक्तं श्रीपूर्वादौ, न हि शुद्धिः वस्तुनो रूपं नीलत्ववत्, अन्यत्र तस्यैव अशुद्धिचोदनात्, दानस्येव दीक्षितत्वे, चोदनातः तस्य तत् तत्र अशुद्धम् इति चेत् चोदनान्तरेऽपि तुल्यं, चोदनान्तरम् असत्—तद्बाधितत्वात् इति चेत् न, शिवचोदनाया एव बाधकत्वं युक्तिसिद्धं सर्वज्ञानोत्तराद्यनन्तागमसिद्धं च इति वक्ष्यामः ।**

तो जो याग, होम आदि कहे गए, उन्हें ऐसे ही महेश्वर में समझना चाहिए। क्योंकि सब लोग छोड़ने योग्य को ही पाने योग्य भूमि मानकर विष्णु से शिव तक को परमशिव के रूप में देखते हैं। वह मिथ्या दर्शन अनुत्तर योगियों को अवश्य छोड़ना चाहिए, और इसी के लिए विद्याधिपति के अनुभवस्तोत्र में बड़ा प्रयास है। ऐसे याग से योग तक के इन पाँच में, हर एक में अनेक तरह से जैसे-जैसे पक्कापन आए, वैसे ही करना चाहिए — भक्ष्य-अभक्ष्य, शुद्ध-अशुद्ध आदि के विवेचन से, जो वस्तु के धर्म से रहित और केवल कल्पना-मात्र है, अपने को कष्ट नहीं देना चाहिए; ऐसा श्रीपूर्व आदि में कहा है। क्योंकि शुद्धि वस्तु का रूप नहीं है, जैसे नीलापन है — अन्यत्र उसी को अशुद्ध कहा गया है, जैसे दीक्षित के लिए दान। यदि कहो कि विधि-वचन के कारण वह उसके लिए वहाँ अशुद्ध है — तो दूसरे विधि-वचन के लिए भी वही बात है। यदि कहो कि दूसरा विधि-वचन असत् है, क्योंकि इससे बाधित है — नहीं: शिव

के वचन का ही बाधक होना युक्ति से सिद्ध है और सर्वज्ञानोत्तर आदि अनन्त आगमों से भी, यह हम कहेंगे।

पदपाठ तत् एवम् यत् उक्तं याग-होम-आदि — तो जो याग, होम आदि कहे गए · तत् एवं-विधे महेश्वरे एव मन्तव्यम् — उन्हें ऐसे ही महेश्वर में समझना चाहिए · सर्वे हि हेयम् एव उपादेय-भूमि-रूपम् — क्योंकि सब लोग छोड़ने योग्य को ही पाने योग्य भूमि · विष्णुतः प्रभृति शिव-अन्तं परम-शिवतया पश्यन्ति — विष्णु से शिव तक को परमशिव के रूप में देखते हैं · तत् च मिथ्या-दर्शनम् अवश्य-त्याज्यम् अनुत्तर-योगिभिः इति — और वह मिथ्या दर्शन अनुत्तर योगियों को अवश्य छोड़ना चाहिए · तत्-अर्थम् एव विद्याधिपतेः अनुभवस्तोत्रे महान् संरम्भः — इसी के लिए विद्याधिपति के अनुभवस्तोत्र में बड़ा प्रयास है · एवं-विधे याग-आदौ योग-अन्ते च पञ्चके — ऐसे याग से योग तक के पाँच में · प्रत्येकं बहु-प्रकारं निरूढिः यथा यथा भवति तथा एव आचरेत् — हर एक में अनेक तरह से जैसे-जैसे पक्कापन आए, वैसे ही करना चाहिए · न तु भक्ष्य-अभक्ष्य-शुद्धि-अशुद्धि-आदि-विवेचनया — भक्ष्य-अभक्ष्य, शुद्ध-अशुद्ध आदि के विवेचन से नहीं · वस्तु-धर्म-उज्झितया कल्पना-मात्र-सारया — जो वस्तु के धर्म से रहित, केवल कल्पना-मात्र है · स्व-आत्मा खेदनीयः इति उक्तं श्री-पूर्व-आदौ — अपने को कष्ट देना चाहिए — ऐसा श्रीपूर्व आदि में कहा है · न हि शुद्धिः वस्तुनो रूपं नीलत्ववत् — क्योंकि शुद्धि वस्तु का रूप नहीं है, जैसे नीलापन है · अन्यत्र तस्य एव अशुद्धि-चोदनात् — क्योंकि अन्यत्र उसी को अशुद्ध कहा गया है · दानस्य इव दीक्षितत्वे — जैसे दीक्षित के लिए दान · चोदनातः तस्य तत् तत्र अशुद्धम् इति चेत् — यदि कहो कि विधि-वचन के कारण वह उसके लिए वहाँ अशुद्ध है · चोदना-अन्तरे अपि तुल्यम् — तो दूसरे विधि-वचन के लिए भी वही बात है · चोदना-अन्तरम् असत्—तत्-बाधितत्वात् इति चेत् — यदि कहो कि दूसरा विधि-वचन असत् है, क्योंकि इससे बाधित है · न — नहीं · शिव-चोदनायाः एव बाधकत्वं युक्ति-सिद्धम् — शिव के वचन का ही बाधक होना युक्ति से सिद्ध है · सर्वज्ञानोत्तर-आदि-अनन्त-आगम-सिद्धं च इति वक्ष्यामः — और सर्वज्ञानोत्तर आदि अनन्त आगमों से भी, यह हम कहेंगे

तस्मात् वैदिकात् प्रभृति पारमेश्वरसिद्धान्ततन्त्रकुलोच्छुष्मादिशास्त्रोक्तोऽपि यो नियमो विधिः वा निषेधो वा सोऽत्र यावदकिंचित्कर एव इति सिद्धम्।४१६ तथैव च उक्तं श्रीपूर्वादौ, वितत्य तन्त्रालोकात् अन्वेष्यम् ।

इसलिए यह सिद्ध है कि वैदिक से लेकर पारमेश्वर सिद्धान्त, तन्त्र, कुल, उच्छुष्म आदि शास्त्रों में कहा हुआ भी जो नियम, विधि या निषेध है, वह यहाँ कुछ भी नहीं करता। ऐसा ही श्रीपूर्व आदि में कहा है; इसे विस्तार से तन्त्रालोक में खोजना चाहिए।

पदपाठ तस्मात् — इसलिए · वैदिकात् प्रभृति — वैदिक से लेकर · पारमेश्वर-सिद्धान्त-तन्त्र-कुल-उच्छुष्म-आदि-शास्त्र-उक्तः अपि — पारमेश्वर सिद्धान्त, तन्त्र, कुल, उच्छुष्म आदि शास्त्रों में कहा हुआ भी · यो नियमो विधिः वा निषेधो वा — जो भी नियम, विधि या निषेध है · सः अत्र यावत् अकिंचित्कर एव इति सिद्धम् — यह सिद्ध है कि यहाँ वह कुछ भी नहीं करता · तथा एव च उक्तं श्री-पूर्व-आदौ — और ऐसा ही श्रीपूर्व आदि में कहा है · वितत्य तन्त्रालोकात् अन्वेष्यम् — विस्तार से तन्त्रालोक में खोजना चाहिए

यो निश्चयः पशुजनस्य जडोऽस्मि कर्म-
संपाशितोऽस्मि मलिनोऽस्मि परेरितोऽस्मि ।
इत्येतदन्यदृढनिश्चयलाभसिद्ध्या
सद्यः पतिर्भवति विश्ववपुश्चिदात्मा ॥ ८

पशु-जन का निश्चय यह है: "मैं जड़ हूँ, कर्म के पाश में बँधा हूँ, मलिन हूँ, दूसरे से चलाया जाता हूँ।" इसके उलटे दृढ़ निश्चय की प्राप्ति से चित्-रूप आत्मा तुरन्त वह पति हो जाता है जिसका शरीर विश्व है।

पदपाठ यः — जो · निश्चयः — निश्चय · पशु-जनस्य — पशु-जन का · जडः — जड़ · अस्मि — हूँ · कर्म-संपाशितः — कर्म के पाश में बँधा · अस्मि — हूँ · मलिनः — मलिन · अस्मि — हूँ · पर-ईरितः — दूसरे से चलाया हुआ · अस्मि — हूँ · इति — ऐसा · एतत् — यह · अन्य-दृढ-निश्चय-लाभ-सिद्ध्या — उलटे दृढ़ निश्चय की प्राप्ति से · सद्यः — तुरन्त · पतिः — पति · भवति — हो जाता है · विश्व-वपुः — विश्व जिसका शरीर है · चित्-आत्मा — चित्-रूप आत्मा

यथा यथा निश्चय ईदृगाप्यते
तथावधेयं परयोगिना सदा ।
न वस्तुयाथात्म्यविहीनया दशा
विशङ्कितव्यं शिशुदेशनागणैः ॥ ९

जैसे-जैसे ऐसा निश्चय मिलता है, परम योगी को सदा वैसे ही ध्यान देना चाहिए। बच्चों के अनेक उपदेशों से — जो वस्तु के यथार्थ स्वरूप से रहित दशा है — उसे शंका में नहीं पड़ना चाहिए।

पदपाठ यथा यथा — जैसे-जैसे · निश्चयः — निश्चय · ईदृक् — ऐसा · आप्यते — मिलता है · तथा — वैसे · अवधेयम् — ध्यान देना चाहिए · पर-योगिना — परम योगी को · सदा — सदा · न — नहीं · वस्तु-याथात्म्य-विहीनया — वस्तु के यथार्थ स्वरूप से रहित · दशा — दशा से · विशङ्कितव्यम् — शंका में पड़ना चाहिए · शिशु-देशना-गणैः — बच्चों के अनेक उपदेशों से

जह जह जस्सु जहिं
चिव पफुरइ अज्जवसाउ ।
तह तह तस्सु तहिं
चिव तारिसु होइ पहाउ ॥ १ ॥

९.१

जैसे-जैसे, जिसका, जब ही निश्चय चमकता है — वैसे-वैसे, उसका, तब ही वैसा प्रभाव होता है।

पदपाठ जह जह जस्सु जहिं चिव — जैसे-जैसे, जिसका, जब ही · पफुरइ अज्जवसाउ — निश्चय चमकता है · तह तह तस्सु तहिं चिव — वैसे-वैसे, उसका, तब ही · तारिसु होइ पहाउ — वैसा ही प्रभाव होता है

हतं मलिणउ हतं पसु
हतं आ अह सअलभावपडलवत्तिरित्तउ ।
इअ दढनिच्छअ णिअ लिअ हिअअह
फुरइ णाम कह जिस्स परतत्त्वउ ॥ २ ॥

९.२

"मैं मलिन हूँ, मैं पशु हूँ" — या फिर "मैं सब भावों के समूह से अलग हूँ": जिसके अपने हृदय में ऐसा दृढ़ निश्चय लिपटा है, उसके लिए परम तत्त्व भला कैसे चमके?

पदपाठ हतं मलिणउ — मैं मलिन हूँ · हतं पसु — मैं पशु हूँ · हतं आ अह सअलभावपडलवत्तिरित्तउ — या फिर, मैं सब भावों के समूह से अलग हूँ · इअ दढनिच्छअ णिअ लिअ हिअअह — जिसके अपने हृदय में यह दृढ़ निश्चय लिपटा है · फुरइ णाम कह जिस्स परतत्त्वउ — उसके लिए परम तत्त्व भला कैसे चमके?

परसिवतरणिकिरण-
दढपातविकासिअ हिअअ कमलए ।
सरहस्स फुरिअ णिअ
अइसुन्दरपरिमलबोहकरमए ॥ ३ ॥

९.३

परशिव-सूर्य की किरणों के दृढ़ पड़ने से खिले हुए हृदय-कमल में, जिसका अपना रहस्य चमक उठा है, अति सुन्दर बोध-सुगन्ध के क्रम वाले —

पदपाठ परसिवतरणिकिरण-दढपातविकासिअ — परशिव-सूर्य की किरणों के दृढ़ पड़ने से खिले हुए · हिअअ कमलए — हृदय-कमल में · सरहस्स फुरिअ णिअ — जिसका अपना रहस्य चमक उठा है · अइसुन्दरपरिमलबोहकरमए — अति सुन्दर बोध-सुगन्ध के क्रम वाले

हतं सिवणाहु निहिल जअ-
तत्त सुनिब्भरओत्ति विरुरी ।
फुरइ विमरिसभमरि
पपलाअ णिअ लच्छि विभइरी ॥ ४ ॥

९.४

— विमर्श का भ्रमर चमकता है, "मैं शिवनाथ हूँ, सब जनों के तत्त्व से पूरी तरह भरा हुआ" यों गुनगुनाता हुआ, प्रकाश को अपना लक्ष्य बनाकर धारण करता हुआ।

पदपाठ हतं सिवणाहु — मैं शिवनाथ हूँ · निहिल जअतत्त सुनिब्भरओत्ति — सब जनों के तत्त्व से पूरी तरह भरा हुआ — यों · विरुरी — गुनगुनाता हुआ · फुरइ विमरिसभमरि — विमर्श का भ्रमर चमकता है · पपलाअ णिअ लच्छि विभइरी — प्रकाश को अपना लक्ष्य बनाकर धारण करता हुआ

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे शाक्तोपायप्रकाशनं नाम चतुर्थमाह्निकम्

॥ ४ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में शाक्तोपायप्रकाशन नामक चौथा आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

पञ्चममाह्निकम्

आणवप्रकाशनम्

जब विकल्प बिना सहारे अपने को संस्कृत नहीं कर पाता, तब वह सीमित आधारों पर टिकता है — बुद्धि, प्राण, देह और घड़े जैसी बाहरी वस्तुएँ — और इस तरह "अणु" बनकर आणव ज्ञान को प्रकट करता है। बुद्धि ध्यान से काम करती है; प्राण उच्चार से — स्थूल (पाँच प्राण) और सूक्ष्म (वर्ण); देह करण नामक मुद्राओं से; बाहरी वस्तुएँ कुम्भ, स्थण्डिल और लिङ्ग की पूजा से। पहले ध्यान: अपने हृदय में उस स्वप्रकाश तत्त्व का ध्यान करो जिसमें सब तत्त्व समाए हैं, और वहाँ प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय — अग्नि, सूर्य और चन्द्र — के संघट्ट का ध्यान करो, जब तक वह ध्यान की हवा से भड़की हुई महाभैरव की अग्नि न बन जाए। उसे बारह शक्तियों की ज्वालाओं से घिरा हुआ देखो, आँख या किसी और द्वार से बाहर निकलता हुआ, बाहरी वस्तु पर टिकता हुआ, और वहाँ उसे सृष्टि में चन्द्र बनकर भरता, स्थिति में सूर्य बनकर प्रकाशित करता, संहार में अग्नि बनकर गलाता और अनुत्तर बनाता हुआ। जब चक्र इस तरह सब बाहरी और वासना-रूप भावों को भी समा ले, तब जो ध्याता सृष्टि, स्थिति और संहार को अपनी ही संवित् जानता है और उनकी स्वतन्त्रता को अपनी, वह तुरन्त भैरव हो जाता है; अभ्यास से सब इच्छित सिद्धियाँ भी मिलती हैं। फिर उच्चार: जो प्राण को उठाना चाहता है वह पहले हृदय के शून्य में विश्राम करता है, फिर प्राण में, फिर अपान में जो चन्द्र की तरह सबको भरता है, फिर समान में जहाँ दोनों मिलते हैं, फिर उदान में जो मातृ-मेय को जला देता है, और अन्त में व्यान में जहाँ संवित् हर सीमा से मुक्त चमकती है। ये छह विश्रान्तियाँ छह आनन्द हैं — निजानन्द, निरानन्द, परानन्द, ब्रह्मानन्द, महानन्द, चिदानन्द — और जो इन सबको जोड़ता है वह जगदानन्द है। हर विश्रान्ति में गहरे प्रवेश के साथ पाँच अवस्थाएँ आती हैं: आनन्द, उद्भव, कम्प, निद्रा और घूर्णि — जाग्रत् से तुर्यातीत तक — और ये त्रिकोण, कन्द, हृदय, तालु और ऊर्ध्वकुण्डलिनी में प्रवेश पर होती हैं। परम स्पन्दन, उन्मिषत् वेद्य और उन्मिषित वेद्य तीन लिङ्ग हैं, जिनमें परम योगिनी-हृदय है। फिर वर्ण: इसी उच्चार में गूँजती अव्यक्त-सी ध्वनि, जिसका मुख्य रूप सृष्टि और संहार के बीज हैं; क से म तक कोई भी ध्वनि, स्वर के साथ या बिना, भीतर उच्चारित या केवल

स्मरण की हुई, संवित् के स्पन्द को पूरा छूती है, क्योंकि वह किसी संकेत पर निर्भर नहीं; हृदय, कण्ठ और ओष्ठ को एक करना चाहिए, और दोनों द्वादशान्तों को हृदय के साथ एक। करण मुद्रा के प्रकरण के लिए छोड़ा गया है। अन्तिम श्लोक: जब विकल्प अपने आप पूर्णता तक नहीं पहुँचता, तब उपाय से संस्कृत होता है, और यहाँ उपाय अनेक हैं — बुद्धि, प्राण, देह और बाहरी — पर परम फल में इनमें कोई भेद नहीं; और देशी छन्द: शून्य, सूर्य, चन्द्र और अग्नि — यह प्राण का वीर्यवान् उठान है; जो वीर इसमें टिकता है, वह शीघ्र परम पद पाता है।

— अथाणवोपायः —

तत्र यदा विकल्पः स्वयमेव संस्कारम् आत्मनि उपायान्तरनिरपेक्षतयैव कर्तुं प्रभवति, तदा असौ पाशवव्यापारात् प्रच्युतः शुद्धविद्यानुग्रहेण परमेशशक्तिरूपताम् आपन्न उपायतया अवलम्ब्यमानः शाक्तं ज्ञानम् आविर्भावयति ।

तदेतच्च निर्णीतम् अनन्तर एव आह्निके ।

यदा तु उपायान्तरम् असौ स्वसंस्कारार्थं विकल्पोऽपेक्षते, तदा १०.१
बुद्धिप्राणदेहघटादिकान् परिमितरूपान् उपायत्वेन गृह्णन् अणुत्वं प्राप्त आणवं ज्ञानम् आविर्भावयति, तत्र बुद्धिः ध्यानात्मिका, प्राणः स्थूलः सूक्ष्मश्च, आद्य उच्चारणात्मा, उच्चारणं च नाम पञ्च प्राणाद्या वृत्तयः, सूक्ष्मस्तु वर्णशब्दवाच्यो वक्ष्यते, देहः संनिवेशविशेषात्मा करणशब्दवाच्यः, घटादयो बाह्याः कुम्भस्थण्डिललिङ्गपूजाद्युपायतया कीर्तयिष्यमाणाः ।

जब विकल्प किसी दूसरे उपाय की अपेक्षा किए बिना अपने आप अपना संस्कार कर सकता है, तब वह पशु के व्यापार से हटकर, शुद्धविद्या के अनुग्रह से परमेश्वर की शक्ति का रूप पाकर, उपाय रूप में सहारा बनकर शाक्त ज्ञान को प्रकट करता है। यह ठीक पिछले आह्निक में तय किया जा चुका। पर जब यह विकल्प अपने संस्कार के लिए दूसरे उपाय की अपेक्षा करता है, तब बुद्धि, प्राण, देह, घड़ा आदि सीमित रूपों को उपाय बनाकर, अणु-भाव पाकर, आणव ज्ञान को प्रकट करता है। उनमें बुद्धि ध्यान-रूप है। प्राण स्थूल और सूक्ष्म है: पहला उच्चारण-रूप है, और उच्चारण का अर्थ है प्राण आदि पाँच वृत्तियाँ; सूक्ष्म, जिसे वर्ण कहते हैं, आगे कहा जाएगा। देह, विशेष मुद्रा-रूप में, करण कहलाता है। घड़ा आदि बाहरी वस्तुएँ कुम्भ, स्थण्डिल, लिङ्ग की पूजा आदि उपाय के रूप में कही जाएँगी।

पदपाठ तत्र यदा विकल्पः स्वयम् एव — वहाँ जब विकल्प अपने आप ही · संस्कारम् आत्मनि उपाय-अन्तर-निरपेक्षतया एव कर्तुं प्रभवति — किसी दूसरे उपाय की अपेक्षा किए बिना अपना संस्कार कर सकता है · तदा असौ पाशव-व्यापारात् प्रच्युतः — तब वह पशु के व्यापार से हटकर · शुद्धविद्या-अनुग्रहेण परमेश-शक्ति-रूपताम् आपन्नः — शुद्धविद्या के अनुग्रह से परमेश्वर की शक्ति का रूप पाकर · उपायतया अवलम्ब्यमानः शाक्तं ज्ञानम् आविर्भावयति — उपाय रूप में सहारा बनकर शाक्त ज्ञान को प्रकट करता है · तत् एतत् च निर्णीतम् अनन्तरे एव आह्निके — और यह ठीक पिछले आह्निक में तय किया जा चुका · यदा तु उपाय-अन्तरम् असौ स्व-संस्कार-अर्थं विकल्पः अपेक्षते — पर जब यह विकल्प अपने संस्कार के लिए दूसरे उपाय की अपेक्षा करता है · तदा बुद्धि-प्राण-देह-घट-आदिकान् परिमित-रूपान् उपायत्वेन गृह्णन् — तब बुद्धि, प्राण, देह, घड़ा आदि सीमित रूपों को उपाय बनाकर · अणुत्वं प्राप्तः आणवं ज्ञानम् आविर्भावयति — अणु-भाव पाकर आणव ज्ञान को प्रकट करता है · तत्र बुद्धिः ध्यान-आत्मिका — उनमें बुद्धि ध्यान-रूप है · प्राणः स्थूलः सूक्ष्मः च — प्राण स्थूल और सूक्ष्म है · आद्यः उच्चारण-आत्मा — पहला उच्चारण-रूप है · उच्चारणं च नाम पञ्च प्राण-आद्याः वृत्तयः — और उच्चारण का अर्थ है प्राण आदि पाँच वृत्तियाँ · सूक्ष्मः तु वर्ण-शब्द-वाच्यो वक्ष्यते — सूक्ष्म, जिसे वर्ण कहते हैं, आगे कहा जाएगा · देहः संनिवेश-विशेष-आत्मा करण-शब्द-वाच्यः — देह, विशेष मुद्रा-रूप में, करण कहलाता है · घट-आदयो बाह्याः — घड़ा आदि बाहरी वस्तुएँ · कुम्भ-स्थण्डिल-लिङ्ग-पूजा-आदि-उपायतया कीर्तयिष्यमाणाः — कुम्भ, स्थण्डिल, लिङ्ग की पूजा आदि उपाय के रूप में कही जाएँगी

तत्र ध्यानं तावत् इह उचितम् उपदेक्ष्यामः, यत् एतत् स्वप्रकाशं सर्वतत्त्वान्तर्भूतं परं तत्त्वम् उक्तं, तदेव निजहृदयबोधे ध्यात्वा, तत्र प्रमातृप्रमाणप्रमेयरूपस्य वह्न्यर्कसोमत्रितयस्य संघट्टं ध्यायेत् यावत् असौ महाभैरवाग्निः ध्यानवातसमिद्धाकारः संपद्यते, तस्य प्राक्तनशक्तिज्वालाद्वादशकपरिवृतस्य चक्रात्मनः चक्षुरादीनाम् १०.२ अन्यतमसुषिरद्वारेण निःसृतस्य बाह्ये ग्राह्यात्मनि विश्रान्तं चिन्तयेत्, तेन च विश्रान्तेन प्रथमं तद्बाह्यं सोमरूपतया सृष्टिक्रमेण प्रपूरितं, ततः अर्करूपतया स्थित्या अवभासितं, ततोऽपि संहारवह्निरूपतया विलापितं, ततः अनुत्तरात्मताम् आपादितं ध्यायेत् ।

उनमें पहले यहाँ उचित ध्यान का उपदेश करेंगे। जो यह स्वप्रकाश, सब तत्त्वों को अपने भीतर रखने वाला परम तत्त्व कहा गया, उसी का अपने हृदय के बोध में ध्यान करके, वहाँ प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय रूप अग्नि, सूर्य और चन्द्र — इन तीनों के संघट्ट का ध्यान करे, जब तक वह ध्यान की हवा से भड़की हुई महाभैरव की अग्नि न बन जाए। पहले कही गई बारह शक्तियों की ज्वालाओं से घिरे उस चक्र-रूप अग्नि को आँख आदि किसी एक छिद्र के द्वार से बाहर निकला और बाहरी ग्राह्य वस्तु पर टिका हुआ सोचे। और उस टिके हुए से वह बाहरी वस्तु पहले चन्द्र-रूप से सृष्टि-क्रम में भरी हुई, फिर सूर्य-रूप से स्थिति में प्रकाशित, फिर संहार की अग्नि-रूप से गलाई हुई, फिर अनुत्तर-भाव तक पहुँचाई हुई — ऐसा ध्यान करे।

पदपाठ तत्र ध्यानं तावत् इह उचितम् उपदेक्ष्यामः — उनमें पहले यहाँ उचित ध्यान का उपदेश करेंगे · यत् एतत् स्व-प्रकाशं सर्व-तत्त्व-अन्तर्भूतं परं तत्त्वम् उक्तम् — जो यह स्वप्रकाश, सब तत्त्वों को अपने भीतर रखने वाला परम तत्त्व कहा गया · तत् एव निज-हृदय-बोधे ध्यात्वा — उसी का अपने हृदय के बोध में ध्यान करके · तत्र प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेय-रूपस्य वह्नि-अर्क-सोम-त्रितयस्य संघट्टं ध्यायेत् — वहाँ प्रमाता,

प्रमाण और प्रमेय रूप अग्नि, सूर्य और चन्द्र — इन तीनों के संघट्ट का ध्यान करे · **यावत् असौ महाभैरव-अग्निः ध्यान-वात-समिद्ध-आकारः संपद्यते** — जब तक वह ध्यान की हवा से भड़की हुई महाभैरव की अग्नि न बन जाए · **तस्य प्राक्तन-शक्ति-ज्वाला-द्वादशक-परिवृतस्य चक्र-आत्मनः** — पहले कही गई बारह शक्तियों की ज्वालाओं से घिरे उस चक्र-रूप अग्नि का · **चक्षुः-आदीनाम् अन्यतम-सुषिर-द्वारेण निःसृतस्य** — आँख आदि किसी एक छिद्र के द्वार से बाहर निकले हुए · **बाह्ये ग्राह्य-आत्मनि विश्रान्तं चिन्तयेत्** — बाहरी ग्राह्य वस्तु पर टिका हुआ सोचे · **तेन च विश्रान्तेन प्रथमं तत्-बाह्यं सोम-रूपतया सृष्टि-क्रमेण प्रपूरितम्** — और उस टिके हुए से वह बाहरी वस्तु पहले चन्द्र-रूप से सृष्टि-क्रम में भरी हुई · **ततः अर्क-रूपतया स्थित्या अवभासितम्** — फिर सूर्य-रूप से स्थिति में प्रकाशित · **ततः अपि संहार-वह्नि-रूपतया विलापितम्** — फिर संहार की अग्नि-रूप से गलाई हुई · **ततः अनुत्तर-आत्मताम् आपादितं ध्यायेत्** — फिर अनुत्तर-भाव तक पहुँचाई हुई — ऐसा ध्यान करे

एवं तच्चक्रं समस्तबाह्यवस्त्वभेदपरिपूर्णं संपद्यते ।
ततो वासनाशेषानपि भावान् तेन चक्रेण इत्थं कृतान् ध्यायेत् ।
एवम् अस्य अनवरतं ध्यायिनः स्वसंविन्मात्रपरमार्थान्
सृष्टिस्थितिसंहारप्रबन्धान् सृष्ट्यादिस्वातन्त्र्यपरमार्थत्वं च स्वसंविदो निश्चिन्वतः १०.३
सद्य एव भैरवीभावः ।
अभ्यासात् तु सर्वेप्सितसिद्ध्यादयोऽपि ।

यों वह चक्र सब बाहरी वस्तुओं से अभिन्न होकर परिपूर्ण हो जाता है। फिर जो भाव केवल वासना-रूप में बचे हैं, उन्हें भी उस चक्र से इसी तरह किया हुआ ध्यान करे। यों लगातार ध्यान करने वाले को, जो सृष्टि, स्थिति और संहार की धारा को वास्तव में अपनी ही संवित् और अपनी संवित् का सार सृष्टि आदि की स्वतन्त्रता — यों निश्चय करता है, तुरन्त ही भैरव-भाव होता है। और अभ्यास से सब इच्छित सिद्धियाँ आदि भी मिलती हैं।

पदपाठ एवं तत् चक्रं समस्त-बाह्य-वस्तु-अभेद-परिपूर्णं संपद्यते — यों वह चक्र सब बाहरी वस्तुओं से अभिन्न होकर परिपूर्ण हो जाता है · ततो वासना-शेषान् अपि भावान् — फिर जो भाव केवल वासना-रूप में बचे हैं, उन्हें भी · तेन चक्रेण इत्थं कृतान् ध्यायेत् — उस चक्र से इसी तरह किया हुआ ध्यान करे · एवम् अस्य अनवरतं ध्यायिनः — यों लगातार ध्यान करने वाले को · स्व-संवित्-मात्र-परमार्थान् सृष्टि-स्थिति-संहार-प्रबन्धान् — सृष्टि, स्थिति और संहार की धारा को वास्तव में अपनी ही संवित् · सृष्टि-आदि-स्वातन्त्र्य-परमार्थत्वं च स्व-संविदो निश्चिन्वतः — और अपनी संवित् का सार सृष्टि आदि की स्वतन्त्रता — यों निश्चय करने वाले को · सद्यः एव भैरवी-भावः — तुरन्त ही भैरव-भाव होता है · अभ्यासात् तु सर्व-ईप्सित-सिद्धि-आदयः अपि — और अभ्यास से सब इच्छित सिद्धियाँ आदि भी

स्वप्रकाशं समस्तात्मतत्त्वं मात्रादिकं त्रयम् ।
अन्तःकृत्य स्थितं ध्यायेद्धृदयानन्दधामनि ॥ १०

हृदय के आनन्द-धाम में उस स्वप्रकाश, सबके आत्मा-रूप तत्त्व का ध्यान करे, जो प्रमाता आदि तीनों को भीतर करके स्थित है।

पदपाठ स्व-प्रकाशम् — स्वप्रकाश · समस्त-आत्म-तत्त्वम् — सबका आत्मा-रूप तत्त्व · मातृ-आदिकम् — प्रमाता आदि · त्रयम् — तीनों को · अन्तः-कृत्य — भीतर करके · स्थितम् — स्थित · ध्यायेत् — ध्यान करे · हृदय-आनन्द-धामनि — हृदय के आनन्द-धाम में

तद्द्वादशमहाशक्तिरश्मिचक्रेश्वरं विभुम् ।
व्योमभिर्निःसरद्बाह्ये ध्यायेत्सृष्ट्यादिभावकम् ॥ ११

बारह महाशक्तियों की किरणों वाले चक्र के उस विभु स्वामी का ध्यान करे, जो छिद्रों से बाहर निकलकर बाहर सृष्टि आदि करता है।

पदपाठ तत् — उसे · द्वादश-महाशक्ति-रश्मि-चक्र-ईश्वरम् — बारह महाशक्तियों की किरणों वाले चक्र का स्वामी · विभुम् — विभु · व्योमभिः — छिद्रों से · निःसरत् — बाहर निकलता हुआ · बाह्ये — बाहर · ध्यायेत् — ध्यान करे · सृष्टि-आदि-भावकम् — सृष्टि आदि करने वाला

तद्ग्रस्तसर्वबाह्यान्तर्भावमण्डलमात्मनि ।
विश्राम्यन्भावयेद्योगी स्यादेवं स्वात्मनः प्रथा ॥ १२

आत्मा में विश्राम करता हुआ योगी उससे निगले हुए सब बाहरी-भीतरी भावों के मण्डल की भावना करे। इस तरह अपने आत्मा का प्रकाश होगा।

पदपाठ तत्-ग्रस्त-सर्व-बाह्य-अन्तः-भाव-मण्डलम् — उससे निगले हुए सब बाहरी-भीतरी भावों के मण्डल को · आत्मनि — आत्मा में · विश्राम्यन् — विश्राम करता हुआ · भावयेत् — भावना करे · योगी — योगी · स्यात् — होगा · एवम् — इस तरह · स्व-आत्मनः — अपने आत्मा का · प्रथा — प्रकाश

— अथ उच्चारः —

इति संग्रहश्लोकाः ।

इति ध्यानम् ।

तत्र प्राणम् उच्चिचारयिषुः पूर्वं हृदय एव शून्ये विश्राम्यति, ततो बाह्ये प्राणोदयात्, ततोऽपि बाह्यं प्रति अपानचन्द्रापूरणेन सर्वात्मतां पश्यति, ततः अन्यनिराकाङ्क्षो भवति, ततः समानोदयात् संघट्टविश्रान्तिम् अनुभवति, तत उदानवह्न्युदये मातृमेयादिकलनां ग्रसते ।

तद्ग्रासकवह्निप्रशमे व्यानोदये सर्वावच्छेदवन्ध्यः स्फुरति ।

ये संग्रह-श्लोक हैं। ध्यान समाप्त। यहाँ जो प्राण को उठाना चाहता है, वह पहले हृदय में ही, शून्य में विश्राम करता है; फिर बाहर, प्राण के उदय से; फिर बाहर की ओर ही, अपान-चन्द्र के भरने से अपने को सर्वात्मक देखता है; फिर उसे और किसी की चाह नहीं रहती; फिर समान के उदय से संघट्ट में विश्रान्ति का अनुभव करता है; फिर उदान-अग्नि के उदय में मातृ, मेय आदि के कलन को निगल लेता है। उस निगलने वाली अग्नि के शान्त होने पर, व्यान के उदय में, वह हर सीमा से रहित होकर चमकता है।

पदपाठ इति संग्रह-श्लोकाः — ये संग्रह-श्लोक हैं · इति ध्यानम् — ध्यान समाप्त · तत्र प्राणम् उच्चिचारयिषुः — यहाँ जो प्राण को उठाना चाहता है · पूर्वं हृदये एव शून्ये विश्राम्यति — पहले हृदय में ही, शून्य में विश्राम करता है · ततो बाह्ये प्राण-उदयात् — फिर बाहर, प्राण के उदय से · ततः अपि बाह्यं प्रति अपान-चन्द्र-आपूरणेन सर्व-आत्मतां पश्यति — फिर बाहर की ओर ही, अपान-चन्द्र के भरने से अपने को सर्वात्मक देखता है · ततः अन्य-निराकाङ्क्षो भवति — फिर उसे और किसी की चाह नहीं रहती · ततः समान-उदयात् संघट्ट-विश्रान्तिम् अनुभवति — फिर समान के उदय से संघट्ट में विश्रान्ति का अनुभव करता है · ततः उदान-वह्नि-उदये मातृ-मेय-आदि-कलनां ग्रसते — फिर उदान-अग्नि के उदय में मातृ, मेय आदि के कलन को निगल लेता है · तत्-ग्रासक-वह्नि-प्रशमे व्यान-उदये — उस निगलने वाली अग्नि के शान्त होने पर, व्यान के उदय में · सर्व-अवच्छेद-वन्ध्यः स्फुरति — वह हर सीमा से रहित होकर चमकता है

एवं शून्यात् प्रभृति व्यानान्तं या एता विश्रान्तयः ता एव निजानन्दो, निरानन्दः, परानन्दो, ब्रह्मानन्दो, महानन्दः, चिदानन्द इति षट् आनन्दभूमय उपदिष्टाः, यासाम् एकः अनुसंधाता उदयास्तमयविहीनः अन्तर्विश्रान्तिपरमार्थरूपो जगदानन्दः ।

तत् एतासु उच्चारभूमिषु प्रत्येकं द्व्यादिशः सर्वशो वा विश्राम्य अन्यत् १३.२
तद्देहप्राणादिव्यतिरिक्तं विश्रान्तितत्त्वम् आसादयति ।

तदेव सृष्टिसंहारबीजोच्चारणरहस्यम् अनुसंदधत् विकल्पं संस्कुर्यात्, आसु च विश्रान्तिषु प्रत्येकं पञ्च अवस्था भवन्ति प्रवेशतारतम्यात् ।

यों शून्य से व्यान तक जो ये विश्रान्तियाँ हैं, वे ही छह आनन्द-भूमियाँ बताई गई हैं: निजानन्द, निरानन्द, परानन्द, ब्रह्मानन्द, महानन्द और चिदानन्द। इन सबका एक अनुसन्धान करने वाला, उदय-अस्त से रहित, भीतरी विश्रान्ति ही जिसका सार है, वह जगदानन्द है। तो इन उच्चार-भूमियों में — हर एक में, दो-दो आदि में, या सब में एक साथ — विश्राम करके, उस देह, प्राण आदि से अलग एक और विश्रान्ति-तत्त्व पाता है। सृष्टि और संहार के बीजों के उच्चारण के इसी रहस्य का अनुसन्धान करता हुआ विकल्प को संस्कृत करे। और इन विश्रान्तियों में हर एक में प्रवेश की कमी-बेशी के अनुसार पाँच अवस्थाएँ होती हैं।

पदपाठ एवं शून्यात् प्रभृति व्यान-अन्तं याः एताः विश्रान्तयः — यों शून्य से व्यान तक जो ये विश्रान्तियाँ हैं · ताः एव निजानन्दः निरानन्दः परानन्दः ब्रह्मानन्दः महानन्दः चिदानन्दः इति — वे ही निजानन्द, निरानन्द, परानन्द, ब्रह्मानन्द, महानन्द और चिदानन्द हैं · षट् आनन्द-भूमयः उपदिष्टाः — ये छह आनन्द-भूमियाँ बताई गई हैं · यासाम् एकः अनुसंधाता — इन सबका एक अनुसन्धान करने वाला · उदय-अस्तमय-विहीनः अन्तः-विश्रान्ति-परमार्थ-रूपो जगदानन्दः — उदय-अस्त से रहित, भीतरी विश्रान्ति ही जिसका सार है, वह जगदानन्द है · तत् एतासु उच्चार-भूमिषु — तो इन उच्चार-भूमियों में · प्रत्येकं द्वि-आदिशः सर्वशो वा विश्राम्य — हर एक में, दो-दो आदि में, या सब में एक साथ विश्राम करके · अन्यत्

तत्-देह-प्राण-आदि-व्यतिरिक्तं विश्रान्ति-तत्त्वम् आसादयति — उस देह, प्राण आदि से अलग एक और विश्रान्ति-तत्त्व पाता है · **तत् एव सृष्टि-संहार-बीज-उच्चारण-रहस्यम् अनुसंदधत्** — सृष्टि और संहार के बीजों के उच्चारण के इसी रहस्य का अनुसन्धान करता हुआ · **विकल्पं संस्कुर्यात्** — विकल्प को संस्कृत करे · **आसु च विश्रान्तिषु प्रत्येकं पञ्च अवस्थाः भवन्ति** — और इन विश्रान्तियों में हर एक में पाँच अवस्थाएँ होती हैं · **प्रवेश-तारतम्यात्** — प्रवेश की कमी-बेशी के अनुसार

तत्र प्रागानन्दः पूर्णतांशस्पर्शात्, तत उद्भवः क्षणं निःशरीरतायां रूढेः, ततः कम्पः स्वबलाक्रान्तौ देहतादात्म्यशैथिल्यात्, ततो निद्रा बहिर्मुखत्वविलयात् । इत्थम् अनात्मनि आत्मभावे लीने स्वात्मनः सर्वमयत्वात् आत्मनि अनात्मभावो विलीयते इति, अतो घूर्णिः महाव्याप्त्युदयात् । १३.३

ता एता जाग्रदादिभूमयः तुर्यातीतान्ताः ।

एताश्च भूमयः त्रिकोणकन्दहृत्तालूर्ध्वकुण्डलिनीचक्रप्रवेशे भवन्ति ।

उनमें पहले आनन्द, पूर्णता के एक अंश के स्पर्श से; फिर उद्भव, क्षण भर निःशरीरता में टिकने से; फिर कम्प, अपने बल के आक्रमण में देह से तादात्म्य ढीला पड़ने से; फिर निद्रा, बहिर्मुखता के विलय से। यों अनात्मा में आत्म-भाव के लीन हो जाने पर, अपना आत्मा सर्वमय होने से, आत्मा में अनात्म-भाव विलीन हो जाता है; इसलिए घूर्णि, महाव्याप्ति के उदय से। ये ही जाग्रत् से तुर्यातीत तक की भूमियाँ हैं। और ये भूमियाँ त्रिकोण, कन्द, हृदय, तालु और ऊर्ध्वकुण्डलिनी के चक्रों में प्रवेश पर होती हैं।

पदपाठ तत्र प्राक् आनन्दः पूर्णता-अंश-स्पर्शात् — उनमें पहले आनन्द, पूर्णता के एक अंश के स्पर्श से · ततः उद्भवः क्षणं निःशरीरतायां रूढेः — फिर उद्भव, क्षण भर निःशरीरता में टिकने से · ततः कम्पः स्व-बल-आक्रान्तौ देह-तादात्म्य-शैथिल्यात् — फिर कम्प, अपने बल के आक्रमण में देह से तादात्म्य ढीला पड़ने से · ततो निद्रा बहिर्मुखत्व-विलयात् — फिर निद्रा, बहिर्मुखता के विलय से · इत्थम् अनात्मनि आत्म-भावे लीने — यों अनात्मा में आत्म-भाव के लीन हो जाने पर · स्व-आत्मनः सर्वमयत्वात् आत्मनि अनात्म-भावो विलीयते इति — अपना आत्मा सर्वमय होने से आत्मा में अनात्म-भाव विलीन हो जाता है · अतो घूर्णिः महा-व्याप्ति-उदयात् — इसलिए घूर्णि, महाव्याप्ति के उदय से · ताः एताः जाग्रत्-आदि-भूमयः तुर्यातीत-अन्ताः — ये ही जाग्रत् से तुर्यातीत तक की भूमियाँ हैं · एताः च भूमयः — और ये भूमियाँ · त्रिकोण-कन्द-हृत्-तालु-ऊर्ध्वकुण्डलिनी-चक्र-प्रवेशे भवन्ति — त्रिकोण, कन्द, हृदय, तालु और ऊर्ध्वकुण्डलिनी के चक्रों में प्रवेश पर होती हैं

एवम् उच्चारविश्रान्तौ यत् परं स्पन्दनं गलिताशेषवेद्यं, यच्च उन्मिषद्वेद्यं, यच्च उन्मिषितवेद्यं, तदेव लिङ्गत्रयम् इति वक्ष्यामः स्वावसरे ।

परं चात्र लिङ्गं योगिनीहृदयम् ।

१३.४

तत्र मुख्या स्पन्दनरूपता संकोचविकासात्मतया यामलरूपतोदयेन विसर्गकलाविश्रान्तिलाभात् इत्यलम् ।

अप्रकाशः अत्र अनुप्रवेशः ।

यों उच्चार की विश्रान्ति में जो परम स्पन्दन है, जिसमें सारा वेद्य गल गया है, जिसमें वेद्य उन्मिषित हो रहा है, और जिसमें वेद्य उन्मिषित हो चुका है — यही तीन लिङ्ग हैं, यह हम अपने अवसर पर कहेंगे। और यहाँ परम लिङ्ग योगिनी-हृदय है। वहाँ स्पन्दन-रूपता मुख्य है, क्योंकि संकोच-विकास रूप होने से युगल-रूप का उदय होता है और विसर्ग-कला में विश्रान्ति मिलती है। बस, इतना ही; यहाँ का प्रवेश प्रकट करने योग्य नहीं।

पदपाठ एवम् उच्चार-विश्रान्तौ — यों उच्चार की विश्रान्ति में · यत् परं स्पन्दनं गलित-अशेष-वेद्यम् — जो परम स्पन्दन है, जिसमें सारा वेद्य गल गया है · यत् च उन्मिषत्-वेद्यम् — जिसमें वेद्य उन्मिषित हो रहा है · यत् च उन्मिषित-वेद्यम् — और जिसमें वेद्य उन्मिषित हो चुका है · तत् एव लिङ्ग-त्रयम् इति वक्ष्यामः स्व-अवसरे — यही तीन लिङ्ग हैं, यह हम अपने अवसर पर कहेंगे · परं च अत्र लिङ्गं योगिनी-हृदयम् — और यहाँ परम लिङ्ग योगिनी-हृदय है · तत्र मुख्या स्पन्दन-रूपता — वहाँ स्पन्दन-रूपता मुख्य है · संकोच-विकास-आत्मतया यामल-रूपता-उदयेन — क्योंकि संकोच-विकास रूप होने से युगल-रूप का उदय होता है · विसर्ग-कला-विश्रान्ति-लाभात् इति अलम् — और विसर्ग-कला में विश्रान्ति मिलती है — बस, इतना ही · अप्रकाशः अत्र अनुप्रवेशः — यहाँ का प्रवेश प्रकट करने योग्य नहीं

पूर्वं स्वबोधे तदनु प्रमेये
विश्रम्य मेयं परिपूरयेत ।
पूर्णेऽत्र विश्राम्यति मातृमेय-
विभागमाश्वेव स संहरेत ॥ १३

पहले अपने बोध में और फिर प्रमेय में विश्राम करके मेय को भर दे। यहाँ पूर्ण में विश्राम करता है; फिर प्रमाता और मेय के विभाग को शीघ्र ही समेट ले।

पदपाठ पूर्वम् — पहले · स्व-बोधे — अपने बोध में · तदनु — फिर · प्रमेये — प्रमेय में · विश्रम्य — विश्राम करके · मेयम् — मेय को · परिपूरयेत — भर दे · पूर्णे — पूर्ण में · अत्र — यहाँ · विश्राम्यति — विश्राम करता है · मातृ-मेय-विभागम् — प्रमाता और मेय के विभाग को · आशु — शीघ्र · एव — ही · सः — वह · संहरेत — समेट ले

व्याप्त्याथ विश्राम्यति ता इमाः स्युः
शून्येन साकं षडुपायभूम्यः ।
प्राणादयो व्याननपश्चिमास्त-
ल्लीनश्च जाग्रत्प्रभृति प्रपञ्चः ॥ १४

फिर व्याप्ति से विश्राम करता है। शून्य के साथ ये ही उपाय की छह भूमियाँ हैं — प्राण से व्यान तक — और जाग्रत् आदि सारा प्रपञ्च उनमें लीन है।

पदपाठ व्याप्त्या — व्याप्ति से · अथ — फिर · विश्राम्यति — विश्राम करता है · ताः — वे · इमाः — ये · स्युः — हैं · शून्येन — शून्य के · साकम् — साथ · षट्-उपाय-भूम्यः — उपाय की छह भूमियाँ · प्राण-आदयः — प्राण आदि · व्यान-पश्चिमाः — व्यान तक · तत्-लीनः — उनमें लीन · च — और · जाग्रत्-प्रभृति — जाग्रत् आदि · प्रपञ्चः — प्रपञ्च

अभ्यासनिष्ठोऽत्र तु सृष्टिसंहृद्-
विमर्शधामन्यचिरेण रोहेत् । १५

पर यहाँ अभ्यास में लगा हुआ व्यक्ति शीघ्र ही सृष्टि और संहार करने वाले विमर्श के धाम में चढ़ जाता है।

पदपाठ **अभ्यास-निष्ठः** — अभ्यास में लगा हुआ · **अत्र** — यहाँ · **तु** — तो · **सृष्टि-संहृत्-विमर्श-धामनि** — सृष्टि और संहार करने वाले विमर्श के धाम में · **अचिरेण** — शीघ्र · **रोहेत्** — चढ़ जाता है

— अथ सूक्ष्मप्राणात्मा वर्णः —

इति आन्तरश्लोकाः ।

इति उच्चारणम् ।

अस्मिन् एव उच्चारे स्फुरन् अव्यक्तानुकृतिप्रायो ध्वनिः वर्णः, तस्य सृष्टिसंहारबीजे मुख्यं रूपं, तदभ्यासात् परसंवित्तिलाभः, तथाहि—कादौ मान्ते साच्के अनच्के वा अन्तरुच्चारिते स्मृते वा समविशिष्टः संवित्स्पन्दस्पर्शः १६.१ **समयानपेक्षित्वात् परिपूर्णः, समयापेक्षिणोऽपि शब्दाः तदर्थभावका मनोराज्यादिवत्, अनुत्तरसंवित्स्पर्शात् एकीकृतहृत्कण्ठोष्ठो द्वादशान्तद्वयं हृदयं च एकीकुर्यात् इति वर्णरहस्यम् ।**

ये आन्तर श्लोक हैं। उच्चारण समाप्त। इसी उच्चार में गूँजती हुई, अव्यक्त की नकल-सी ध्वनि वर्ण है। उसका मुख्य रूप सृष्टि और संहार के बीजों में है, और उसके अभ्यास से परम संवित्ति मिलती है। क्योंकि क से म तक किसी भी ध्वनि में, स्वर के साथ या बिना, भीतर उच्चारित या केवल स्मरण की हुई, संवित् के स्पन्द का स्पर्श समान रूप से विशिष्ट है — और संकेत पर निर्भर न होने से परिपूर्ण है; संकेत पर निर्भर शब्द भी अपने अर्थ को भावित करते हैं, जैसे मनोराज्य आदि में। अनुत्तर संवित् के स्पर्श से हृदय, कण्ठ और ओष्ठ को एक करके दोनों द्वादशान्तों और हृदय को एक करे। यह वर्ण का रहस्य है।

पदपाठ इति आन्तर-श्लोकाः — ये आन्तर श्लोक हैं · इति उच्चारणम् — उच्चारण समाप्त · अस्मिन् एव उच्चारे स्फुरन् — इसी उच्चार में गूँजती हुई · अव्यक्त-अनुकृति-प्रायो ध्वनिः वर्णः — अव्यक्त की नकल-सी ध्वनि वर्ण है · तस्य सृष्टि-संहार-बीजे मुख्यं रूपम् — उसका मुख्य रूप सृष्टि और संहार के बीजों में है · तत्-अभ्यासात् पर-संवित्ति-लाभः — उसके अभ्यास से परम संवित्ति मिलती है · तथाहि — क्योंकि · क-आदौ म-अन्ते साच्के अनच्के वा — क से म तक किसी भी ध्वनि में, स्वर के साथ या बिना · अन्तः-उच्चारिते स्मृते वा — भीतर उच्चारित या केवल स्मरण की हुई · सम-विशिष्टः संवित्-स्पन्द-स्पर्शः — संवित् के स्पन्द का स्पर्श समान रूप से विशिष्ट है · समय-अनपेक्षित्वात् परिपूर्णः — और संकेत

पर निर्भर न होने से परिपूर्ण है · समय-अपेक्षिणः अपि शब्दाः तत्-अर्थ-भावकाः — संकेत पर निर्भर शब्द भी अपने अर्थ को भावित करते हैं · मनोराज्य-आदिवत् — जैसे मनोराज्य आदि में · अनुत्तर-संवित्-स्पर्शात् — अनुत्तर संवित् के स्पर्श से · एकीकृत-हृत्-कण्ठ-ओष्ठः — हृदय, कण्ठ और ओष्ठ को एक करके · द्वादशान्त-द्वयं हृदयं च एकीकुर्यात् — दोनों द्वादशान्तों और हृदय को एक करे · इति वर्ण-रहस्यम् — यह वर्ण का रहस्य है

अन्तःस्फुरद्विमर्शानन्तरसमुद्भूतं सितपीताद्यान्तरं वर्णम् उद्भाव्यमानं संविदम्
अनुभावयति इति केचित् । १६.२

कुछ लोग कहते हैं कि भीतर चमकते विमर्श के तुरन्त बाद उत्पन्न सफ़ेद, पीला आदि भीतरी रंग, प्रकट किया जाता हुआ, संवित् का अनुभव कराता है।

पदपाठ अन्तः-स्फुरत्-विमर्श-अनन्तर-समुद्भूतम् — भीतर चमकते विमर्श के तुरन्त बाद उत्पन्न · सित-पीत-आदि-आन्तरं वर्णम् — सफ़ेद, पीला आदि भीतरी रंग · उद्भाव्यमानम् — प्रकट किया जाता हुआ · संविदम् अनुभावयति — संवित् का अनुभव कराता है · इति केचित् — ऐसा कुछ लोग कहते हैं

वाच्यविरहेण संवित्-
स्पन्दादिन्द्वर्कगतिनिरोधाभ्याम् ।
यस्य तु समसंप्रवेशात्
पूर्णा चिद्बीजपिण्डवर्णविधौ ॥ १६

बीज या पिण्ड रूप वर्ण की विधि में, जो समान प्रवेश करता है, उसकी चित् पूर्ण हो जाती है — संवित् के स्पन्द से, वाच्य अर्थ के अभाव से, और चन्द्र और सूर्य की गति के निरोध से।

पदपाठ वाच्य-विरहेण — वाच्य अर्थ के अभाव से · संवित्-स्पन्दात् — संवित् के स्पन्द से · इन्दु-अर्क-गति-निरोधाभ्याम् — चन्द्र और सूर्य की गति के निरोध से · यस्य — जिसकी · तु — पर · सम-संप्रवेशात् — समान प्रवेश से · पूर्णा — पूर्ण · चित् — चित् · बीज-पिण्ड-वर्ण-विधौ — बीज या पिण्ड रूप वर्ण की विधि में

इति आन्तरश्लोकः ।

इति वर्णविधिः । १७.१

करणं तु मुद्राप्रकाशने वक्ष्यामः ।

यह आन्तर श्लोक है। वर्ण-विधि समाप्त। करण को हम मुद्रा के प्रकाशन में कहेंगे।

पदपाठ इति आन्तर-श्लोकः — यह आन्तर श्लोक है · इति वर्ण-विधिः — वर्ण-विधि समाप्त · करणं तु मुद्रा-प्रकाशने वक्ष्यामः — करण को हम मुद्रा के प्रकाशन में कहेंगे

विकल्पः कस्यापि स्वयमनुपयन्पूर्णमयतां-
मुपायात्संस्कारं व्रजति स उपायोऽत्र बहुधा ।
धियि प्राणे देहे तदनु बहिरित्याणवतया १७
स निर्णीतो नैषां परफलविधौ कापि हि भिदा ॥

जब किसी का विकल्प अपने आप पूर्णता तक नहीं पहुँचता, तब वह उपाय से संस्कार पाता है; और यहाँ वह उपाय अनेक तरह का है — बुद्धि में, प्राण में, देह में, और फिर बाहर। यों वह आणव रूप से निर्णीत हुआ। परम फल देने में इनमें कोई भी भेद नहीं है।

पदपाठ विकल्पः — विकल्प · कस्यापि — किसी का · स्वयम् — अपने आप · अनुपयन् — न पहुँचता हुआ · पूर्णमयताम् — पूर्णता को · उपायात् — उपाय से · संस्कारम् — संस्कार को · व्रजति — पाता है · सः — वह · उपायः — उपाय · अत्र — यहाँ · बहुधा — अनेक तरह का है · धियि — बुद्धि में · प्राणे — प्राण में · देहे — देह में · तदनु — फिर · बहिः — बाहर · इति — यों · आणवतया — आणव रूप से · सः — वह · निर्णीतः — निर्णीत हुआ · न — नहीं · एषाम् — इनमें · पर-फल-विधौ — परम फल देने में · कापि — कोई भी · हि — ही · भिदा — भेद

सुण्णउ रविससि दहन
सउ उस्सउ एहु सवीरु ।
उहि अच्छन्तउं परमपउ १७.२
पावइ अचिरे वीरु ॥

शून्य, सूर्य, चन्द्र और अग्नि — यह प्राण का वीर्यवान् उठान है। जो वीर उसमें टिका रहता है, वह शीघ्र परम पद पाता है।

पदपाठ सुण्णउ रविससि दहन — शून्य, सूर्य, चन्द्र और अग्नि · सउ उस्सउ एहु सवीरु — यह प्राण का वीर्यवान् उठान है · उहि अच्छन्तउं — उसमें टिका हुआ · परमपउ पावइ अचिरे वीरु — वीर शीघ्र परम पद पाता है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे आणवप्रकाशनं नाम पञ्चममाह्निकम् ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में आणवप्रकाशन नामक पाँचवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

षष्ठमाह्निकम्

कालाध्वप्रकाशनम्

छठा आह्निक "बाह्य विधि" खोलता है और उसके तीन स्थानों में पहले, प्राण, को लेता है। ग्रन्थ जो पूरा अध्वा बताएगा वह प्राण में ही नापा जाता है, और काल उसी अध्वा की क्रम और अक्रम से गिनती है; यह गिनती परमेश्वर के भीतर उनकी काली नामक शक्ति के रूप में चमकती है, और भेद के साथ प्रकट होने पर वही प्राण की गति है। संवित् स्वयं अपने विषयों से अलग रूप लेकर आकाश (शून्य) बनती है, फिर विषयों को पकड़ने की उत्सुकता से देह में उतरकर प्राण-शक्ति बनती है, जिससे देह चेतन-सी दिखती है। प्राण में, जिसका एक आना-जाना हृदय से द्वादशान्त तक छत्तीस अंगुल है, काल की हर इकाई बिछी है: घटिका, तिथि अपने दिन-रात के साथ, मास अपने कृष्ण और शुक्ल पक्ष के साथ, दो पक्ष-सन्धियाँ और दो "ग्रहण" जहाँ माया-प्रमाता रूपी राहु विषय-चन्द्र का अमृत पीता है, वर्ष अपनी बारह संक्रान्तियों के साथ, फिर बारह वर्ष, साठ वर्ष, युग, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शतरुद्र, श्रीकण्ठ, गहनेश के दिन, माया का दिन, ईश्वर का, सदाशिव का और अनाश्रित का दिन — और अन्त में वह शान्त ब्रह्म जिससे काल का सारा चक्र आँख के खुलने-मुँदने की तरह घूमता है। ये सब असंख्य सृष्टि-प्रलय एक प्राण में टिके हैं, प्राण संवित् में, और यह शुद्ध चित् का स्पन्दमात्र है — इसीलिए स्वप्न में काल की विचित्रता कोई विरोध नहीं। यही कालोदय अपान में, समान में उसकी भीतरी संक्रान्तियों के साथ, उदान और व्यान में, फिर वर्णों और मन्त्र में दिखाया गया है, जिसका जप रहट की तरह चलता हुआ जपने वाले को मन्त्र-देवता से एक कर देता है। प्राण की गति सूक्ष्म होकर जब काल का ग्रास हो जाता है तब एक पूर्ण संवेदन चमकता है; क्योंकि काल ही ज्ञान को बाँटता है, और एक प्राण में एक ही ज्ञान होता है। पूरे कालाध्वा को प्राणोदय के रूप में देखता हुआ और अपने ही ऐश्वर्य को पहचानता हुआ मनुष्य मुक्त हो जाता है।

— अथ बाह्यविधिः —

स एव स्थानप्रकल्पनशब्देन उक्तः, तत्र त्रिधा स्थानं—प्राणवायुः शरीरं बाह्यं च, तत्र प्राणे तावत् विधिः, सर्वः असौ वक्ष्यमाणः अध्वा प्राणस्थः कल्यते, तस्य क्रमाक्रमकलनैव कालः, स च परमेश्वर एव अन्तर्भाति, तद्भासनं च देवस्य काली नाम शक्तिः, भेदेन तु तदाभासनं क्रमाक्रमयोः प्राणवृत्तिः । संविदेव हि प्रमेयेभ्यो विभक्तं रूपं गृह्णाति, अत एव च अवच्छेदयोगात् वेद्यतां १८.१ **यान्ती नभः, ततः स्वातन्त्र्यात् मेये स्वीकारौत्सुक्येन निपतन्ती क्रियाशक्तिप्रधाना प्राणनारूपा जीवस्वभावा पञ्चभी रूपैः देहं यतः पूरयति, ततोऽसौ चेतन इव भाति ।**

वही विधि "स्थान-प्रकल्पन" शब्द से कही गई है। स्थान तीन तरह का है — प्राणवायु, शरीर और बाहरी वस्तु। उनमें पहले प्राण की विधि। यह सारा अध्वा, जो आगे कहा जाएगा, प्राण में स्थित माना जाता है; उसकी क्रम और अक्रम से गिनती ही काल है। वह काल परमेश्वर के भीतर ही चमकता है, और वह चमकना ही देव की काली नामक शक्ति है; पर भेद के साथ, क्रम और अक्रम में, उसका प्रकट होना प्राण की गति है। क्योंकि संवित् ही विषयों से अलग रूप लेती है; इसीलिए सीमित होकर, वेद्य बनती हुई, वह आकाश है। फिर अपनी स्वतन्त्रता से, विषय को अपनाने की उत्सुकता से उस पर गिरती हुई, वह क्रियाशक्ति-प्रधान प्राणन-रूप बनती है — यही जीव का स्वभाव है; और क्योंकि वह पाँच रूपों से देह को भरती है, इसलिए देह चेतन-सी दिखती है।

पदपाठ सः एव स्थान-प्रकल्पन-शब्देन उक्तः — वही "स्थान-प्रकल्पन" शब्द से कहा गया है · तत्र त्रिधा स्थानम् — उसमें स्थान तीन तरह का है · प्राण-वायुः शरीरं बाह्यं च — प्राणवायु, शरीर और बाहरी वस्तु · तत्र प्राणे तावत् विधिः — उनमें पहले प्राण की विधि · सर्वः असौ वक्ष्यमाणः अध्वा — यह सारा अध्वा जो आगे कहा जाएगा · प्राणस्थः कल्यते — प्राण में स्थित माना जाता है · तस्य क्रम-अक्रम-

कलना एव कालः — उसकी क्रम और अक्रम से गिनती ही काल है · **सः च परमेश्वरे एव अन्तः भाति** — और वह परमेश्वर के भीतर ही चमकता है · **तत्-भासनं च देवस्य काली नाम शक्तिः** — वह चमकना ही देव की काली नामक शक्ति है · **भेदेन तु तत्-आभासनम्** — पर भेद के साथ उसका प्रकट होना · **क्रम-अक्रमयोः प्राण-वृत्तिः** — क्रम और अक्रम में, प्राण की गति है · **संवित् एव हि** — क्योंकि संवित् ही · **प्रमेयेभ्यः विभक्तं रूपं गृह्णाति** — विषयों से अलग रूप लेती है · **अतः एव च अवच्छेद-योगात्** — और इसीलिए सीमित होने से · **वेद्यतां यान्ती नभः** — वेद्य बनती हुई वह आकाश है · **ततः स्वातन्त्र्यात्** — फिर अपनी स्वतन्त्रता से · **मेये स्वीकार-औत्सुक्येन निपतन्ती** — विषय को अपनाने की उत्सुकता से उस पर गिरती हुई · **क्रिया-शक्ति-प्रधाना प्राणना-रूपा जीव-स्वभावा** — क्रियाशक्ति-प्रधान, प्राणन-रूप, जीव-स्वभाव वाली · **पञ्चभी रूपैः देहं यतः पूरयति** — क्योंकि पाँच रूपों से देह को भरती है · **ततः असौ चेतनः इव भाति** — इसलिए यह देह चेतन-सी दिखती है

तत्र क्रियाशक्तौ कालाध्वा प्राच्यभागे, उत्तरे तु मूर्तिवैचित्र्यरूपो देशाध्वा, तत्र वर्ण-मन्त्र-पदाध्वनः कालाध्वनि स्थितिः पर-सूक्ष्म-स्थूलरूपत्वात् । देशाध्वस्थितिस्तु तत्त्व-पुर-कलात्मना इति भविष्यति स्वावसरे । १८.२ तत्र यद्यपि देहे सबाह्याभ्यन्तरम् ओतप्रोतरूपः प्राणः, तथापि प्रस्फुटसंवेद्यप्रयत्नः असौ हृदयात्प्रभृति इति, तत एव अयं निरूपणीयः ।

क्रियाशक्ति में कालाध्वा पहले भाग में है और देशाध्वा — मूर्तियों की विचित्रता — बाद के भाग में। वर्ण, मन्त्र और पद के अध्वा कालाध्वा में स्थित हैं, क्योंकि वे उसके पर, सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं। देशाध्वा की स्थिति, तत्त्व, भुवन और कला के रूप में, अपने अवसर पर आएगी। यद्यपि प्राण देह में बाहर-भीतर सब ओर ओत-प्रोत है, फिर भी उसका प्रयत्न हृदय से लेकर स्पष्ट अनुभव होता है, इसलिए वहीं से इसका वर्णन करना है।

पदपाठ तत्र क्रिया-शक्तौ — उसमें, क्रियाशक्ति में · काल-अध्वा प्राच्य-भागे — कालाध्वा पहले भाग में है · उत्तरे तु मूर्ति-वैचित्र्य-रूपः देश-अध्वा — बाद के भाग में देशाध्वा, जो मूर्तियों की विचित्रता है · तत्र वर्ण-मन्त्र-पद-अध्वनः — उनमें वर्ण, मन्त्र और पद के अध्वा · काल-अध्वनि स्थितिः — कालाध्वा में स्थित हैं · पर-सूक्ष्म-स्थूल-रूपत्वात् — क्योंकि वे उसके पर, सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं · देश-अध्व-स्थितिः तु — पर देशाध्वा की स्थिति · तत्त्व-पुर-कला-आत्मना इति — तत्त्व, भुवन और कला के रूप में · भविष्यति स्व-अवसरे — अपने अवसर पर आएगी · तत्र यद्यपि देहे — यद्यपि देह में · स-बाह्य-अभ्यन्तरम् ओत-प्रोत-रूपः प्राणः — प्राण बाहर-भीतर सब ओर ओत-प्रोत है · तथापि प्रस्फुट-संवेद्य-प्रयत्नः असौ — फिर भी उसका प्रयत्न स्पष्ट अनुभव होता है · हृदयात् प्रभृति इति — हृदय से लेकर · ततः एव अयं निरूपणीयः — इसलिए वहीं से इसका वर्णन करना है

तत्र प्रभुशक्तिः आत्मशक्तिः यत्न इति त्रितयं प्राणेरणे हेतुः— गुणमुख्यभावात् ।

तत्र हृदयात् द्वादशान्तान्तं स्वाङ्गुलैः सर्वस्य षट्त्रिंशदङ्गुलः प्राणचारः निर्गमे प्रवेशे च, स्वोचितबलयत्नदेहत्वात् सर्वस्य । १८.३

तत्र घटिका तिथिः मासो वर्षं च वर्षसमूहात्मा, इति समस्तः कालः परिसमाप्यते ।

तत्र सपञ्चांशे अङ्गुले चषक इति स्थित्या घटिकोदयः, घटिका हि षष्ट्या चषकैः तस्मात् द्वासप्तत्यङ्गुला भवति ।

प्रभु-शक्ति, आत्म-शक्ति और यत्न — ये तीन प्राण की गति के कारण हैं, कोई गौण, कोई मुख्य रूप से। हृदय से द्वादशान्त तक, हर किसी के अपने अंगुलों से, प्राण की गति छत्तीस अंगुल है, निकलने और प्रवेश दोनों में, क्योंकि हर किसी की देह, बल और यत्न अपने अनुरूप होते हैं। उसी में घटिका, तिथि, मास, वर्ष और वर्ष-समूह — सारा काल — पूरा हो जाता है। इस नियम से कि एक अंगुल और उसका पाँचवाँ भाग एक चषक है, घटिका का उदय होता है: घटिका साठ चषकों की होती है, इसलिए वह बहत्तर अंगुल की होती है।

पदपाठ तत्र प्रभु-शक्तिः आत्म-शक्तिः यत्नः इति त्रितयम् — यहाँ प्रभु-शक्ति, आत्म-शक्ति और यत्न — ये तीन · प्राण-ईरणे हेतुः — प्राण की गति के कारण हैं · गुण-मुख्य-भावात् — कोई गौण, कोई मुख्य रूप से · तत्र हृदयात् द्वादशान्त-अन्तम् — हृदय से द्वादशान्त तक · स्व-अङ्गुलैः सर्वस्य — हर किसी के अपने अंगुलों से · षट्त्रिंशत्-अङ्गुलः प्राण-चारः — प्राण की गति छत्तीस अंगुल है · निर्गमे प्रवेशे च — निकलने और प्रवेश में · स्व-उचित-बल-यत्न-देहत्वात् सर्वस्य — क्योंकि हर किसी की देह, बल और यत्न अपने अनुरूप हैं · तत्र घटिका तिथिः मासः वर्षं च वर्ष-समूह-आत्मा — उसमें घटिका, तिथि, मास, वर्ष और वर्ष-समूह · इति समस्तः कालः परिसमाप्यते — यों सारा काल पूरा हो जाता है · तत्र स-पञ्च-अंशे अङ्गुले चषकः इति स्थित्या — इस नियम से कि एक अंगुल और उसका पाँचवाँ भाग एक चषक है · घटिका-उदयः — घटिका का उदय होता है · घटिका हि षष्ट्या चषकैः — क्योंकि घटिका साठ चषकों की होती है · तस्मात् द्वासप्तति-अङ्गुला भवति — इसलिए वह बहत्तर अंगुल की होती है

अथ तिथ्युदयः ।

सपादमङ्गुलद्वयं तुटिः उच्यते, तासु चतसृषु प्रहरः, तुट्यर्धं तुट्यर्धं तत्र संध्या, एवं निर्गमे दिनं, प्रवेशे रात्रिः, इति तिथ्युदयः । ॥ ४

अब तिथि का उदय। सवा दो अंगुल तुटि कहलाती है; चार तुटियों का एक प्रहर; दोनों ओर आधी-आधी तुटि संध्या है। यों निकलने में दिन और प्रवेश में रात। यह तिथि का उदय है।

पदपाठ अथ तिथि-उदयः — अब तिथि का उदय · स-पादम् अङ्गुल-द्वयं तुटिः उच्यते — सवा दो अंगुल तुटि कहलाती है · तासु चतसृषु प्रहरः — चार तुटियों का एक प्रहर · तुटि-अर्धं तुटि-अर्धं तत्र संध्या — दोनों ओर आधी-आधी तुटि संध्या है · एवं निर्गमे दिनम् — यों निकलने में दिन · प्रवेशे रात्रिः — प्रवेश में रात · इति तिथि-उदयः — यह तिथि का उदय है

अथ मासोदयः ।

तत्र दिनं कृष्णपक्षः, रात्रिः शुक्लः, तत्र पूर्वं तुट्यर्धं अन्त्यं च तुट्यर्धं विश्रान्तिः अकालकलिताः, मध्यास्तु पञ्चदश तुटय एव तिथयः, तत्र प्रकाशो विश्रान्तिश्च १८.५

इति एते एव दिननिशे ।

तत्र वेद्यमयताप्रकाशो दिनं, वेद्यस्य विचारयितरि लयो रात्रिः, ते च प्रकाशविश्रान्ती चिराचिरवैचित्र्यात् अनन्तभेदे, तत्साम्ये तु विषुवत् ।

अब मास का उदय। यहाँ दिन कृष्ण पक्ष है और रात शुक्ल पक्ष। पहली आधी तुटि और अन्तिम आधी तुटि विश्रान्ति हैं और काल में नहीं गिनी जातीं; बीच की पन्द्रह तुटियाँ ही तिथियाँ हैं, और उनमें प्रकाश और विश्रान्ति ही दिन-रात हैं। वेद्यमयता का प्रकाश दिन है; वेद्य का विचार करने वाले में लय रात है। वे प्रकाश और विश्रान्ति देर या जल्दी की विचित्रता से अनन्त भेद वाले हैं; उनके बराबर होने पर विषुवत् है।

पदपाठ अथ मास-उदयः — अब मास का उदय · तत्र दिनं कृष्ण-पक्षः — यहाँ दिन कृष्ण पक्ष है · रात्रिः शुक्लः — रात शुक्ल पक्ष · तत्र पूर्वं तुटि-अर्धम् अन्त्यं च तुटि-अर्धं विश्रान्तिः — उसमें पहली आधी तुटि और अन्तिम आधी तुटि विश्रान्ति हैं · अकाल-कलिताः — काल में नहीं गिनी जातीं · मध्याः तु पञ्चदश तुटयः एव तिथयः — बीच की पन्द्रह तुटियाँ ही तिथियाँ हैं · तत्र प्रकाशः विश्रान्तिः च इति एते एव दिन-निशे — उनमें प्रकाश और विश्रान्ति ही दिन-रात हैं · तत्र वेद्य-मयता-प्रकाशः दिनम् — वेद्यमयता का प्रकाश दिन है · वेद्यस्य विचारयितरि लयः रात्रिः — वेद्य का विचार करने वाले में लय रात है · ते च प्रकाश-विश्रान्ती — और वे प्रकाश और विश्रान्ति · चिर-अचिर-वैचित्र्यात् अनन्त-भेदे — देर या जल्दी की विचित्रता से अनन्त भेद वाले हैं · तत्-साम्ये तु विषुवत् — उनके बराबर होने पर विषुवत् है

तत्र कृष्णपक्षे प्राणार्के अपानचन्द्र आप्यायिकाम् एकामेकां कलाम् अर्पयति, यावत् पञ्चदश्यां तुटौ द्वादशान्तसमीपे क्षीणपृथग्भूतकलाप्रसरः चन्द्रमाः प्राणार्क एव लीयते ।

तदनन्तरं यत् तुट्यर्धं स पक्षसंधिः ।

तस्य च तुट्यर्धस्य प्राच्यम् अर्धम् आमावस्यं, द्वितीयं प्रातिपदं ।

तत्र प्रातिपदे तस्मिन् भागे स आमावस्यो भागो यदा कासप्रयत्नावधानादिकृतात् तिथिच्छेदात् विशति तदा तत्र ग्रहणम्, तत्र च १८.६
वेद्यरूपसोमसहभूतो मायाप्रमातृराहुः स्वभावतया विलापनाशक्तः केवलम् आच्छादनमात्रसमर्थः सूर्यगतं चान्द्रं अमृतं पिबति इति ।

प्रमातृप्रमाणप्रमेयत्रितयाविभागकारित्वात् स पुण्यः कालः पारलौकिकफलप्रदः ।

ततः प्रविशति प्राणे चिदर्क एकैकया कलया अपानचन्द्रम् आपूरयति, यावत् पञ्चदशी तुटिः पूर्णिमा, तदनन्तरं पक्षसंधिः ग्रहणं च इति प्राग्वत्, एतत् तु ऐहिकफलप्रदम्, इति मासोदयः ।

कृष्ण पक्ष में अपान-चन्द्र प्राण-सूर्य में एक-एक पोषक कला अर्पित करता है, जब तक कि पन्द्रहवीं तुटि में, द्वादशान्त के पास, चन्द्रमा — जिसकी अलग-अलग कलाओं का फैलाव क्षीण हो गया — प्राण-सूर्य में ही लीन हो जाता है। उसके बाद की आधी तुटि पक्ष-सन्धि है। उस आधी तुटि का पहला आधा अमावस्या का है, दूसरा प्रतिपदा का। जब खाँसी, प्रयत्न, ध्यान आदि से हुए तिथि-छेद से अमावस्या वाला भाग प्रतिपदा वाले भाग में घुस जाता है, तब वहाँ ग्रहण होता है; वहाँ वेद्य-रूप चन्द्रमा के साथ उत्पन्न माया-प्रमाता रूपी राहु, जो स्वभाव से उसे गला देने में असमर्थ है और केवल ढकने भर में समर्थ है, सूर्य में गए चन्द्रमा के अमृत को पीता

है। क्योंकि वह प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय तीनों को अविभक्त कर देता है, इसलिए वह पुण्य काल परलोक का फल देता है। फिर प्राण के प्रवेश में चित्-सूर्य एक-एक कला से अपान-चन्द्र को भरता है, पन्द्रहवीं तुटि, पूर्णिमा, तक; उसके बाद पक्ष-सन्धि और ग्रहण पहले की तरह — पर यह इस लोक का फल देता है। यह मास का उदय है।

पदपाठ तत्र कृष्ण-पक्षे — कृष्ण पक्ष में · प्राण-अर्के अपान-चन्द्रः — अपान-चन्द्र प्राण-सूर्य में · आप्यायिकाम् एकाम् एकां कलाम् अर्पयति — एक-एक पोषक कला अर्पित करता है · यावत् पञ्चदश्यां तुटौ द्वादशान्त-समीपे — जब तक कि पन्द्रहवीं तुटि में, द्वादशान्त के पास · क्षीण-पृथक्-भूत-कला-प्रसरः चन्द्रमाः — चन्द्रमा, जिसकी अलग-अलग कलाओं का फैलाव क्षीण हो गया · प्राण-अर्के एव लीयते — प्राण-सूर्य में ही लीन हो जाता है · तत्-अनन्तरं यत् तुटि-अर्धं सः पक्ष-संधिः — उसके बाद की आधी तुटि पक्ष-सन्धि है · तस्य च तुटि-अर्धस्य प्राच्यम् अर्धम् आमावस्यम् — उस आधी तुटि का पहला आधा अमावस्या का है · द्वितीयं प्रातिपदम् — दूसरा प्रतिपदा का · तत्र प्रातिपदे तस्मिन् भागे — जब उस प्रतिपदा वाले भाग में · सः आमावस्यः भागः यदा विशति — वह अमावस्या वाला भाग घुस जाता है · कास-प्रयत्न-अवधान-आदि-कृतात् तिथि-छेदात् — खाँसी, प्रयत्न, ध्यान आदि से हुए तिथि-छेद से · तदा तत्र ग्रहणम् — तब वहाँ ग्रहण होता है · तत्र च वेद्य-रूप-सोम-सह-भूतः माया-प्रमातृ-राहुः — वहाँ वेद्य-रूप चन्द्रमा के साथ उत्पन्न माया-प्रमाता रूपी राहु · स्वभावतया विलापन-अशक्तः — स्वभाव से उसे गला देने में असमर्थ · केवलम् आच्छादन-मात्र-समर्थः — केवल ढकने भर में समर्थ · सूर्य-गतं चान्द्रम् अमृतं पिबति इति — सूर्य में गए चन्द्रमा के अमृत को पीता है · प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेय-त्रितय-अविभाग-कारित्वात् — क्योंकि वह प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय तीनों को अविभक्त कर देता है · सः पुण्यः कालः पारलौकिक-फल-प्रदः — वह पुण्य काल परलोक का फल देता है · ततः प्रविशति प्राणे — फिर प्राण के प्रवेश में · चित्-अर्कः एक-एकया कलया अपान-चन्द्रम् आपूरयति — चित्-सूर्य एक-एक कला से अपान-चन्द्र को भरता है · यावत् पञ्चदशी तुटिः पूर्णिमा — पन्द्रहवीं तुटि, पूर्णिमा, तक · तत्-अनन्तरं पक्ष-संधिः ग्रहणं च इति प्राग्वत् — उसके बाद पक्ष-सन्धि और ग्रहण, पहले की तरह · एतत् तु ऐहिक-फल-प्रदम् — पर यह इस लोक का फल देता है · इति मास-उदयः — यह मास का उदय है

अथ वर्षोदयः ।

तत्र कृष्णपक्ष एव उत्तरायणं षट्सु षट्सु अङ्गुलेषु संक्रान्तिः मकरात् मिथुनान्तम् ।

तत्र प्रत्यङ्गुलं पञ्च तिथयः, तत्रापि दिनरात्रिविभागः, एवं प्रवेशे दक्षिणायनं, गर्भत्वम्, उद्भवेच्छा, उद्बुभूषुता, उद्भविष्यत्त्वम्, उद्भवारम्भः, उद्भवत्ता, १८.७ जन्मादिविकारषट्कं च इति क्रमात् मकरादिषु इति ।

तथैव उपासा अत्र फलं समुचितं करोति ।

अत्र च दक्षाद्याः पितामहान्ता रुद्राः शक्तयश्च द्वादशाधिपतय, इति वर्षोदयः ।

अब वर्ष का उदय। कृष्ण पक्ष ही उत्तरायण है, जिसमें हर छह अंगुल पर एक संक्रान्ति है, मकर से मिथुन के अन्त तक। उसमें हर अंगुल में पाँच तिथियाँ हैं, और वहाँ भी दिन-रात का विभाग है। इसी तरह प्रवेश में दक्षिणायन है: गर्भ में होना, उद्भव की इच्छा, उद्भव की उत्कण्ठा, उद्भव की तैयारी, उद्भव का आरम्भ, उद्भव होना, और जन्म आदि छह विकार — क्रम से मकर आदि में। इसी तरह यहाँ उपासना उचित फल देती है। और यहाँ दक्ष से पितामह तक के रुद्र और शक्तियाँ बारह अधिपति हैं। यह वर्ष का उदय है।

पदपाठ अथ वर्ष-उदयः — अब वर्ष का उदय · तत्र कृष्ण-पक्षः एव उत्तरायणम् — कृष्ण पक्ष ही उत्तरायण है · षट्सु षट्सु अङ्गुलेषु संक्रान्तिः — हर छह अंगुल पर एक संक्रान्ति · मकरात् मिथुन-अन्तम् — मकर से मिथुन के अन्त तक · तत्र प्रति-अङ्गुलं पञ्च तिथयः — उसमें हर अंगुल में पाँच तिथियाँ · तत्र अपि दिन-रात्रि-विभागः — वहाँ भी दिन-रात का विभाग · एवं प्रवेशे दक्षिणायनम् — इसी तरह प्रवेश में दक्षिणायन · गर्भत्वम् उद्भव-इच्छा उद्बुभूषुता — गर्भ में होना, उद्भव की इच्छा, उद्भव की उत्कण्ठा · उद्भविष्यत्त्वम् उद्भव-आरम्भः उद्भवत्ता — उद्भव की तैयारी, उद्भव का आरम्भ, उद्भव होना · जन्म-आदि-विकार-षट्कं च — और जन्म आदि छह विकार · इति क्रमात् मकर-आदिषु इति — क्रम से मकर आदि में · तथा एव उपासा अत्र फलं समुचितं करोति — इसी तरह यहाँ उपासना उचित फल देती है · अत्र च दक्ष-आद्याः पितामह-अन्ताः रुद्राः शक्तयः च — और यहाँ दक्ष से पितामह तक के रुद्र और शक्तियाँ · द्वादश-अधिपतयः — बारह अधिपति हैं · इति वर्ष-उदयः — यह वर्ष का उदय है

प्रत्यङ्गुलं षष्टिः तिथय इति क्रमेण संक्रान्तौ वर्षम् इत्यनेन क्रमेण प्रवेशनिर्गमयोः द्वादशाब्दोदयः, प्रत्यङ्गुलं तिथीनां शतत्रयं, सपञ्चांशेऽङ्गुले वर्षं, यत्र प्राक् चषकम् उक्तम् इति गणनया संक्रान्तौ पञ्च वर्षाणि, इति अनया परिपाट्या एकस्मिन् प्राणनिर्गमप्रवेशकाले षष्ट्यब्दोदयः, अत्र एकविंशतिसहस्राणि षट् शतानि इति तिथीनां संख्या । १८.८

तावती एव अहोरात्रे प्राणसंख्या, इति न षष्ट्यब्दोदयात् अधिकं परीक्ष्यते आनन्त्यात् ।

तत्र मानुषं वर्षं देवानां तिथिः, अनेन क्रमेण दिव्यानि द्वादशवर्षसहस्राणि चतुर्युगम् ।

हर अंगुल में साठ तिथियों और एक संक्रान्ति में एक वर्ष के क्रम से प्रवेश और निर्गम में बारह वर्षों का उदय होता है। हर अंगुल में तीन सौ तिथियाँ और एक अंगुल और उसके पाँचवें भाग में एक वर्ष — जहाँ पहले चषक कहा गया — इस गिनती से एक संक्रान्ति में पाँच वर्ष, और यों प्राण के एक निर्गम-प्रवेश काल में साठ वर्षों का उदय होता है; यहाँ तिथियों की संख्या इक्कीस हज़ार छह सौ है। एक दिन-रात में प्राणों की संख्या भी उतनी ही है, इसलिए साठ वर्ष के उदय से आगे नहीं देखा जाता, क्योंकि उसका अन्त नहीं। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं की एक तिथि है; इस क्रम से बारह हज़ार दिव्य वर्ष चतुर्युग हैं।

पदपाठ प्रति-अङ्गुलं षष्टिः तिथयः इति क्रमेण — हर अंगुल में साठ तिथियों के क्रम से · संक्रान्तौ वर्षम् इति अनेन क्रमेण — एक संक्रान्ति में एक वर्ष — इस क्रम से · प्रवेश-निर्गमयोः द्वादश-अब्द-उदयः — प्रवेश और निर्गम में बारह वर्षों का उदय · प्रति-अङ्गुलं तिथीनां शत-त्रयम् — हर अंगुल में तीन सौ तिथियाँ · स-पञ्च-अंशे अङ्गुले वर्षम् — एक अंगुल और उसके पाँचवें भाग में एक वर्ष · यत्र प्राक् चषकम् उक्तम् इति गणनया — जहाँ पहले चषक कहा गया — इस गिनती से · संक्रान्तौ पञ्च वर्षाणि — एक संक्रान्ति में पाँच वर्ष · इति अनया परिपाट्या — इस पद्धति से · एकस्मिन् प्राण-निर्गम-प्रवेश-काले षष्टि-

अब्द-उदयः — प्राण के एक निर्गम-प्रवेश काल में साठ वर्षों का उदय · **अत्र एकविंशति-सहस्राणि षट् शतानि इति तिथीनां संख्या** — यहाँ तिथियों की संख्या इक्कीस हज़ार छह सौ है · **तावती एव अहोरात्रे प्राण-संख्या** — एक दिन-रात में प्राणों की संख्या भी उतनी ही है · **इति न षष्टि-अब्द-उदयात् अधिकं परीक्ष्यते** — इसलिए साठ वर्ष के उदय से आगे नहीं देखा जाता · **आनन्त्यात्** — क्योंकि उसका अन्त नहीं · **तत्र मानुषं वर्षं देवानां तिथिः** — मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं की एक तिथि है · **अनेन क्रमेण दिव्यानि द्वादश-वर्ष-सहस्राणि चतुर्युगम्** — इस क्रम से बारह हज़ार दिव्य वर्ष चतुर्युग हैं

चत्वारि त्रीणि द्वे एकम् इति कृतात् प्रभृति तावद्भिः शतैः अष्टौ संध्याः ।
चतुर्युगानाम् एकसप्तत्या मन्वन्तरम्, मन्वन्तरैः चतुर्दशभिः ब्राह्मं दिनं,
ब्रह्मदिनान्ते कालाग्निदग्धे लोकत्रये अन्यत्र च लोकत्रये धूमप्रस्वापिते सर्वे
जना वेगवदग्निप्रेरिता जनलोके प्रलयाकलीभूय तिष्ठन्ति । १८.९
प्रबुद्धास्तु कूष्माण्डहाटकेशाद्या महोलोके क्रीडन्ति ।
ततो निशासमाप्तौ ब्राह्मी सृष्टिः ।
अनेन मानेन वर्षशतं ब्रह्मायुः ।
तत् विष्णोः दिनं तावती च रात्रिः, तस्यापि शतम् आयुः ।

चार, तीन, दो, एक — कृत युग से लेकर युग ऐसे हैं, और उतने ही सौ की आठ संध्याएँ। इकहत्तर चतुर्युगों का एक मन्वन्तर; चौदह मन्वन्तरों का ब्रह्मा का एक दिन। ब्रह्मा के दिन के अन्त में, जब तीन लोक कालाग्नि से जल जाते हैं और दूसरे तीन लोक धुएँ से सुला दिए जाते हैं, सब जन वेग वाली आग से धकेले हुए जनलोक में प्रलयाकल होकर रहते हैं। पर प्रबुद्ध — कूष्माण्ड, हाटकेश आदि — महर्लोक में क्रीड़ा करते हैं। फिर रात के अन्त में ब्रह्मा की सृष्टि होती है। इस माप से सौ वर्ष ब्रह्मा की आयु है। वह विष्णु का दिन है, और उतनी ही रात; उनकी भी आयु सौ वर्ष है।

पदपाठ चत्वारि त्रीणि द्वे एकम् इति कृतात् प्रभृति — चार, तीन, दो, एक — कृत युग से लेकर · तावद्भिः शतैः अष्टौ संध्याः — उतने ही सौ की आठ संध्याएँ · चतुर्युगानाम् एकसप्तत्या मन्वन्तरम् — इकहत्तर चतुर्युगों का एक मन्वन्तर · मन्वन्तरैः चतुर्दशभिः ब्राह्मं दिनम् — चौदह मन्वन्तरों का ब्रह्मा का एक दिन · ब्रह्म-दिन-अन्ते — ब्रह्मा के दिन के अन्त में · काल-अग्नि-दग्धे लोक-त्रये — जब तीन लोक कालाग्नि से जल जाते हैं · अन्यत्र च लोक-त्रये धूम-प्रस्वापिते — और दूसरे तीन लोक धुएँ से सुला दिए जाते हैं · सर्वे जनाः वेगवत्-अग्नि-प्रेरिताः — सब जन, वेग वाली आग से धकेले हुए · जन-लोके प्रलय-अकली-भूय तिष्ठन्ति — जनलोक में प्रलयाकल होकर रहते हैं · प्रबुद्धाः तु कूष्माण्ड-हाटकेश-आद्याः — पर प्रबुद्ध, कूष्माण्ड, हाटकेश आदि · महः-लोके क्रीडन्ति — महर्लोक में क्रीड़ा करते हैं · ततः निशा-समाप्तौ ब्राह्मी सृष्टिः — फिर रात के अन्त में ब्रह्मा की सृष्टि · अनेन मानेन वर्ष-शतं ब्रह्म-आयुः — इस माप से सौ

वर्ष ब्रह्मा की आयु है · तत् विष्णोः दिनं तावती च रात्रिः — वह विष्णु का दिन है, और उतनी ही रात · तस्य अपि शतम् आयुः — उनकी भी आयु सौ है

तत् दिनं तदूर्ध्वे रुद्रलोकप्रभो रुद्रस्य, तावती रात्रिः, प्राग्वत् वर्षं, तच्छतमपि च अवधिः ।

तत्र रुद्रस्य तदवसितौ शिवत्वगतिः, रुद्रस्य उक्ताधिकारावधिः,

ब्रह्माण्डधारकाणां तत् दिनं शतरुद्राणां, निशा तावती, तेषामपि च शतमायुः ।

शतरुद्रक्षये ब्रह्माण्डविनाशः ।

एवं जलतत्त्वात् अव्यक्तान्तम् एतदेव क्रमेण रुद्राणाम् आयुः । १८.१०

पूर्वस्यायुरुत्तरस्य दिनम् इति ।

ततश्च ब्रह्मा रुद्राश्च अबाद्यधिकारिणः अव्यक्ते तिष्ठन्ति इति ।

श्रीकण्ठनाथश्च तदा संहर्ता ।

एषोऽवान्तरप्रलयः, तत्क्षये सृष्टिः ।

तत्र शास्त्रान्तरमुक्ता अपि सृज्यन्ते ।

वह उसके ऊपर के रुद्रलोक के स्वामी रुद्र का दिन है; उतनी ही रात, पहले की तरह वर्ष, और उसके सौ की अवधि। उसके पूरे होने पर रुद्र शिवत्व को जाते हैं — यह रुद्र के अधिकार की कही हुई अवधि है। वह ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले शतरुद्रों का दिन है; उतनी ही रात, और उनकी भी आयु सौ। शतरुद्रों के क्षय पर ब्रह्माण्ड का नाश होता है। यों जल-तत्त्व से अव्यक्त तक यही क्रम से रुद्रों की आयु है: नीचे वाले की आयु ऊपर वाले का दिन है। फिर ब्रह्मा और जल आदि के अधिकारी रुद्र अव्यक्त में रहते हैं, और तब श्रीकण्ठनाथ संहारक हैं। यह अवान्तर प्रलय है; उसके क्षय पर सृष्टि होती है, जिसमें दूसरे शास्त्रों से मुक्त हुए भी फिर रचे जाते हैं।

पदपाठ तत् दिनं तत्-ऊर्ध्वे रुद्र-लोक-प्रभोः रुद्रस्य — वह उसके ऊपर के रुद्रलोक के स्वामी रुद्र का दिन है · तावती रात्रिः प्राग्वत् वर्षम् — उतनी ही रात, पहले की तरह वर्ष · तत्-शतम् अपि च अवधिः — और उसके सौ की अवधि · तत्र रुद्रस्य तत्-अवसितौ शिवत्व-गतिः — उसके पूरे होने पर रुद्र शिवत्व को जाते

हैं · **रुद्रस्य उक्त-अधिकार-अवधिः** — यह रुद्र के अधिकार की कही हुई अवधि है · **ब्रह्माण्ड-धारकाणां शत-रुद्राणां तत् दिनम्** — वह ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले शतरुद्रों का दिन है · **निशा तावती तेषाम् अपि च शतम् आयुः** — उतनी ही रात, और उनकी भी आयु सौ · **शत-रुद्र-क्षये ब्रह्माण्ड-विनाशः** — शतरुद्रों के क्षय पर ब्रह्माण्ड का नाश · **एवं जल-तत्त्वात् अव्यक्त-अन्तम्** — यों जल-तत्त्व से अव्यक्त तक · **एतत् एव क्रमेण रुद्राणाम् आयुः** — यही क्रम से रुद्रों की आयु है · **पूर्वस्य आयुः उत्तरस्य दिनम् इति** — नीचे वाले की आयु ऊपर वाले का दिन है · **ततः च ब्रह्मा रुद्राः च अप्-आदि-अधिकारिणः** — फिर ब्रह्मा और जल आदि के अधिकारी रुद्र · **अव्यक्ते तिष्ठन्ति इति** — अव्यक्त में रहते हैं · **श्रीकण्ठ-नाथः च तदा संहर्ता** — और तब श्रीकण्ठनाथ संहारक हैं · **एषः अवान्तर-प्रलयः** — यह अवान्तर प्रलय है · **तत्-क्षये सृष्टिः** — उसके क्षय पर सृष्टि · **तत्र शास्त्र-अन्तर-मुक्ताः अपि सृज्यन्ते** — जिसमें दूसरे शास्त्रों से मुक्त हुए भी फिर रचे जाते हैं

यत्तु श्रीकण्ठनाथस्य स्वम् आयुः तत् कञ्चुकवासिनां रुद्राणां दिनं, तावती रजनी, तेषां यदायुः तत् गहनेशदिनं, तावती एव क्षपा, तस्यां च समस्तमेव मायायां विलीयते ।

पुनः गहनेशः सृजति ।

एवं यः अव्यक्तकालः तं दशभिः परार्धैः गुणयित्वा मायादिनं कथयेत्, तावती रात्रिः । १८.११

स एव प्रलयः ।

मायाकालः परार्धशतेन गुणित ऐश्वरतत्त्वे दिनम् ।

अत्र प्राणो जगत् सृजति, तावती रात्रिः, यत्र प्राणप्रशमः, प्राणे च ब्रह्मबिलधाम्नि शान्तेऽपि या संवित्, तत्राप्यस्ति क्रमः ।

ऐश्वरे काले परार्धशतगुणिते या संख्या, तत् सादाशिवं दिनं, तावती निशा, स एव महाप्रलयः ।

जो श्रीकण्ठनाथ की अपनी आयु है, वह कञ्चुकों में रहने वाले रुद्रों का दिन है, और उतनी ही रात। उनकी आयु गहनेश का दिन है, उतनी ही रात, और उसमें सब कुछ माया में विलीन हो जाता है। फिर गहनेश सृष्टि करते हैं। यों जो अव्यक्त का काल है, उसे दस परार्ध से गुणा करने पर माया का दिन होता है; उतनी ही रात — वही प्रलय है। माया का काल सौ परार्ध से गुणा करने पर ईश्वर-तत्त्व में दिन है। यहाँ प्राण जगत् को रचता है; उतनी ही रात, जिसमें प्राण शान्त होता है — और ब्रह्मबिल के धाम में प्राण के शान्त होने पर भी जो संवित् बची रहती है, उसमें भी क्रम है। ईश्वर के काल को सौ परार्ध से गुणा करने पर जो संख्या हो, वह सदाशिव का दिन है; उतनी ही रात — वही महाप्रलय है।

पदपाठ यत् तु श्रीकण्ठ-नाथस्य स्वम् आयुः — जो श्रीकण्ठनाथ की अपनी आयु है · तत् कञ्चुक-वासिनां रुद्राणां दिनम् — वह कञ्चुकों में रहने वाले रुद्रों का दिन है · तावती रजनी — उतनी ही रात · तेषां यत् आयुः तत् गहनेश-दिनम् — उनकी आयु गहनेश का दिन है · तावती एव क्षपा — उतनी ही रात · तस्यां च समस्तम् एव मायायां विलीयते — और उसमें सब कुछ माया में विलीन हो जाता है · पुनः गहनेशः सृजति — गहनेश फिर सृष्टि करते हैं · एवं यः अव्यक्त-कालः — यों जो अव्यक्त का काल है · तं दशभिः परार्धैः गुणयित्वा माया-दिनं कथयेत् — उसे दस परार्ध से गुणा करके माया का दिन कहें · तावती रात्रिः सः एव प्रलयः — उतनी ही रात — वही प्रलय है · माया-कालः परार्ध-शतेन गुणितः — माया का काल सौ परार्ध से गुणा किया हुआ · ऐश्वर-तत्त्वे दिनम् — ईश्वर-तत्त्व में दिन है · अत्र प्राणः जगत् सृजति — यहाँ प्राण जगत् को रचता है · तावती रात्रिः यत्र प्राण-प्रशमः — उतनी ही रात, जिसमें प्राण शान्त होता है · प्राणे च ब्रह्म-बिल-धाम्नि शान्ते अपि — और ब्रह्मबिल के धाम में प्राण के शान्त होने पर भी · या संवित् तत्र अपि अस्ति क्रमः — जो संवित् है, उसमें भी क्रम है · ऐश्वरे काले परार्ध-शत-गुणिते या संख्या — ईश्वर के काल को सौ परार्ध से गुणा करने पर जो संख्या हो · तत् सादाशिवं दिनम् — वह सदाशिव का दिन है · तावती निशा सः एव महा-प्रलयः — उतनी ही रात — वही महाप्रलय है

सदाशिवः स्वकालपरिक्षये बिन्द्वर्धचन्द्रनिरोधिका आक्रम्य नादे लीयते, नादः शक्तितत्त्वे, तत् व्यापिन्यां, सा च अनाश्रिते ।
शक्तिकालेन परार्धकोटिगुणितेन अनाश्रितदिनम् ।
अनाश्रितः सामनसे पदे, यत् तत् सामनस्यं साम्यं तत् ब्रह्म ।
अस्मात् सामनस्यात् अकल्यात् कालात् निमेषोन्मेषमात्रतया १८.१२
प्रोक्ताशेषकालप्रसरप्रविलयचक्रभ्रमोदयः ।
एकं दश शतं सहस्रम् अयुतं लक्षं नियुतं कोटिः अर्बुदं वृन्दं खर्वं निखर्वं पद्मं शङ्कुः समुद्रं अन्त्यं मध्यम् परार्धम् इति क्रमेण दशगुणितानि अष्टादश, इति गणितविधिः ।

सदाशिव अपने काल के पूरे होने पर बिन्दु, अर्धचन्द्र और निरोधिका को पार करके नाद में लीन होते हैं; नाद शक्ति-तत्त्व में, वह व्यापिनी में, और वह अनाश्रित में। शक्ति का काल करोड़ परार्ध से गुणा करने पर अनाश्रित का दिन होता है। अनाश्रित सामनस पद में रहता है, और जो वह सामनस्य है, साम्य है, वही ब्रह्म है। इस सामनस्य से, जो अगणनीय काल है, आँख के मुँदने-खुलने भर से, कहे गए समस्त काल के प्रसार और प्रलय का सारा चक्र घूमता है। एक, दस, सौ, हज़ार, अयुत, लाख, नियुत, करोड़, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, पद्म, शङ्कु, समुद्र, अन्त्य, मध्य, परार्ध — ये अठारह, क्रम से एक-दूसरे के दस गुने: यह गणना की विधि है।

पदपाठ सदाशिवः स्व-काल-परिक्षये — सदाशिव अपने काल के पूरे होने पर · बिन्दु-अर्धचन्द्र-निरोधिकाः आक्रम्य — बिन्दु, अर्धचन्द्र और निरोधिका को पार करके · नादे लीयते — नाद में लीन होते हैं · नादः शक्ति-तत्त्वे तत् व्यापिन्यां सा च अनाश्रिते — नाद शक्ति-तत्त्व में, वह व्यापिनी में, और वह अनाश्रित में · शक्ति-कालेन परार्ध-कोटि-गुणितेन अनाश्रित-दिनम् — शक्ति का काल करोड़ परार्ध से गुणा करने पर अनाश्रित का दिन · अनाश्रितः सामनसे पदे — अनाश्रित सामनस पद में · यत् तत् सामनस्यं साम्यं तत् ब्रह्म — जो वह सामनस्य है, साम्य है, वही ब्रह्म है · अस्मात् सामनस्यात् अकल्यात् कालात् — इस

सामनस्य से, जो अगणनीय काल है · **निमेष-उन्मेष-मात्रतया** — आँख के मुँदने-खुलने भर से · **प्रोक्त-अशेष-काल-प्रसर-प्रविलय-चक्र-भ्रम-उदयः** — कहे गए समस्त काल के प्रसार और प्रलय का चक्र घूमता है · **एकं दश शतं सहस्रम् अयुतं लक्षं नियुतं कोटिः अर्बुदम्** — एक, दस, सौ, हज़ार, अयुत, लाख, नियुत, करोड़, अर्बुद · **वृन्दं खर्वं निखर्वं पद्मं शङ्कुः समुद्रम् अन्त्यं मध्यम् परार्धम्** — वृन्द, खर्व, निखर्व, पद्म, शङ्कु, समुद्र, अन्त्य, मध्य, परार्ध · **इति क्रमेण दश-गुणितानि अष्टादश** — ये अठारह, क्रम से एक-दूसरे के दस गुने · **इति गणित-विधिः** — यह गणना की विधि है

एवम् असंख्याः सृष्टिप्रलयाः एकस्मिन् महासृष्टिरूपे प्राणे, सोऽपि संविदि, सा उपाधौ, स चिन्मात्रे, चिन्मात्रस्यैव अयं स्पन्दो—यदयं कालोदयो नाम । तत एव स्वप्नसंकल्पादौ वैचित्र्यम् अस्य न विरोधावहम् । एवं यथा प्राणे कालोदयः, तथा अपानेऽपि हृदयात् मूलपीठपर्यन्तम् १८.१३ यथा च हृत्कण्ठ-तालु-ललाट-रन्ध्र-द्वादशान्तेषु ब्रह्म-विष्णु-रुद्रेश-सदाशिवानाश्रिताख्यं कारणषट्कम्, तथैव अपानेऽपि हृत्कन्दानन्द-संकोच-विकास-द्वादशान्तेषु, बाल्य-यौवन-वार्धक-निधन-पुनर्भव-मुक्त्यधिपतय एते ।

यों असंख्य सृष्टि-प्रलय एक महासृष्टि-रूप प्राण में हैं; वह प्राण संवित् में, वह उपाधि में, वह चिन्मात्र में। यह चिन्मात्र का ही स्पन्द है — जिसे कालोदय कहते हैं। इसीलिए स्वप्न, संकल्प आदि में काल की विचित्रता कोई विरोध नहीं लाती। जैसे प्राण में कालोदय है, वैसे अपान में भी, हृदय से मूल-पीठ तक। और जैसे हृदय, कण्ठ, तालु, ललाट, रन्ध्र और द्वादशान्त में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश, सदाशिव और अनाश्रित नामक छह कारण हैं, वैसे ही अपान में भी, हृदय, कन्द, आनन्द, संकोच, विकास और द्वादशान्त में, ये बाल्य, यौवन, वार्धक्य, मृत्यु, पुनर्जन्म और मुक्ति के अधिपति हैं।

पदपाठ एवम् असंख्याः सृष्टि-प्रलयाः — यों असंख्य सृष्टि-प्रलय · एकस्मिन् महा-सृष्टि-रूपे प्राणे — एक महासृष्टि-रूप प्राण में हैं · सः अपि संविदि सा उपाधौ सः चित्-मात्रे — वह भी संवित् में, वह उपाधि में, वह चिन्मात्र में · चित्-मात्रस्य एव अयं स्पन्दः — यह चिन्मात्र का ही स्पन्द है · यत् अयं काल-उदयः नाम — जिसे कालोदय कहते हैं · ततः एव स्वप्न-संकल्प-आदौ — इसीलिए स्वप्न, संकल्प आदि में · वैचित्र्यम् अस्य न विरोध-आवहम् — इसकी विचित्रता कोई विरोध नहीं लाती · एवं यथा प्राणे काल-उदयः — जैसे प्राण में कालोदय है · तथा अपाने अपि हृदयात् मूल-पीठ-पर्यन्तम् — वैसे अपान में भी, हृदय से मूल-पीठ तक · यथा च हृद्-कण्ठ-तालु-ललाट-रन्ध्र-द्वादशान्तेषु — और जैसे हृदय, कण्ठ, तालु, ललाट, रन्ध्र और द्वादशान्त में · ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ईश-सदाशिव-अनाश्रित-आख्यं कारण-षट्कम् — ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश, सदाशिव और अनाश्रित नामक छह कारण हैं · तथा एव अपाने अपि — वैसे ही अपान में भी · हृद्-कन्द-

आनन्द-संकोच-विकास-द्वादशान्तेषु – हृदय, कन्द, आनन्द, संकोच, विकास और द्वादशान्त में · **बाल्य-यौवन-वार्धक-निधन-पुनर्भव-मुक्ति-अधिपतयः एते** – ये बाल्य, यौवन, वार्धक्य, मृत्यु, पुनर्जन्म और मुक्ति के अधिपति हैं

अथ समाने कालोदयः ।

समानो हार्दीषु दशसु नाडीषु संचरन् समस्ते देहे साम्येन रसादीन् वाहयति ।

तत्र दिगष्टके संचरन् तद्दिक्पतिचेष्टाम् इव प्रमातुः अनुकारयति ।

ऊर्ध्वाधस्तु संचरन् तिसृषु नाडीषु गतागतं करोति ।

तत्र विषुवद्दिने बाह्ये प्रभातकाले सपादां घटिकां मध्यमार्गे वहति ।

ततो नवशतानि प्राणविक्षेपाणाम्, इति गणनया बहिः सार्धघटिकाद्वयं वामे पृ. ११४

दक्षिणे वामे दक्षिणे वामे इति पञ्च संक्रान्तयः ।

ततः संक्रान्तिपञ्चके वृत्ते पादोनासु चतुर्दशसु घटिकासु अतिक्रान्तासु दक्षिणं शारदं विषुवन्मध्याह्ने नव प्राणशतानि ।

ततोऽपि दक्षिणे वामे दक्षिणे वामे दक्षिणे इति संक्रान्तिपञ्चकं, प्रत्येकं नवशतानि इत्येवं रात्रावपि, इति ।

अब समान में कालोदय। समान हृदय की दस नाड़ियों में चलता हुआ पूरे देह में रस आदि को समान रूप से बहाता है। आठ दिशाओं में चलता हुआ वह प्रमाता से मानो उस दिशा के स्वामी की चेष्टा करवाता है; ऊपर-नीचे चलता हुआ तीन नाड़ियों में आना-जाना करता है। बाहरी विषुवत् दिन में, प्रभात के समय, वह सवा घटिका मध्य मार्ग में बहता है। फिर नौ सौ प्राण-गतियों की गिनती से बाहर ढाई घटिका — बाएँ, दाएँ, बाएँ, दाएँ, बाएँ — पाँच संक्रान्तियाँ। फिर पाँच संक्रान्तियाँ पूरी होने पर, पौने चौदह घटिका बीत जाने पर, दक्षिण, शारद विषुवत् मध्याह्न में — नौ सौ प्राण। फिर दाएँ, बाएँ, दाएँ, बाएँ, दाएँ — पाँच संक्रान्तियाँ, हर एक में नौ सौ; और रात में भी ऐसे ही।

पदपाठ अथ समाने काल-उदयः — अब समान में कालोदय · समानः हार्दीषु दशसु नाडीषु संचरन् — समान, हृदय की दस नाड़ियों में चलता हुआ · समस्ते देहे साम्येन रस-आदीन् वाहयति — पूरे देह में रस

आदि को समान रूप से बहाता है · **तत्र दिक्-अष्टके संचरन्** — उसमें आठ दिशाओं में चलता हुआ · **तत्-दिक्-पति-चेष्टाम् इव प्रमातुः अनुकारयति** — प्रमाता से मानो उस दिशा के स्वामी की चेष्टा करवाता है · **ऊर्ध्व-अधः तु संचरन् तिसृषु नाडीषु गत-आगतं करोति** — ऊपर-नीचे चलता हुआ तीन नाड़ियों में आना-जाना करता है · **तत्र विषुवत्-दिने बाह्ये प्रभात-काले** — बाहरी विषुवत् दिन में, प्रभात के समय · **स-पादां घटिकां मध्य-मार्गे वहति** — सवा घटिका मध्य मार्ग में बहता है · **ततः नव-शतानि प्राण-विक्षेपाणाम् इति गणनया** — फिर नौ सौ प्राण-गतियों की गिनती से · **बहिः सार्ध-घटिका-द्वयम्** — बाहर ढाई घटिका · **वामे दक्षिणे वामे दक्षिणे वामे इति पञ्च संक्रान्तयः** — बाएँ, दाएँ, बाएँ, दाएँ, बाएँ — पाँच संक्रान्तियाँ · **ततः संक्रान्ति-पञ्चके वृत्ते** — फिर पाँच संक्रान्तियाँ पूरी होने पर · **पाद-ऊनासु चतुर्दशसु घटिकासु अतिक्रान्तासु** — पौने चौदह घटिका बीत जाने पर · **दक्षिणं शारदं विषुवत् मध्याह्ने नव प्राण-शतानि** — दक्षिण, शारद विषुवत् मध्याह्न में — नौ सौ प्राण · **ततः अपि दक्षिणे वामे दक्षिणे वामे दक्षिणे इति संक्रान्ति-पञ्चकम्** — फिर दाएँ, बाएँ, दाएँ, बाएँ, दाएँ — पाँच संक्रान्तियाँ · **प्रत्येकं नव-शतानि इति एवं रात्रौ अपि इति** — हर एक में नौ सौ — और रात में भी ऐसे ही

एवं विषुवद्दिवसे तद्रात्रौ च द्वादश द्वादश संक्रान्तयः ।
ततो दिनवृद्धिक्षयेषु संक्रान्तिवृद्धिक्षयः ।
एवम् एकस्मिन् समानमरुति वर्षद्वयं श्वासप्रश्वासयोगाभावात् ।
अत्रापि द्वादशाब्दोदयादि पूर्ववत् । १८.१५
उदाने तु द्वादशान्तावधिश्चारः स्पन्दमात्रात्मनः कालस्य ।
अत्रापि पूर्ववत् विधिः ।
व्याने तु व्यापकत्वात् अक्रमेऽपि सूक्ष्मोच्छलत्तायोगेन कालोदयः ।

यों विषुवत् के दिन और उसकी रात में बारह-बारह संक्रान्तियाँ होती हैं। फिर दिन के बढ़ने-घटने पर संक्रान्तियाँ बढ़ती-घटती हैं। यों एक समान-वायु में दो वर्ष होते हैं, क्योंकि उसमें श्वास-प्रश्वास का जोड़ा नहीं। यहाँ भी बारह वर्ष आदि का उदय पहले की तरह है। उदान में स्पन्दमात्र-रूप काल की गति द्वादशान्त तक है; यहाँ भी विधि पहले की तरह। व्यान में, व्यापक होने से अक्रम होने पर भी, सूक्ष्म उछाल के योग से कालोदय होता है।

पदपाठ एवं विषुवत्-दिवसे तत्-रात्रौ च — यों विषुवत् के दिन और उसकी रात में · द्वादश द्वादश संक्रान्तयः — बारह-बारह संक्रान्तियाँ होती हैं · ततः दिन-वृद्धि-क्षयेषु संक्रान्ति-वृद्धि-क्षयः — फिर दिन के बढ़ने-घटने पर संक्रान्तियाँ बढ़ती-घटती हैं · एवम् एकस्मिन् समान-मरुति वर्ष-द्वयम् — यों एक समान-वायु में दो वर्ष · श्वास-प्रश्वास-योग-अभावात् — क्योंकि उसमें श्वास-प्रश्वास का जोड़ा नहीं · अत्र अपि द्वादश-अब्द-उदय-आदि पूर्ववत् — यहाँ भी बारह वर्ष आदि का उदय पहले की तरह · उदाने तु द्वादशान्त-अवधिः चारः — उदान में गति द्वादशान्त तक है · स्पन्द-मात्र-आत्मनः कालस्य — स्पन्दमात्र-रूप काल की · अत्र अपि पूर्ववत् विधिः — यहाँ भी विधि पहले की तरह · व्याने तु व्यापकत्वात् अक्रमे अपि — व्यान में, व्यापक होने से अक्रम होने पर भी · सूक्ष्म-उच्छलत्ता-योगेन काल-उदयः — सूक्ष्म उछाल के योग से कालोदय होता है

अथ वर्णोदयः ।

तत्र अर्धप्रहरे अर्धप्रहरे वर्गोदयो विषुवति समः, वर्णस्य वर्णस्य द्वे शते षोडशाधिके प्राणानाम्, बहिः षट्त्रिंशत् चषकाणि इति उदयः, अयम् १८.१६

अयत्नजो वर्णोदयः ।

यत्नजस्तु मन्त्रोदयः अरघट्टघटीयन्त्रवाहनवत् एकानुसंधिबलात् चित्रं मन्त्रोदयं दिवानिशम् अनुसंदधत् मन्त्रदेवतया सह तादात्म्यम् एति ।

अब वर्णों का उदय। विषुवत् में हर आधे प्रहर में एक वर्ग का समान उदय होता है; हर वर्ण के दो सौ सोलह प्राण, और बाहर छत्तीस चषक का उदय। यह बिना यत्न का वर्णोदय है। पर मन्त्रोदय यत्न से होता है: रहट की घड़ियों के चलने की तरह, एक अनुसन्धान के बल से, विचित्र मन्त्रोदय को दिन-रात बनाए रखता हुआ साधक मन्त्र-देवता के साथ एक हो जाता है।

पदपाठ अथ वर्ण-उदयः — अब वर्णों का उदय · तत्र अर्ध-प्रहरे अर्ध-प्रहरे वर्ग-उदयः विषुवति समः — विषुवत् में हर आधे प्रहर में एक वर्ग का समान उदय · वर्णस्य वर्णस्य द्वे शते षोडश-अधिके प्राणानाम् — हर वर्ण के दो सौ सोलह प्राण · बहिः षट्त्रिंशत् चषकाणि इति उदयः — बाहर छत्तीस चषक का उदय · अयम् अयत्न-जः वर्ण-उदयः — यह बिना यत्न का वर्णोदय है · यत्न-जः तु मन्त्र-उदयः — पर मन्त्रोदय यत्न से होता है · अरघट्ट-घटी-यन्त्र-वाहन-वत् — रहट की घड़ियों के चलने की तरह · एक-अनुसंधि-बलात् — एक अनुसन्धान के बल से · चित्रं मन्त्र-उदयं दिवा-निशम् अनुसंदधत् — विचित्र मन्त्रोदय को दिन-रात बनाए रखता हुआ · मन्त्र-देवतया सह तादात्म्यम् एति — मन्त्र-देवता के साथ एक हो जाता है

तत्र सदोदिते प्राणचारसंख्ययैव उदयसंख्या व्याख्याता, तद्द्विगुणिते तदर्धम् इत्यादिक्रमेण अष्टोत्तरशते चक्रे द्विशत उदयः, इति क्रमेण स्थूलसूक्ष्मे चारस्वरूपे विश्रान्तस्य, प्राणचारे क्षीणे, कालग्रासे वृत्ते संपूर्णम् एकमेवेदं संवेदनं चित्रशक्तिनिर्भरं भासते । १८.१७

सदा उदित मन्त्र में उदय की संख्या प्राण-गति की संख्या से ही समझाई गई है: उसके दुगुने होने पर उसका आधा, इस क्रम से, एक सौ आठ के चक्र में दो सौ उदय होते हैं। यों क्रम से स्थूल और फिर सूक्ष्म गति के स्वरूप में विश्रान्त हुए साधक को, प्राण की गति क्षीण होने पर, काल का ग्रास हो जाने पर, यह एक ही पूर्ण संवेदन विचित्र शक्तियों से भरा हुआ चमकता है।

पदपाठ तत्र सदा-उदिते — उसमें सदा उदित मन्त्र में · प्राण-चार-संख्यया एव उदय-संख्या व्याख्याता — उदय की संख्या प्राण-गति की संख्या से ही समझाई गई · तत्-द्विगुणिते तत्-अर्धम् इति-आदि-क्रमेण — उसके दुगुने होने पर उसका आधा — इस क्रम से · अष्ट-उत्तर-शते चक्रे द्विशतः उदयः — एक सौ आठ के चक्र में दो सौ उदय · इति क्रमेण स्थूल-सूक्ष्मे चार-स्वरूपे विश्रान्तस्य — यों क्रम से स्थूल और सूक्ष्म गति के स्वरूप में विश्रान्त हुए साधक को · प्राण-चारे क्षीणे — प्राण की गति क्षीण होने पर · काल-ग्रासे वृत्ते — काल का ग्रास हो जाने पर · संपूर्णम् एकम् एव इदं संवेदनम् — यह एक ही पूर्ण संवेदन · चित्र-शक्ति-निर्भरं भासते — विचित्र शक्तियों से भरा हुआ चमकता है

कालभेद एव संवेदनभेदकः न वेद्यभेदः शिखरस्थज्ञानवत्, ज्ञानस्य यावान् अवस्थितिकालः स एव क्षणः, प्राणोदये च एकस्मिन् एकमेव ज्ञानम्, अवश्यं चैतत्,—अन्यथा विकल्पज्ञानम् एकं न किंचित् स्यात्—

क्रमिकशब्दारूषितत्वात् मात्राया अपि क्रमिकत्वात् ।

यदाह 'तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्' इति ।

तस्मात् स्पन्दान्तरं यावत् न उदितं तावत् एकमेव ज्ञानं । १८.१८

काल का भेद ही संवेदन को बाँटता है, वेद्य का भेद नहीं — जैसे शिखर पर खड़े व्यक्ति का ज्ञान। ज्ञान जितनी देर टिकता है, वही क्षण है, और एक प्राणोदय में एक ही ज्ञान होता है। यह अवश्य है; नहीं तो कोई विकल्प-ज्ञान एक हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह क्रम से आने वाले शब्दों से रँगा है, और मात्रा भी क्रमिक है — जैसा कहा है, "उसका आरम्भ का आधा ह्रस्व उदात्त है"। इसलिए जब तक दूसरा स्पन्द नहीं उठा, तब तक एक ही ज्ञान है।

पदपाठ काल-भेदः एव संवेदन-भेदकः — काल का भेद ही संवेदन को बाँटता है · न वेद्य-भेदः — वेद्य का भेद नहीं · शिखर-स्थ-ज्ञान-वत् — जैसे शिखर पर खड़े व्यक्ति का ज्ञान · ज्ञानस्य यावान् अवस्थिति-कालः सः एव क्षणः — ज्ञान जितनी देर टिकता है, वही क्षण है · प्राण-उदये च एकस्मिन् एकम् एव ज्ञानम् — और एक प्राणोदय में एक ही ज्ञान होता है · अवश्यं च एतत् — और यह अवश्य है · अन्यथा विकल्प-ज्ञानम् एकं न किंचित् स्यात् — नहीं तो कोई विकल्प-ज्ञान एक हो ही नहीं सकता · क्रमिक-शब्द-आरूषितत्वात् — क्योंकि वह क्रम से आने वाले शब्दों से रँगा है · मात्रायाः अपि क्रमिकत्वात् — और मात्रा भी क्रमिक है · यत् आह — जैसा कहा है · तस्य आदितः उदात्तम् अर्ध-ह्रस्वम् इति — "उसका आरम्भ का आधा ह्रस्व उदात्त है" · तस्मात् स्पन्द-अन्तरं यावत् न उदितम् — इसलिए जब तक दूसरा स्पन्द नहीं उठा · तावत् एकम् एव ज्ञानम् — तब तक एक ही ज्ञान है

अत एव एकाशीतिपदस्मरणसमये विविधधर्मानुप्रवेशमुखेन एक एव असौ परमेश्वरविषयो विकल्पः कालग्रासेन अविकल्पात्मा एव संपद्यते इति । एवम् अखिलं कालाध्वानं प्राणोदय एव पश्यन्, सृष्टिसंहारांश्च विचित्रान् निःसंख्यान् तत्रैव आकलयन्, आत्मन एव पारमेश्वर्यं प्रत्यभिजानन् मुक्त एव भवति इति । श्लो.१९

इसीलिए इक्यासी पदों के स्मरण के समय परमेश्वर-विषयक वह एक ही विकल्प — विविध धर्मों में प्रवेश के द्वारा — काल के ग्रास से निर्विकल्प-रूप ही हो जाता है। यों पूरे कालाध्वा को प्राणोदय में ही देखता हुआ, विचित्र असंख्य सृष्टि-संहारों को वहीं गिनता हुआ, और अपने ही परमेश्वरत्व को पहचानता हुआ मनुष्य मुक्त ही हो जाता है।

पदपाठ अतः एव एकाशीति-पद-स्मरण-समये — इसीलिए इक्यासी पदों के स्मरण के समय · विविध-धर्म-अनुप्रवेश-मुखेन — विविध धर्मों में प्रवेश के द्वारा · एकः एव असौ परमेश्वर-विषयः विकल्पः — परमेश्वर-विषयक वह एक ही विकल्प · काल-ग्रासेन अविकल्प-आत्मा एव संपद्यते इति — काल के ग्रास से निर्विकल्प-रूप ही हो जाता है · एवम् अखिलं काल-अध्वानं प्राण-उदये एव पश्यन् — यों पूरे कालाध्वा को प्राणोदय में ही देखता हुआ · सृष्टि-संहारान् च विचित्रान् निःसंख्यान् तत्र एव आकलयन् — और विचित्र असंख्य सृष्टि-संहारों को वहीं गिनता हुआ · आत्मनः एव पारमेश्वर्यं प्रत्यभिजानन् — अपने ही परमेश्वरत्व को पहचानता हुआ · मुक्तः एव भवति इति — मुक्त ही हो जाता है

संविद्रूपस्यात्मनः प्राणशक्तिं
पश्यन्नूपं तत्रगं चातिकालम् ।
साकं सृष्टिस्थेमसंहारचक्रै-
र्नित्योद्युक्तो भैरवीभावमेति ॥ १८

संवित्-रूप आत्मा की प्राण-शक्ति को, और उसमें रहने वाले काल से परे रूप को, सृष्टि, स्थिति और संहार के चक्रों के साथ देखता हुआ — जो इसमें सदा उद्यत है, वह भैरव-भाव को पाता है।

पदपाठ संवित्-रूपस्य — संवित्-रूप · आत्मनः — आत्मा की · प्राण-शक्तिम् — प्राण-शक्ति को · पश्यन् — देखता हुआ · रूपम् — रूप को · तत्र-गम् — जो उसमें है · च — और · अति-कालम् — काल से परे · साकम् — साथ · सृष्टि-स्थेम-संहार-चक्रैः — सृष्टि, स्थिति और संहार के चक्रों के · नित्य-उद्युक्तः — सदा उद्यत · भैरवी-भावम् — भैरव-भाव को · एति — पाता है

सअल पआस रूउ संवेअण,
फन्दतरङ्गकलण तहु पाणुर ।
पाणब्भन्तरम्मि परिणिट्ठिउ,
सअलउ कालपसरु परिआणु ॥ १८.२०

संवेदन सकल प्रकाश-रूप है; उसके स्पन्द की तरंगों की गिनती उसका प्राण है। सारे काल के प्रसार को प्राण के भीतर पूरी तरह टिका हुआ जान लो।

पदपाठ सअल पआस रूउ संवेअण — सकल प्रकाश-रूप संवेदन · फन्दतरङ्गकलण तहु पाणुर — उसके स्पन्द की तरंगों की गिनती उसका प्राण है · पाणब्भन्तरम्मि परिणिट्ठिउ — प्राण के भीतर पूरी तरह टिका हुआ · सअलउ कालपसरु परिआणु — सारे काल के प्रसार को जान लो

जह उल्लसइ जह विण्णिरुज्झइ,
पवनसत्ति तह एहु महेसरु ।
सिट्ठिपलअं दसइ ज णिमज्जइ,
सो अत्ता णउ चित्तहसाअरु ॥ १८.२१

जैसे पवन-शक्ति उछलती है और जैसे लौटती है, वैसा ही यह महेश्वर है: वह सृष्टि और प्रलय दिखाकर डूब जाता है। वह आत्मा नित्य चित्-सागर है।

पदपाठ **जह उल्लसइ जह विण्णिरुज्झइ** — जैसे उछलती है और जैसे लौटती है · **पवनसत्ति तह एहु महेसरु** — पवन-शक्ति — वैसा ही यह महेश्वर है · **सिट्ठिपलअं दसइ ज णिमज्जइ** — जो सृष्टि और प्रलय दिखाकर डूब जाता है · **सो अत्ता णउ चित्तहसाअरु** — वह आत्मा नित्य चित्-सागर है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे कालाध्वप्रकाशनं नाम षष्ठमाह्निकम् ॥ ६ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में कालाध्वप्रकाशन नामक छठा आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

सप्तममाह्निकम्

देशाध्वप्रकाशनम्

सातवाँ आह्निक काल से देश की ओर मुड़ता है। मूर्तियों की विचित्रता दिखाने वाली शक्ति से उत्पन्न पूरा देशाध्वा संवित् में विश्रान्त है, और संवित् के द्वारा वह शून्य, बुद्धि, प्राण, नाड़ीचक्रों, बाहरी शरीर, और अन्त में लिङ्ग, स्थण्डिल या प्रतिमा में बिछा है। साधक पूरे अध्वा को देह में, देह को प्राण में, प्राण को बुद्धि में, उसे शून्य में और उसे संवित् में गलाकर निर्भर पूर्ण संवित् बन जाता है — पर तभी जब वह छत्तीस तत्त्वों का स्वरूप जानता हो; नहीं तो वह वेद्य के किसी अंश को, माया के भीतर अधिकार रखने वाले किसी विष्णु या ब्रह्मा को, परम मान बैठेगा। इसलिए प्रक्रिया का ज्ञान अवश्य चाहिए। पृथिवी सौ करोड़ योजन फैली है, ब्रह्माण्ड का गोला, जिसके भीतर कालाग्नि, नरक, पाताल, पृथिवी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक हैं, और बाहर सौ रुद्र; और ब्रह्माण्ड असंख्य हैं। जल पृथिवी से दस गुना है, और अहंकार तक हर तत्त्व पिछले से दस गुना; बुद्धि अहंकार से सौ गुनी, प्रकृति उससे हज़ार गुनी — यह प्रकृति का अण्ड है। पुरुष, नियति, राग, अशुद्धविद्या, काल और कला दस हज़ार और लाख गुने बढ़ते जाते हैं; माया कला से करोड़ गुनी — यह माया का अण्ड है। शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव और शक्ति आगे बढ़ते हैं, जब तक कि शक्ति पूरे अध्वा को भीतर-बाहर व्याप कर व्यापिनी होती है — यह शक्ति का अण्ड है। हर तत्त्व नीचे वाले को व्यापता है, और शिव, सब अध्वाओं से परे और सबको व्यापने वाला, अप्रमेय है। इन तत्त्वों के बीच के भुवनों के स्वामी यहाँ पृथिवी पर तीर्थों के रूप में स्थित हैं, और वे मरने वालों को दीक्षा के क्रम से ऊपर-ऊपर ले जाते हैं। फिर श्लोक भुवनों को गिनाते हैं: पृथिवी में सोलह पुर, जल में प्रत्यात्मक आठ और गुह्य आठ, वायु में अतिगुह्य आठ, आकाश में पवित्र आठ, अहंकार में स्थाणु के आठ, बुद्धि में आठ देवयोनियाँ, प्रकृति में योग के आठ, पुरुष में ग्यारह रुद्र, कञ्चुकों में दो-दो भुवन, माया की रात में तीन, और आगे शुद्धविद्या, ईश्वर और सदाशिव तक — कुल एक सौ अठारह। इस पूरे अध्वा को देह, प्राण, बुद्धि, शून्य और संवित् में देखता हुआ मनुष्य पूर्णता से भैरव हो जाता है।

— अथ देशाध्वा —

तत्र समस्त एव अयं मूर्तिवैचित्र्याभासनशक्तिजो देशाध्वा संविदि विश्रान्तः, तद्द्वारेण शून्ये बुद्धौ प्राणे नाडीचक्रानुचक्रेषु बहिः शरीरे यावल्लिङ्गस्थण्डिलप्रतिमादौ समस्तोऽध्वा परिनिष्ठितः, तं समस्तम् अध्वानं देहे विलाप्य, देहं च प्राणे, तं धियि, तां शून्ये, तत्संवेदने, निर्भरपरिपूर्णसंवित् संपद्यते षट्त्रिंशत्तत्त्वस्वरूपज्ञः, तदुत्तीर्णां संविदं परमशिवरूपां पश्यन् १९.१ विश्वमयीमपि संवेदयेत, अपरथा वेद्यभागमेव कंचित् परत्वेन गृह्णीयात् मायागर्भाधिकारिणं विष्णुब्रह्मादिकं वा, तस्मात् अवश्यं प्रक्रियाज्ञानपरेण भवितव्यम् ।

तदुक्तं 'न प्रक्रियापरं ज्ञानम्' इति ।

अब यह पूरा देशाध्वा, जो मूर्तियों की विचित्रता दिखाने वाली शक्ति से उत्पन्न है, संवित् में विश्रान्त है; उसके द्वारा पूरा अध्वा शून्य, बुद्धि, प्राण, नाड़ी-चक्रों और उपचक्रों, बाहरी शरीर, और लिङ्ग, स्थण्डिल, प्रतिमा आदि तक स्थापित है। उस पूरे अध्वा को देह में, देह को प्राण में, उसे बुद्धि में, उसे शून्य में, और उसे संवेदन में गलाकर साधक निर्भर पूर्ण संवित् बन जाता है — यदि वह छत्तीस तत्त्वों का स्वरूप जानता हो। उनसे परे परमशिव-रूप संवित् को देखता हुआ वह उसे विश्वमयी भी अनुभव करे; नहीं तो वह वेद्य के किसी अंश को ही — माया के भीतर अधिकार रखने वाले विष्णु, ब्रह्मा आदि को — परम मान बैठेगा। इसलिए प्रक्रिया के ज्ञान में अवश्य लगना चाहिए। जैसा कहा है, "प्रक्रिया से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं"।

पदपाठ तत्र समस्तः एव अयं देश-अध्वा — अब यह पूरा देशाध्वा · मूर्ति-वैचित्र्य-आभासन-शक्ति-जः — मूर्तियों की विचित्रता दिखाने वाली शक्ति से उत्पन्न · संविदि विश्रान्तः — संवित् में विश्रान्त है · तत्-द्वारेण शून्ये बुद्धौ प्राणे नाडी-चक्र-अनुचक्रेषु — उसके द्वारा शून्य, बुद्धि, प्राण, नाड़ी-चक्रों और उपचक्रों में · बहिः शरीरे यावत् लिङ्ग-स्थण्डिल-प्रतिमा-आदौ — बाहर शरीर में, लिङ्ग, स्थण्डिल, प्रतिमा आदि तक · समस्तः

अध्वा परिनिष्ठितः — पूरा अध्वा स्थापित है · **तं समस्तम् अध्वानं देहे विलाप्य** — उस पूरे अध्वा को देह में गलाकर · **देहं च प्राणे तं धियि तां शून्ये तत्-संवेदने** — देह को प्राण में, उसे बुद्धि में, उसे शून्य में, उसे संवेदन में · **निर्भर-परिपूर्ण-संवित् संपद्यते** — निर्भर पूर्ण संवित् बन जाता है · **षट्त्रिंशत्-तत्त्व-स्वरूप-ज्ञः** — छत्तीस तत्त्वों का स्वरूप जानने वाला · **तत्-उत्तीर्णां संविदं परम-शिव-रूपां पश्यन्** — उनसे परे परमशिव-रूप संवित् को देखता हुआ · **विश्व-मयीम् अपि संवेदयेत** — उसे विश्वमयी भी अनुभव करे · **अपरथा वेद्य-भागम् एव कंचित् परत्वेन गृह्णीयात्** — नहीं तो वह वेद्य के किसी अंश को ही परम मान बैठेगा · **माया-गर्भ-अधिकारिणं विष्णु-ब्रह्म-आदिकं वा** — या माया के भीतर अधिकार रखने वाले विष्णु, ब्रह्मा आदि को · **तस्मात् अवश्यं प्रक्रिया-ज्ञान-परेण भवितव्यम्** — इसलिए प्रक्रिया के ज्ञान में अवश्य लगना चाहिए · **तत् उक्तम्** — जैसा कहा है · **न प्रक्रिया-परं ज्ञानम् इति** — "प्रक्रिया से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं"

तत्र पृथिवीतत्त्वं शतकोटिप्रविस्तीर्णं ब्रह्माण्डगोलकरूपम् ।
तस्य अन्तः कालाग्निर्नरकाः पातालानि पृथिवी स्वर्गो यावद्ब्रह्मलोक इति ।
ब्रह्माण्डबाह्ये रुद्राणां शतं ।
न च ब्रह्माण्डानां संख्या विद्यते । १९.२
ततो धरातत्त्वात् दशगुणं जलतत्त्वं ।
तत उत्तरोत्तरं दशगुणम् अहंकारान्तं ।
तद्यथा जलं तेजो वायुर्नभः तन्मात्रपञ्चकाक्षैकादशगर्भोऽहंकारश्चेति ।

पृथिवी-तत्त्व सौ करोड़ फैला है — ब्रह्माण्ड का गोला। उसके भीतर कालाग्नि, नरक, पाताल, पृथिवी, स्वर्ग, ब्रह्मलोक तक हैं। ब्रह्माण्ड के बाहर सौ रुद्र हैं; और ब्रह्माण्डों की कोई संख्या नहीं। फिर पृथिवी-तत्त्व से दस गुना जल-तत्त्व है, और आगे अहंकार तक हर तत्त्व पिछले से दस गुना: अर्थात् जल, तेज, वायु, आकाश, और पाँच तन्मात्राओं और ग्यारह इन्द्रियों को अपने भीतर रखने वाला अहंकार।

पदपाठ तत्र पृथिवी-तत्त्वं शत-कोटि-प्रविस्तीर्णम् — उसमें पृथिवी-तत्त्व सौ करोड़ फैला है · ब्रह्माण्ड-गोलक-रूपम् — ब्रह्माण्ड के गोले के रूप में · तस्य अन्तः काल-अग्निः नरकाः पातालानि — उसके भीतर कालाग्नि, नरक, पाताल · पृथिवी स्वर्गः यावत् ब्रह्म-लोकः इति — पृथिवी, स्वर्ग, ब्रह्मलोक तक · ब्रह्माण्ड-बाह्ये रुद्राणां शतम् — ब्रह्माण्ड के बाहर सौ रुद्र · न च ब्रह्माण्डानां संख्या विद्यते — और ब्रह्माण्डों की कोई संख्या नहीं · ततः धरा-तत्त्वात् दश-गुणं जल-तत्त्वम् — फिर पृथिवी-तत्त्व से दस गुना जल-तत्त्व · ततः उत्तर-उत्तरं दश-गुणम् अहंकार-अन्तम् — और आगे अहंकार तक हर तत्त्व पिछले से दस गुना · तत् यथा जलं तेजः वायुः नभः — अर्थात् जल, तेज, वायु, आकाश · तन्मात्र-पञ्चक-अक्ष-एकादश-गर्भः अहंकारः च इति — और पाँच तन्मात्राओं और ग्यारह इन्द्रियों को अपने भीतर रखने वाला अहंकार

अहंकारात् शतगुणं बुद्धितत्त्वं ।
ततः सहस्रधा प्रकृतितत्त्वं, एतावत्प्रकृत्यण्डम् ।
तच्च ब्रह्माण्डवत् असंख्यम् ।
प्रकृतितत्त्वात् पुरुषतत्त्वं च दशसहस्रधा ।
पुरुषात् नियतिः लक्षधा । १९.३
नियतेरुत्तरोत्तरं दशलक्षधा कलातत्त्वान्तम् ।
तद्यथा नियतिः रागः अशुद्धविद्या कालः कला चेति ।
कलातत्त्वात् कोटिधा माया, एतावत् मायाण्डम् ।

अहंकार से सौ गुना बुद्धि-तत्त्व है; उससे हज़ार गुना प्रकृति-तत्त्व — यहाँ तक प्रकृति का अण्ड है, और वह ब्रह्माण्ड की तरह असंख्य है। प्रकृति-तत्त्व से दस हज़ार गुना पुरुष-तत्त्व; पुरुष से लाख गुनी नियति; और नियति से आगे कला-तत्त्व तक हर एक पिछले से दस लाख गुना — अर्थात् नियति, राग, अशुद्धविद्या, काल और कला। कला-तत्त्व से करोड़ गुनी माया; यहाँ तक माया का अण्ड है।

पदपाठ अहंकारात् शत-गुणं बुद्धि-तत्त्वम् — अहंकार से सौ गुना बुद्धि-तत्त्व · ततः सहस्रधा प्रकृति-तत्त्वम् — उससे हज़ार गुना प्रकृति-तत्त्व · एतावत् प्रकृति-अण्डम् — यहाँ तक प्रकृति का अण्ड है · तत् च ब्रह्माण्ड-वत् असंख्यम् — और वह ब्रह्माण्ड की तरह असंख्य है · प्रकृति-तत्त्वात् पुरुष-तत्त्वं च दश-सहस्रधा — प्रकृति-तत्त्व से दस हज़ार गुना पुरुष-तत्त्व · पुरुषात् नियतिः लक्षधा — पुरुष से लाख गुनी नियति · नियतेः उत्तर-उत्तरं दश-लक्षधा कला-तत्त्व-अन्तम् — नियति से आगे कला-तत्त्व तक हर एक पिछले से दस लाख गुना · तत् यथा नियतिः रागः अशुद्ध-विद्या कालः कला च इति — अर्थात् नियति, राग, अशुद्धविद्या, काल और कला · कला-तत्त्वात् कोटिधा माया — कला-तत्त्व से करोड़ गुनी माया · एतावत् माया-अण्डम् — यहाँ तक माया का अण्ड है

मायातत्त्वात् शुद्धविद्या दशकोटिगुणिता ।
विद्यातत्त्वात् ईश्वरतत्त्वं शतकोटिधा ।
ईश्वरतत्त्वात् सादाख्यं सहस्रकोटिधा । १९.४
सादाख्यात् वृन्दगुणितं शक्तितत्त्वम्, इति शक्त्यण्डम् ।
सा शक्तिर्व्याप्य यतो विश्वमध्वानम् अन्तर्बहिरास्ते तस्मात् व्यापिनी ।

माया-तत्त्व से दस करोड़ गुनी शुद्धविद्या है; विद्या-तत्त्व से सौ करोड़ गुना ईश्वर-तत्त्व; ईश्वर-तत्त्व से हज़ार करोड़ गुना सादाख्य; सादाख्य से वृन्द गुना शक्ति-तत्त्व — यह शक्ति का अण्ड है। क्योंकि वह शक्ति पूरे अध्वा को व्याप कर भीतर-बाहर रहती है, इसलिए वह व्यापिनी है।

पदपाठ माया-तत्त्वात् शुद्ध-विद्या दश-कोटि-गुणिता — माया-तत्त्व से दस करोड़ गुनी शुद्धविद्या · विद्या-तत्त्वात् ईश्वर-तत्त्वं शत-कोटिधा — विद्या-तत्त्व से सौ करोड़ गुना ईश्वर-तत्त्व · ईश्वर-तत्त्वात् सादाख्यं सहस्र-कोटिधा — ईश्वर-तत्त्व से हज़ार करोड़ गुना सादाख्य · सादाख्यात् वृन्द-गुणितं शक्ति-तत्त्वम् — सादाख्य से वृन्द गुना शक्ति-तत्त्व · इति शक्ति-अण्डम् — यह शक्ति का अण्ड है · सा शक्तिः यतः विश्वम् अध्वानं व्याप्य — क्योंकि वह शक्ति पूरे अध्वा को व्याप कर · अन्तः-बहिः आस्ते — भीतर-बाहर रहती है · तस्मात् व्यापिनी — इसलिए वह व्यापिनी है

एवमेतानि उत्तरोत्तरम् आवरणतया वर्तमानानि तत्त्वानि—उत्तरं व्यापकं पूर्वं व्याप्यम् इति स्थित्या वर्तन्ते ।

यावदशेषशक्तितत्त्वान्तोऽध्वा शिवतत्त्वेन व्याप्तः ।

शिवतत्त्वं पुनरप्रमेयं सर्वाध्वोत्तीर्णं सर्वाध्वव्यापकं च ।

एतत्तत्त्वान्तरालवर्तीनि यानि भुवनानि तत्पतय एव अत्र पृथिव्यां स्थिता इति । १९.५

तेषु आयतनेषु ये म्रियन्ते तेषां तत्र तत्र गतिं ते वितरन्ति ।

क्रमाच्च ऊर्ध्वोर्ध्वं प्रेरयन्ति दीक्षाक्रमेण ।

तद्यथा—

यों ये तत्त्व, जो एक के बाद एक आवरण के रूप में हैं, इस नियम से रहते हैं कि बाद वाला व्यापक है और पहले वाला व्याप्य, जब तक कि शक्ति-तत्त्व तक का पूरा अध्वा शिव-तत्त्व से व्याप्त है। पर शिव-तत्त्व अप्रमेय है, सब अध्वाओं से परे और सब अध्वाओं को व्यापने वाला। इन तत्त्वों के बीच जो भुवन हैं, उनके स्वामी यहाँ पृथिवी पर स्थित हैं; जो उन आयतनों में मरते हैं, उन्हें वे अपने-अपने लोक की गति देते हैं, और क्रम से दीक्षा के क्रम द्वारा ऊपर-ऊपर भेजते हैं। जैसे कि —

पदपाठ एवम् एतानि उत्तर-उत्तरम् आवरणतया वर्तमानानि तत्त्वानि — यों ये तत्त्व, जो एक के बाद एक आवरण के रूप में हैं · उत्तरं व्यापकं पूर्वं व्याप्यम् इति स्थित्या वर्तन्ते — इस नियम से रहते हैं कि बाद वाला व्यापक है और पहले वाला व्याप्य · यावत् अशेष-शक्ति-तत्त्व-अन्तः अध्वा — जब तक कि शक्ति-तत्त्व तक का पूरा अध्वा · शिव-तत्त्वेन व्याप्तः — शिव-तत्त्व से व्याप्त है · शिव-तत्त्वं पुनः अप्रमेयम् — पर शिव-तत्त्व अप्रमेय है · सर्व-अध्व-उत्तीर्णं सर्व-अध्व-व्यापकं च — सब अध्वाओं से परे और सब अध्वाओं को व्यापने वाला · एतत्-तत्त्व-अन्तराल-वर्तीनि यानि भुवनानि — इन तत्त्वों के बीच जो भुवन हैं · तत्-पतयः एव अत्र पृथिव्यां स्थिताः इति — उनके स्वामी यहाँ पृथिवी पर स्थित हैं · तेषु आयतनेषु ये म्रियन्ते — जो उन आयतनों में मरते हैं · तेषां तत्र तत्र गतिं ते वितरन्ति — उन्हें वे अपने-अपने लोक की गति देते हैं · क्रमात् च ऊर्ध्व-ऊर्ध्वं प्रेरयन्ति दीक्षा-क्रमेण — और क्रम से दीक्षा के क्रम द्वारा ऊपर-ऊपर भेजते हैं · तत् यथा — जैसे कि

कालाग्निः कूष्माण्डो
नरकेशो हाटकोऽथ भूतलपः ।
ब्रह्मा मुनिलोकेशो
रुद्रः पञ्चाण्डमध्यगतः ॥ १९

कालाग्नि, कूष्माण्ड, नरकों का स्वामी, हाटक, फिर भूतल का पालक, ब्रह्मा, मुनिलोक का स्वामी, और रुद्र — ये अण्ड के भीतर हैं।

पदपाठ काल-अग्निः — कालाग्नि · कूष्माण्डः — कूष्माण्ड · नरक-ईशः — नरकों का स्वामी · हाटकः — हाटक · अथ — फिर · भूतल-पः — भूतल का पालक · ब्रह्मा — ब्रह्मा · मुनि-लोक-ईशः — मुनिलोक का स्वामी · रुद्रः — रुद्र · पञ्च — पाँच · अण्ड-मध्य-गतः — अण्ड के भीतर

अधरेऽनन्तः प्राच्याः
कपालिवह्न्यन्तनिर्ऋतिबालाख्याः ।
लघुनिधिपतिविद्याधिप-
शम्भूर्ध्वान्तं स वीरभद्रपतिः ॥ २०

नीचे अनन्त है; पूर्व से आरम्भ करके कपाली, अग्नि, यम, निर्ऋति और बल नामक, फिर लघु, निधिपति, विद्याधिप और शम्भु, ऊर्ध्व तक — वह वीरभद्र स्वामी।

पदपाठ अधरे — नीचे · अनन्तः — अनन्त · प्राच्याः — पूर्व से आरम्भ करके · कपालि-वह्नि-अन्त-निर्ऋति-बाल-आख्याः — कपाली, अग्नि, यम, निर्ऋति और बल नामक · लघु-निधिपति-विद्याधिप-शम्भु-ऊर्ध्व-अन्तम् — लघु, निधिपति, विद्याधिप, शम्भु, ऊर्ध्व तक · सः — वह · वीरभद्र-पतिः — वीरभद्र स्वामी

इति षोडशपुरमेतत्
पार्थिवमण्डं निवृत्तिकला ।
लकुलीशभारभूति-
र्दिण्ड्याषाढी च पुष्करनिमेषौ ॥ २१

यों सोलह पुरों वाला यह पृथिवी का अण्ड निवृत्ति कला है। लकुलीश, भारभूति, दिण्डी, आषाढी, और पुष्कर और निमेष —

पदपाठ इति — यों · षोडश-पुरम् — सोलह पुरों वाला · एतत् — यह · पार्थिवम् — पृथिवी का · अण्डम् — अण्ड · निवृत्ति-कला — निवृत्ति कला है · लकुलीश-भारभूतिः — लकुलीश, भारभूति · दिण्डी-आषाढी — दिण्डी, आषाढी · च — और · पुष्कर-निमेषौ — पुष्कर और निमेष

प्रभाससुरेशाविति
सलिले प्रत्यात्मकाष्टकं प्रोक्तम् ।
भैरवकेदारमहा-
काला मध्याम्रजल्पाख्याः ॥ २२

प्रभास और सुरेश — यों जल में प्रत्यात्मक आठ कहे गए हैं। भैरव, केदार, महाकाल, और मध्यम, आम्रातक और जल्प नामक,

पदपाठ प्रभास-सुरेशौ — प्रभास और सुरेश · इति — यों · सलिले — जल में · प्रत्यात्मक-अष्टकम् — प्रत्यात्मक आठ · प्रोक्तम् — कहे गए हैं · भैरव-केदार-महाकालाः — भैरव, केदार, महाकाल · मध्य-आम्र-जल्प-आख्याः — मध्यम, आम्रातक और जल्प नामक

श्रीशैलहरिश्चन्द्रा-
विति गुह्याष्टकमिदं महसि ।
भीमेन्द्राट्टाः सविमल-
कनखलनाखलकुरुस्थितिगयाख्याः ॥ २३

श्रीशैल और हरिश्चन्द्र — यों ये गुह्य आठ तेज में हैं। भीम, इन्द्र, अट्टहास, और विमल, कनखल, नाखल, कुरुक्षेत्र और गया नामक —

पदपाठ श्रीशैल-हरिश्चन्द्रौ — श्रीशैल और हरिश्चन्द्र · इति — यों · गुह्य-अष्टकम् — गुह्य आठ · इदम् — ये · महसि — तेज में · भीम-इन्द्र-अट्टाः — भीम, इन्द्र, अट्टहास · स-विमल-कनखल-नाखल-कुरुस्थिति-गया-आख्याः — विमल, कनखल, नाखल, कुरुक्षेत्र और गया नामक सहित

अतिगुह्याष्टकमेतन्-
मरुति सतन्मात्रके साक्षे ।
स्थाणुसुवर्णाख्यौ किल
भद्रो गोकर्णको महालयकः ॥ २४

ये अतिगुह्य आठ हैं, वायु में, उसकी तन्मात्रा और इन्द्रिय सहित। स्थाणु और सुवर्ण नामक, भद्र, गोकर्ण, महालय,

---

पदपाठ अतिगुह्य-अष्टकम् — अतिगुह्य आठ · एतत् — ये · मरुति — वायु में · स-तन्मात्रके — अपनी तन्मात्रा सहित · स-अक्षे — और इन्द्रिय सहित · स्थाणु-सुवर्ण-आख्यौ — स्थाणु और सुवर्ण नामक · किल — निश्चय ही · भद्रः — भद्र · गोकर्णकः — गोकर्ण · महालयकः — महालय

अविमुक्तरुद्रकोटी-
वस्त्रापद इत्यदः पवित्रं खे ।
स्थूलस्थूलेशशङ्कु-
श्रुतिकालाश्चाथ मण्डलभृत् ॥ २५

अविमुक्त, रुद्रकोटि और वस्त्रापद — वह पवित्र समूह आकाश में है। स्थूल, स्थूलेश, शङ्कुश्रुति और काल, फिर मण्डल को धारण करने वाला,

---

पदपाठ अविमुक्त-रुद्रकोटी-वस्त्रापदः — अविमुक्त, रुद्रकोटि, वस्त्रापद · इति — यों · अदः — वह · पवित्रम् — पवित्र समूह · खे — आकाश में · स्थूल-स्थूलेश-शङ्कुश्रुति-कालाः — स्थूल, स्थूलेश, शङ्कुश्रुति, काल · च — और · अथ — फिर · मण्डल-भृत् — मण्डल को धारण करने वाला

माकोटाण्डद्वितय-
च्छगलाण्डाष्टकं त्वहङ्कारे ।
अन्ये त्वहङ्कारान्ता-
स्तन्मात्राणीन्द्रियाणि चेत्याहुः ॥ २६

माकोट, अण्डद्वितय और छगलाण्ड सहित — यह आठ का समूह अहंकार में है। दूसरे तो कहते हैं कि तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ, अहंकार तक, भी वहीं हैं।

पदपाठ माकोट-अण्डद्वितय-छगलाण्ड-अष्टकम् — माकोट, अण्डद्वितय और छगलाण्ड सहित आठ का समूह · तु — पर · अहङ्कारे — अहंकार में · अन्ये — दूसरे · तु — तो · अहङ्कार-अन्ताः — अहंकार तक · तन्मात्राणि — तन्मात्राएँ · इन्द्रियाणि — इन्द्रियाँ · च — और · इति — ऐसा · आहुः — कहते हैं

धियि देवयोनयोऽष्टौ
प्रकृतौ योगाष्टकं किलाकृतप्रभृति ।
इति ससाष्टकभुवना
प्रतिष्ठितिः सलिलतस्तु मूलान्ता ॥ २७

बुद्धि में आठ देवयोनियाँ; प्रकृति में योग के आठ, अकृत से आरम्भ। यों सात अष्टक भुवनों वाली प्रतिष्ठा कला जल से मूल प्रकृति तक है।

पदपाठ धियि — बुद्धि में · देव-योनयः — देवयोनियाँ · अष्टौ — आठ · प्रकृतौ — प्रकृति में · योग-अष्टकम् — योग के आठ · किल — निश्चय ही · अकृत-प्रभृति — अकृत से आरम्भ · इति — यों · स-सप्त-अष्टक-भुवना — सात अष्टक भुवनों वाली · प्रतिष्ठितिः — प्रतिष्ठा कला · सलिलतः — जल से · तु — तो · मूल-अन्ता — मूल प्रकृति तक

नरि वामाद्या रुद्रा
एकादश वित्कलानियतिषु स्यात् ।
प्रत्येकं भुवनद्वय-
मथ काले तत्त्रयं निशायां स्युः ॥ २८

पुरुष में वाम आदि ग्यारह रुद्र हैं; विद्या, कला और नियति में हर एक में दो भुवन; फिर काल में तीन, और रात्रि में हैं —

पदपाठ नरि — पुरुष में · वाम-आद्याः — वाम आदि · रुद्राः — रुद्र · एकादश — ग्यारह · वित्-कला-नियतिषु — विद्या, कला और नियति में · स्यात् — होता है · प्रत्येकम् — हर एक में · भुवन-द्वयम् — दो भुवन · अथ — फिर · काले — काल में · तत् — वह · त्रयम् — तीन · निशायाम् — रात्रि में · स्युः — होते हैं

अष्टावष्टाविंशति-
भुवना विद्या नरान्निशान्तमियम् ।
विद्यायां पञ्च स्यु-
र्विद्येशाष्टकमथैश्वरे तत्त्वे ॥ २९

आठ — यह विद्या कला, अट्ठाईस भुवनों वाली, पुरुष से रात्रि तक है। विद्या में पाँच हैं; फिर ईश्वर-तत्त्व में आठ विद्येश्वर।

पदपाठ अष्टौ — आठ · अष्टाविंशति-भुवना — अट्ठाईस भुवनों वाली · विद्या — विद्या कला · नरात् — पुरुष से · निशा-अन्तम् — रात्रि तक · इयम् — यह · विद्यायाम् — विद्या में · पञ्च — पाँच · स्युः — होते हैं · विद्येश-अष्टकम् — आठ विद्येश्वर · अथ — फिर · ऐश्वरे — ईश्वर के · तत्त्वे — तत्त्व में

सादाख्ये पञ्चकमिति
अष्टादशभुवनिका शान्ता ।
अध्वानमिमं सकलं
देहे प्राणेऽथ धियि महानभसि ॥ ३०

सादाख्य में पाँच — यों शान्ता कला अठारह भुवनों वाली है। इस पूरे अध्वा को देह में, प्राण में, फिर बुद्धि में, महाकाश में,

---

पदपाठ सादाख्ये — सादाख्य में · पञ्चकम् — पाँच · इति — यों · अष्टादश-भुवनिका — अठारह भुवनों वाली · शान्ता — शान्ता कला · अध्वानम् — अध्वा को · इमम् — इस · सकलम् — पूरे · देहे — देह में · प्राणे — प्राण में · अथ — फिर · धियि — बुद्धि में · महा-नभसि — महाकाश में

संविदि च परं पश्यन्-
पूर्णत्वाद्भैरवीभवति ॥ ३१

और संवित् में, उसे परम रूप में देखता हुआ, मनुष्य पूर्णता से भैरव हो जाता है।

पदपाठ संविदि — संवित् में · च — और · परम् — परम रूप में · पश्यन् — देखता हुआ · पूर्णत्वात् — पूर्णता से · भैरवी-भवति — भैरव हो जाता है

परमेसरसासणसुणिरूइउ
सुणिविमअलअद्धाणउ ।
झहुज्झतिसरीरिपवणि
संवेअ णिअपेक्खन्तउ पहुरइ परिउण्णु ॥ ३१.१

परमेश्वर के शासन में भली-भाँति निरूपित इस अत्यन्त निर्मल सकल अध्वा को — बुद्धि में, आकाश में, शरीर में, प्राण में और संवित् में — निरखता हुआ मनुष्य परमेश्वर को, पूर्ण को, देखता है।

पदपाठ परमेसरसासणसुणिरूइउ — परमेश्वर के शासन में भली-भाँति निरूपित · सुणिविमअलअद्धाणउ — इस अत्यन्त निर्मल सकल अध्वा को · झहुज्झतिसरीरिपवणि — बुद्धि में, आकाश में, शरीर में, प्राण में · संवेअ णिअपेक्खन्तउ — और संवित् में — उसे निरखता हुआ · पहुरइ परिउण्णु — परमेश्वर को, पूर्ण को, देखता है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे देशाध्वप्रकाशनं नाम सप्तममाह्निकम् ॥ ७ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में देशाध्वप्रकाशन नामक सातवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

अष्टममाह्निकम्

तत्त्वस्वरूपप्रकाशनम्

यह आह्निक तत्त्वों का मार्ग, अर्थात् सत्ता के स्तर, खोलकर रखता है। भुवनों के पूरे समूह में जो एक महाप्रकाश के रूप में समान रूप से रहता है, वह परमशिव है; जो केवल कुछ भेदों में रहता है, वह तत्त्व है — जैसे पृथिवी कालाग्नि से वीरभद्र तक हर ब्रह्माण्ड में रहती है। तत्त्वों में कार्य-कारण-भाव दो तरह का है। पारमार्थिक वह है जिसमें स्वतन्त्र भगवान् शिव से धरा तक छत्तीस स्तरों के शरीर में स्वयं को दिखाते हैं। कल्पित वह है जो नियति-रूप उनकी इच्छा से बना है — आगे-पीछे का एक तय क्रम; इसीलिए अंकुर बीज से भी, योगी की इच्छा से भी, स्वप्न में भी हो सकता है। सामग्री-वाद भी यही पक्का करता है कि विश्व-शरीर परमेश्वर ही घड़े का असली कर्ता है; कुम्हार उनके बनाए भावों में एक और भाव है। फिर कल्पित क्रम अपने तन्त्र की दृष्टि से दिखाया जाता है। पाँच शक्तियों से भरे परमेश्वर शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और विद्या — इन पाँच तत्त्वों में स्थित हैं, जिनके अपने तत्त्वेश्वर और पाँच प्रकार के प्राणी हैं: यह शुद्ध अध्वा है। उसके नीचे अघोरेश, जिन्हें अनन्त भी कहते हैं, उन अणुओं के लिए अशुद्ध अध्वा रचते हैं जिनकी भोग-लालसा जग गई है। लालसा मल नहीं है; मल परमेश्वर की अपने को ढकने की इच्छा है, और वही कर्म को फल देने योग्य बनाता है। अणु चित् और अचित् का आभास है; उसका उपादान-कारण, जड़ और व्यापक माया-तत्त्व, परमेश्वर की माया-शक्ति से अलग है। कला से धरा तक हर तत्त्व के ये ही दो रूप हैं — वास्तविक और कल्पित; प्रमाण यह है कि जो संकल्प में चमकता है वह बाहर भी है। माया से कला निकलती है, जो सोए हुए अणु को थोड़ा-सा कर्तृत्व देती है; कला से अशुद्ध विद्या, राग, काल और नियति; माया सहित ये छह कञ्चुक हैं, और उनमें लिपटी संवित् पशु कहलाती है। कला ही भोग्य-सामान्य प्रकृति को भी अलग करती है, जिसकी क्षुब्ध अवस्था गुण-तत्त्व है — सत्त्व, रजस्, तमस्। गुणों से बुद्धि, फिर अहंकार, जो बनाई हुई चीज़ है; सात्त्विक अहंकार से मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, तन्मात्र-भाग से बढ़े उसी अहंकार से पाँच कर्मेन्द्रियाँ, तामस अहंकार से पाँच तन्मात्र, और उनके क्षोभ से धरा तक पाँच भूत, जिनमें धरा केवल गुणों का ढेर है। इस पूरी शृंखला में ऊपर का तत्त्व नीचे के तत्त्व में

व्याप्त है, शक्ति-तत्त्व तक। श्लोक सार देता है: भूत, तन्मात्र, इन्द्रियाँ, मूल प्रकृति, कञ्चुकों से युक्त पुरुष और शक्ति तक के शुद्ध स्तर — यह सब चित्-आकाश के समुद्र में लहरों का फैलाव है।

— अथ तत्त्वाध्वा निरूप्यते —

यदिदं विभवात्मकं भुवनजातमुक्तं गर्भीकृतानन्तविचित्रभोक्तृभोग्यं, तत्र यदनुगतं—महाप्रकाशरूपं तत् महासामान्यकल्पं परमशिवरूपम् । यत्तु कतिपयकतिपयभेदानुगतं रूपं तत्तत्त्वं, यथा पृथिवी नाम धृतिकाठिन्यस्थौल्यादिरूपा कालाग्निप्रभृति- ३२.१
वीरभद्रान्तभुवनेशाधिष्ठितसमस्तब्रह्माण्डानुगता । तत्र एषां तत्त्वानां कार्यकारणभावो दर्श्यते, स च द्विविधः—पारमार्थिकः सृष्टश्च ।

यह जो वैभव-रूप भुवन-समूह कहा गया, जिसके भीतर अनन्त तरह-तरह के भोक्ता और भोग्य समाए हैं — उसमें जो महाप्रकाश-रूप से सब में रहता है, वह महासामान्य जैसा परमशिव-रूप है। पर जो रूप केवल कुछ-कुछ भेदों में रहता है, वह तत्त्व है — जैसे धारण, कठोरता, स्थूलता आदि रूप वाली पृथिवी, जो कालाग्नि से वीरभद्र तक के भुवनेशों द्वारा शासित सब ब्रह्माण्डों में रहती है। यहाँ इन तत्त्वों का कार्य-कारण-भाव दिखाया जाता है। वह दो तरह का है: पारमार्थिक और रचा हुआ।

पदपाठ यत् इदं विभव-आत्मकं भुवन-जातम् उक्तम् — यह जो वैभव-रूप भुवन-समूह कहा गया · गर्भीकृत-अनन्त-विचित्र-भोक्तृ-भोग्यम् — जिसके भीतर अनन्त तरह-तरह के भोक्ता और भोग्य समाए हैं · तत्र यत् अनुगतं महा-प्रकाश-रूपम् — उसमें जो महाप्रकाश-रूप से सब में रहता है · तत् महा-सामान्य-कल्पं परम-शिव-रूपम् — वह महासामान्य जैसा परमशिव-रूप है · यत् तु कतिपय-कतिपय-भेद-अनुगतं रूपम् — पर जो रूप केवल कुछ-कुछ भेदों में रहता है · तत् तत्त्वम् — वह तत्त्व है · यथा पृथिवी नाम धृति-काठिन्य-स्थौल्य-आदि-रूपा — जैसे धारण, कठोरता, स्थूलता आदि रूप वाली पृथिवी · कालाग्नि-प्रभृति-वीरभद्र-अन्त-भुवनेश-अधिष्ठित-समस्त-ब्रह्माण्ड-अनुगता — कालाग्नि से वीरभद्र तक के भुवनेशों द्वारा शासित सब ब्रह्माण्डों में रहती है · तत्र एषां तत्त्वानां कार्य-कारण-भावः दर्श्यते — यहाँ इन तत्त्वों का कार्य-कारण-भाव दिखाया जाता है · सः च द्विविधः — और वह दो तरह का है · पारमार्थिकः सृष्टः च — पारमार्थिक और रचा हुआ

तत्र पारमार्थिक एतावान् कार्यकारणभावो—यदुत कर्तृस्वभावस्य स्वतन्त्रस्य भगवत एवं-विधेन शिवादिधरान्तेन वपुषा स्वरूपभिन्नेन स्वरूपविश्रान्तेन च प्रथनम् ।

कल्पितस्तु कार्यकारणभावः परमेशेच्छया नियतिप्राणया निर्मितः, स च यावति यदा नियतपौर्वापर्यावभासनं सत्यपि अधिके स्वरूपानुगतम् एतावत्येव, ३२.२

तेन योगीच्छातोऽपि अङ्कुरो बीजादपि, स्वप्नादौ घटादेरपीति ।

तत्रापि च परमेश्वरस्य कर्तृत्वानपाय इति अकल्पितोऽपि असौ पारमार्थिकः स्थित एव ।

उनमें पारमार्थिक कार्य-कारण-भाव बस इतना है: कर्ता-स्वभाव वाले स्वतन्त्र भगवान् का शिव से धरा तक के ऐसे शरीर से प्रकट होना, जो उनके स्वरूप से भिन्न है और स्वरूप में ही विश्रान्त भी है। पर कल्पित कार्य-कारण-भाव, नियति जिसका प्राण है, उस परमेश्वर की इच्छा से बना है। वह जितने में और जब आगे-पीछे का नियत क्रम दिखता है, उतना ही है; और अधिक होने पर भी अपने स्वरूप में बस उतने में ही रहता है। इसलिए अंकुर योगी की इच्छा से भी होता है और बीज से भी, और स्वप्न आदि में घड़ा आदि भी बनते हैं। वहाँ भी परमेश्वर का कर्तृत्व नहीं जाता; इसलिए वह पारमार्थिक सम्बन्ध, बिना कल्पित हुए भी, बना ही रहता है।

पदपाठ तत्र पारमार्थिकः एतावान् कार्य-कारण-भावः — उनमें पारमार्थिक कार्य-कारण-भाव बस इतना है · यत् उत कर्तृ-स्वभावस्य स्वतन्त्रस्य भगवतः — अर्थात् कर्ता-स्वभाव वाले स्वतन्त्र भगवान् का · एवं-विधेन शिव-आदि-धरा-अन्तेन वपुषा — शिव से धरा तक के ऐसे शरीर से · स्वरूप-भिन्नेन स्वरूप-विश्रान्तेन च — जो उनके स्वरूप से भिन्न है और स्वरूप में ही विश्रान्त भी है · प्रथनम् — प्रकट होना · कल्पितः तु कार्य-कारण-भावः — पर कल्पित कार्य-कारण-भाव · परमेश-इच्छया नियति-प्राणया निर्मितः — नियति जिसका प्राण है, उस परमेश्वर की इच्छा से बना है · सः च यावति यदा नियत-पौर्वापर्य-अवभासनम् — और वह जितने में और जब आगे-पीछे का नियत क्रम दिखता है · सति अपि अधिके

स्वरूप-अनुगतम् एतावति एव — और अधिक होने पर भी अपने स्वरूप में बस उतने में ही रहता है · तेन योगि-इच्छातः अपि अङ्कुरः बीजात् अपि — इसलिए अंकुर योगी की इच्छा से भी होता है और बीज से भी · स्वप्न-आदौ घट-आदेः अपि इति — और स्वप्न आदि में घड़ा आदि भी बनते हैं · तत्र अपि च परमेश्वरस्य कर्तृत्व-अनपायः इति — और वहाँ भी परमेश्वर का कर्तृत्व नहीं जाता · अकल्पितः अपि असौ पारमार्थिकः स्थितः एव — इसलिए वह पारमार्थिक, बिना कल्पित हुए भी, बना ही रहता है

पारमार्थिके हि भित्तिस्थानीये स्थिते रूपे सर्वम् इदम् उल्लिख्यमानं घटते न अन्यथा, अत एव सामग्र्या एव कारणत्वं युक्तं ।

सा हि समस्तभावसंदर्भमयी स्वतन्त्रसंवेदनमहिम्ना, तथा नियतनिजनिजदेशकालभावराशिस्वभावा प्रत्येकं वस्तुस्वरूपनिष्पत्तिसमये तथाभूता, तथाभूताया हि अन्यथाभावो यथा यथा अधिकीभवति तथा तथा कार्यस्यापि विजातीयत्वं तारतम्येन पुष्यति,—इत्येवं संवेदनस्वातन्त्र्यस्वभावः ३२.३
परमेश्वर एव विश्वभावशरीरो घटादेर्निर्माता—

कुम्भकारसंविदस्ततोऽनधिकत्वात् कुम्भकारशरीरस्य च भावराशिमध्ये निक्षेपात् कथं कुम्भकारशरीरस्य कर्तृत्वाभिमानः? इति चेत्—परमेश्वरकृत एवासौ घटादिवत् भविष्यति ।

क्योंकि दीवार जैसे पारमार्थिक रूप के रहने पर ही यह सब उस पर खींचा जा सकता है, अन्यथा नहीं। इसीलिए सामग्री को ही कारण कहना ठीक है। क्योंकि स्वतन्त्र संवेदन की महिमा से वह सब भावों का ताना-बाना है, और अपने-अपने नियत देश-काल में स्थित भाव-राशि उसका स्वभाव है; हर वस्तु के स्वरूप के बनने के समय वह वैसी ही होती है, और उसका वैसा न रहना जितना-जितना बढ़ता है, उतना-उतना, क्रम से, कार्य भी दूसरी तरह का होता जाता है। इस तरह संवेदन की स्वतन्त्रता जिसका स्वभाव है, वह परमेश्वर ही, सब भावों को शरीर बनाए हुए, घड़े आदि का बनाने वाला है — क्योंकि कुम्हार की संवित् उससे अलग कुछ नहीं, और कुम्हार का शरीर भाव-राशि के बीच रखा हुआ है। यदि पूछो कि कुम्हार के शरीर को कर्ता होने का अभिमान कैसे होता है: वह भी घड़े आदि की तरह परमेश्वर का ही बनाया हुआ होगा।

पदपाठ पारमार्थिके हि भित्ति-स्थानीये स्थिते रूपे — क्योंकि दीवार जैसे पारमार्थिक रूप के रहने पर ही · सर्वम् इदम् उल्लिख्यमानं घटते न अन्यथा — यह सब उस पर खींचा जा सकता है, अन्यथा नहीं · अतः एव सामग्र्याः एव कारणत्वं युक्तम् — इसीलिए सामग्री को ही कारण कहना ठीक है · सा हि समस्त-भाव-संदर्भ-मयी स्वतन्त्र-संवेदन-महिम्ना — क्योंकि स्वतन्त्र संवेदन की महिमा से वह सब भावों का ताना-बाना है · तथा नियत-निज-निज-देश-काल-भाव-राशि-स्वभावा — और अपने-अपने नियत देश-काल में स्थित भाव-राशि उसका स्वभाव है · प्रत्येकं वस्तु-स्वरूप-निष्पत्ति-समये तथाभूता — हर वस्तु के स्वरूप के बनने के समय वह वैसी ही होती है · तथाभूतायाः हि अन्यथाभावः यथा यथा अधिकीभवति — और उसका वैसा न रहना जितना-जितना बढ़ता है · तथा तथा कार्यस्य अपि विजातीयत्वं तारतम्येन पुष्यति — उतना-उतना, क्रम से, कार्य भी दूसरी तरह का होता जाता है · इति एवं संवेदन-स्वातन्त्र्य-स्वभावः परमेश्वरः एव — इस तरह संवेदन की स्वतन्त्रता जिसका स्वभाव है, वह परमेश्वर ही · विश्व-भाव-शरीरः घट-आदेः निर्माता — सब भावों को शरीर बनाए हुए, घड़े आदि का बनाने वाला है · कुम्भकार-संविदः ततः अनधिकत्वात् — क्योंकि कुम्हार की संवित् उससे अलग कुछ नहीं · कुम्भकार-शरीरस्य च भाव-राशि-मध्ये निक्षेपात् — और कुम्हार का शरीर भाव-राशि के बीच रखा हुआ है · कथं कुम्भकार-शरीरस्य कर्तृत्व-अभिमानः? इति चेत् — यदि पूछो कि कुम्हार के शरीर को कर्ता होने का अभिमान कैसे होता है · परमेश्वर-कृतः एव असौ घट-आदिवत् भविष्यति — वह भी घड़े आदि की तरह परमेश्वर का ही बनाया हुआ होगा

तस्मात् सामग्रीवादोऽपि विश्वशरीरस्य संवेदनस्यैव कर्तृतायाम् उपोद्बलकः ।
मेरौ हि तत्रस्थे न भवेत् तथाविधो घटः ।
एवं कल्पितेऽस्मिन् कार्यत्वे शास्त्रेषु तत्त्वानां कार्यकारणभावं प्रति यत्
बहुप्रकारत्वं तदपि संगतं, गोमयात् कीटात् योगीच्छातो मन्त्रादौषधात् ३२.४
वृश्चिकोदयवत् ।
तत्र निजतन्त्रदृशा तं कल्पितं दर्शयामः ।

इसलिए सामग्री-वाद भी विश्व-शरीर संवेदन के ही कर्तृत्व को पुष्ट करता है। क्योंकि वहाँ मेरु होता तो वैसा घड़ा न बनता। इस तरह कार्य होना कल्पित होने पर, शास्त्रों में तत्त्वों के कार्य-कारण-भाव के बारे में जो अनेक प्रकार हैं, वे भी संगत हैं — जैसे बिच्छू गोबर से, कीड़े से, योगी की इच्छा से, मन्त्र से या औषधि से पैदा होता है। यहाँ हम उस कल्पित क्रम को अपने तन्त्र की दृष्टि से दिखाते हैं।

पदपाठ तस्मात् सामग्री-वादः अपि — इसलिए सामग्री-वाद भी · विश्व-शरीरस्य संवेदनस्य एव कर्तृतायाम् उपोद्बलकः — विश्व-शरीर संवेदन के ही कर्तृत्व को पुष्ट करता है · मेरौ हि तत्रस्थे न भवेत् तथाविधः घटः — क्योंकि वहाँ मेरु होता तो वैसा घड़ा न बनता · एवं कल्पिते अस्मिन् कार्यत्वे — इस तरह कार्य होना कल्पित होने पर · शास्त्रेषु तत्त्वानां कार्य-कारण-भावं प्रति यत् बहु-प्रकारत्वम् — शास्त्रों में तत्त्वों के कार्य-कारण-भाव के बारे में जो अनेक प्रकार हैं · तत् अपि संगतम् — वे भी संगत हैं · गोमयात् कीटात् योगि-इच्छातः मन्त्रात् औषधात् वृश्चिक-उदयवत् — जैसे बिच्छू गोबर से, कीड़े से, योगी की इच्छा से, मन्त्र से या औषधि से पैदा होता है · तत्र निज-तन्त्र-दृशा तं कल्पितं दर्शयामः — यहाँ हम उस कल्पित क्रम को अपने तन्त्र की दृष्टि से दिखाते हैं

तत्र परमेश्वरः पञ्चभिः शक्तिभिः निर्भर इत्युक्तम्, स स्वातन्त्र्यात् शक्तिं तां तां मुख्यतया प्रकटयन् पञ्चधा तिष्ठति ।

चित्प्राधान्ये शिवतत्त्वम्, आनन्दप्राधान्ये शक्तितत्त्वम्, इच्छाप्राधान्ये ३२.५ सदाशिवतत्त्वम्—इच्छाया हि ज्ञान-क्रिययोः साम्यरूपाभ्युपगमात्मकत्वात्, ज्ञानशक्तिप्राधान्ये ईश्वरतत्त्वम्, क्रियाशक्तिप्राधान्ये विद्यातत्त्वम् इति ।

यहाँ कहा गया कि परमेश्वर पाँच शक्तियों से भरे हैं। वे स्वतन्त्रता से किसी न किसी शक्ति को प्रधान रूप से प्रकट करते हुए पाँच तरह से स्थित होते हैं। चित् की प्रधानता में शिव-तत्त्व, आनन्द की प्रधानता में शक्ति-तत्त्व, इच्छा की प्रधानता में सदाशिव-तत्त्व — क्योंकि इच्छा ज्ञान और क्रिया को समान रूप से स्वीकार करना है; ज्ञान-शक्ति की प्रधानता में ईश्वर-तत्त्व, क्रिया-शक्ति की प्रधानता में विद्या-तत्त्व।

पदपाठ तत्र परमेश्वरः पञ्चभिः शक्तिभिः निर्भरः इति उक्तम् — यहाँ कहा गया कि परमेश्वर पाँच शक्तियों से भरे हैं · सः स्वातन्त्र्यात् शक्तिं तां तां मुख्यतया प्रकटयन् — वे स्वतन्त्रता से किसी न किसी शक्ति को प्रधान रूप से प्रकट करते हुए · पञ्चधा तिष्ठति — पाँच तरह से स्थित होते हैं · चित्-प्राधान्ये शिव-तत्त्वम् — चित् की प्रधानता में शिव-तत्त्व · आनन्द-प्राधान्ये शक्ति-तत्त्वम् — आनन्द की प्रधानता में शक्ति-तत्त्व · इच्छा-प्राधान्ये सदाशिव-तत्त्वम् — इच्छा की प्रधानता में सदाशिव-तत्त्व · इच्छायाः हि ज्ञान-क्रिययोः साम्य-रूप-अभ्युपगम-आत्मकत्वात् — क्योंकि इच्छा ज्ञान और क्रिया को समान रूप से स्वीकार करना है · ज्ञान-शक्ति-प्राधान्ये ईश्वर-तत्त्वम् — ज्ञान-शक्ति की प्रधानता में ईश्वर-तत्त्व · क्रिया-शक्ति-प्राधान्ये विद्या-तत्त्वम् इति — क्रिया-शक्ति की प्रधानता में विद्या-तत्त्व

अत्र च तत्त्वेश्वराः शिव-शक्ति-सदाशिवेश्वरानन्ताः—ब्रह्मेव निवृत्तौ, एषां सामान्यरूपाणां विशेषा अनुगतिविषयाः पञ्च, तद्यथा—शाम्भवाः शाक्ताः मन्त्रमहेश्वराः मन्त्रेश्वराः मन्त्राः,—इति शुद्धोऽध्वा । ३२.६

इयति साक्षात् शिवः कर्ता, अशुद्धं पुनरध्वानमनन्तापरनामाघोरेशः सृजति, ईश्वरेच्छावशेन प्रक्षुब्धभोगलोलिकानामणूनां भोगसिद्ध्यर्थम् ।

और यहाँ तत्त्वेश्वर हैं शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और अनन्त — जैसे निवृत्ति-कला में ब्रह्मा। इन सामान्य रूपों में रहने वाले विशेष प्राणी पाँच हैं: शाम्भव, शाक्त, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर और मन्त्र। यह शुद्ध अध्वा है। यहाँ तक साक्षात् शिव कर्ता हैं। पर अशुद्ध अध्वा को अघोरेश रचते हैं, जिनका दूसरा नाम अनन्त है — ईश्वर की इच्छा के वश, जिन अणुओं की भोग-लालसा जग गई है, उनके भोग की सिद्धि के लिए।

पदपाठ अत्र च तत्त्व-ईश्वराः शिव-शक्ति-सदाशिव-ईश्वर-अनन्ताः — और यहाँ तत्त्वेश्वर हैं शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और अनन्त · ब्रह्मा इव निवृत्तौ — जैसे निवृत्ति-कला में ब्रह्मा · एषां सामान्य-रूपाणां विशेषाः अनुगति-विषयाः पञ्च — इन सामान्य रूपों में रहने वाले विशेष प्राणी पाँच हैं · तत् यथा शाम्भवाः शाक्ताः मन्त्र-महेश्वराः मन्त्र-ईश्वराः मन्त्राः — अर्थात् शाम्भव, शाक्त, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर और मन्त्र · इति शुद्धः अध्वा — यह शुद्ध अध्वा है · इयति साक्षात् शिवः कर्ता — यहाँ तक साक्षात् शिव कर्ता हैं · अशुद्धं पुनः अध्वानम् अनन्त-अपर-नामा अघोरेशः सृजति — पर अशुद्ध अध्वा को अघोरेश रचते हैं, जिनका दूसरा नाम अनन्त है · ईश्वर-इच्छा-वशेन — ईश्वर की इच्छा के वश · प्रक्षुब्ध-भोग-लोलिकानाम् अणूनां भोग-सिद्धि-अर्थम् — जिन अणुओं की भोग-लालसा जग गई है, उनके भोग की सिद्धि के लिए

तत्र लोलिकोऽपूर्णमन्यतारूपः परिस्पन्दः अकर्मकमभिलाषमात्रमेव भविष्यदवच्छेदयोग्यतेति न मलः पुंसस्तत्त्वान्तरम् ।

रागतत्त्वं तु कर्मावच्छिन्नोऽभिलाषः ।

कर्म तु तत्र कर्ममात्रं, बुद्धिधर्मस्तु रागः कर्मभेदचित्र इति विभागो वक्ष्यते । ३२.७

सोऽयं मलः परमेश्वरस्य स्वात्मप्रच्छादनेच्छातः नान्यत् किंचित्, वस्त्वपि च तत् —परमेश्वरेच्छात्मनैव धरादेरपि वस्तुत्वात् ।

यहाँ लालसा अपने को अपूर्ण मानने के रूप का एक स्पन्दन है — बिना किसी विषय की केवल चाह, आगे होने वाली सीमा की योग्यता; इसलिए मल पुरुष से अलग कोई तत्त्व नहीं है। पर राग-तत्त्व कर्म से सीमित चाह है। वहाँ कर्म केवल कर्म है, जबकि बुद्धि का धर्म राग कर्म के भेद से तरह-तरह का है — यह भेद आगे बताया जाएगा। यह मल परमेश्वर की अपने को ढकने की इच्छा के सिवा और कुछ नहीं; फिर भी वह वस्तु है, क्योंकि धरा आदि भी परमेश्वर की इच्छा-रूप से ही वस्तु हैं।

पदपाठ तत्र लोलिकः अपूर्णमन्यता-रूपः परिस्पन्दः — यहाँ लालसा अपने को अपूर्ण मानने के रूप का एक स्पन्दन है · अकर्मकम् अभिलाष-मात्रम् एव — बिना किसी विषय की केवल चाह · भविष्यत्-अवच्छेद-योग्यता इति — आगे होने वाली सीमा की योग्यता · न मलः पुंसः तत्त्व-अन्तरम् — मल पुरुष से अलग कोई तत्त्व नहीं है · राग-तत्त्वं तु कर्म-अवच्छिन्नः अभिलाषः — पर राग-तत्त्व कर्म से सीमित चाह है · कर्म तु तत्र कर्म-मात्रम् — और वहाँ कर्म केवल कर्म है · बुद्धि-धर्मः तु रागः कर्म-भेद-चित्रः — जबकि बुद्धि का धर्म राग कर्म के भेद से तरह-तरह का है · इति विभागः वक्ष्यते — यह भेद आगे बताया जाएगा · सः अयं मलः परमेश्वरस्य स्व-आत्म-प्रच्छादन-इच्छातः — यह मल परमेश्वर की अपने को ढकने की इच्छा के सिवा · न अन्यत् किंचित् — और कुछ नहीं · वस्तु अपि च तत् — फिर भी वह वस्तु है · परमेश्वर-इच्छा-आत्मना एव धरा-आदेः अपि वस्तुत्वात् — क्योंकि धरा आदि भी परमेश्वर की इच्छा-रूप से ही वस्तु हैं

स च मलो विज्ञानकेवले विद्यमानो ध्वंसोन्मुख इति न स्वकार्यं कर्म आप्यायति ।

प्रलयकेवलस्य तु जृम्भमाण एव आस्त इति मलोपोद्बलितं कर्म संसारवैचित्र्यभोगे निमित्तम्—इति तद्भोगवासनानुविद्धानामणूनां भोगसिद्धये ३२.८ **श्रीमान् अघोरेशः सृजति इति युक्तमुक्तं, मलस्य च प्रक्षोभ ईश्वरेच्छाबलादेव जडस्य स्वतः कुत्रचिदपि असामर्थ्यात् ।**

विज्ञानकेवल में यह मल रहते हुए भी नष्ट होने को है, इसलिए वह अपने कार्य कर्म को नहीं बढ़ाता। पर प्रलयकेवल में वह फैलता हुआ ही रहता है, इसलिए मल से पुष्ट कर्म संसार के तरह-तरह के भोग का कारण है। इस तरह उस भोग की वासना से बिंधे अणुओं के भोग की सिद्धि के लिए श्रीमान् अघोरेश रचते हैं — यह ठीक ही कहा गया। और मल का क्षोभ ईश्वर की इच्छा के बल से ही होता है, क्योंकि जड़ अपने आप कहीं भी कुछ नहीं कर सकता।

पदपाठ सः च मलः विज्ञानकेवले विद्यमानः ध्वंस-उन्मुखः इति — और विज्ञानकेवल में यह मल रहते हुए भी नष्ट होने को है · न स्व-कार्यं कर्म आप्यायति — इसलिए वह अपने कार्य कर्म को नहीं बढ़ाता · प्रलयकेवलस्य तु जृम्भमाणः एव आस्ते इति — पर प्रलयकेवल में वह फैलता हुआ ही रहता है · मल-उपोद्बलितं कर्म संसार-वैचित्र्य-भोगे निमित्तम् — इसलिए मल से पुष्ट कर्म संसार के तरह-तरह के भोग का कारण है · इति तत्-भोग-वासना-अनुविद्धानाम् अणूनां भोग-सिद्धये — इस तरह उस भोग की वासना से बिंधे अणुओं के भोग की सिद्धि के लिए · श्रीमान् अघोरेशः सृजति इति युक्तम् उक्तम् — श्रीमान् अघोरेश रचते हैं — यह ठीक ही कहा गया · मलस्य च प्रक्षोभः ईश्वर-इच्छा-बलात् एव — और मल का क्षोभ ईश्वर की इच्छा के बल से ही होता है · जडस्य स्वतः कुत्रचित् अपि असामर्थ्यात् — क्योंकि जड़ अपने आप कहीं भी कुछ नहीं कर सकता

अणुर्नाम किल चिदचिद्रूपावभास एव, तस्य चिद्रूपमैश्वर्यमेव, अचिद्रूपतैव मलः, तस्य च सृजतः परमेश्वरेच्छामयं तत एव च नित्यं स्रक्ष्यमाणवस्तुगतस्य रूपस्य जडतयाभासयिष्यमाणत्वात् जडं सकलकार्यव्यापनादिरूपत्वाच्च व्यापकं मायाख्यं तत्त्वम् उपादानकारणं, तदवभासकारिणी च परमेश्वरस्य माया नाम शक्तिस्ततोऽन्यैव । २२.९

अणु चित् और अचित् रूप का आभास ही है। उसका चित्-रूप ऐश्वर्य ही है; उसका अचित्-रूप होना ही मल है। और रचे जाते हुए उस अणु के लिए एक उपादान-कारण है: माया नामक तत्त्व, जो परमेश्वर की इच्छा से बना है और इसी कारण नित्य है; जड़ है, क्योंकि रचे जाने वाली वस्तुओं का रूप जड़ रूप में दिखाया जाएगा; और व्यापक है, क्योंकि वह सब कार्यों में फैला है। जबकि उसे दिखाने वाली परमेश्वर की माया नामक शक्ति उससे अलग ही है।

पदपाठ अणुः नाम किल चित्-अचित्-रूप-अवभासः एव — अणु चित् और अचित् रूप का आभास ही है · तस्य चित्-रूपम् ऐश्वर्यम् एव — उसका चित्-रूप ऐश्वर्य ही है · अचित्-रूपता एव मलः — उसका अचित्-रूप होना ही मल है · तस्य च सृजतः परमेश्वर-इच्छा-मयम् — और रचे जाते हुए उस अणु के लिए, परमेश्वर की इच्छा से बना · ततः एव च नित्यम् — और इसी कारण नित्य · स्रक्ष्यमाण-वस्तु-गतस्य रूपस्य जडतया आभासयिष्यमाणत्वात् जडम् — जड़, क्योंकि रचे जाने वाली वस्तुओं का रूप जड़ रूप में दिखाया जाएगा · सकल-कार्य-व्यापन-आदि-रूपत्वात् च व्यापकम् — और व्यापक, क्योंकि वह सब कार्यों में फैला है · माया-आख्यं तत्त्वम् उपादान-कारणम् — माया नामक तत्त्व, जो उपादान-कारण है · तत्-अवभास-कारिणी च परमेश्वरस्य माया नाम शक्तिः — जबकि उसे दिखाने वाली परमेश्वर की माया नामक शक्ति · ततः अन्या एव — उससे अलग ही है

एवं कलादितत्त्वानां धरान्तानामपि द्वैरूप्यं निरूप्यम् ।
अत्र च द्वैरूप्ये प्रमाणमपि आहुरभिनवगुप्तगुरवः ।
यत् संकल्पे भाति तत्पृथग्भूतं बहिरपि अस्ति स्फुटेन वपुषा घट इव ।
तथा च मायाकलादिखपुष्पादेरपि एषैव वर्तनी इति केवलान्वयी हेतुः । ३२.१०
अनेन च मायाकलाप्रकृतिबुद्ध्यादिविषयं साक्षात्काररूपं ज्ञानं ये भजन्ते तेऽपि सिद्धाः सिद्धा एव ।

इसी तरह कला से धरा तक के तत्त्वों का भी दोहरा रूप समझना चाहिए। इस दोहरे रूप का प्रमाण भी गुरु अभिनवगुप्त देते हैं। जो संकल्प में चमकता है, वह अलग होकर बाहर भी स्पष्ट रूप में है, जैसे घड़ा। और माया, कला आदि का, यहाँ तक कि आकाश-कुसुम का भी, यही रास्ता है — यह केवलान्वयी हेतु है। इससे, जो माया, कला, प्रकृति, बुद्धि आदि का साक्षात्कार-रूप ज्ञान पाते हैं, वे भी सिद्ध हैं, सचमुच सिद्ध हैं।

पदपाठ एवं कला-आदि-तत्त्वानां धरा-अन्तानाम् अपि — इसी तरह कला से धरा तक के तत्त्वों का भी · द्वैरूप्यं निरूप्यम् — दोहरा रूप समझना चाहिए · अत्र च द्वैरूप्ये प्रमाणम् अपि आहुः अभिनवगुप्त-गुरवः — और इस दोहरे रूप का प्रमाण भी गुरु अभिनवगुप्त देते हैं · यत् संकल्पे भाति — जो संकल्प में चमकता है · तत् पृथक्-भूतं बहिः अपि अस्ति स्फुटेन वपुषा घटः इव — वह अलग होकर बाहर भी स्पष्ट रूप में है, जैसे घड़ा · तथा च माया-कला-आदि-ख-पुष्प-आदेः अपि एषा एव वर्तनी — और माया, कला आदि का, यहाँ तक कि आकाश-कुसुम का भी, यही रास्ता है · इति केवल-अन्वयी हेतुः — यह केवलान्वयी हेतु है · अनेन च माया-कला-प्रकृति-बुद्धि-आदि-विषयम् — और इससे, जो माया, कला, प्रकृति, बुद्धि आदि का · साक्षात्कार-रूपं ज्ञानं ये भजन्ते — साक्षात्कार-रूप ज्ञान पाते हैं · ते अपि सिद्धाः सिद्धाः एव — वे भी सिद्ध हैं, सचमुच सिद्ध हैं

एवं स्थिते मायातत्त्वात् विश्वप्रसवः ।

स च यद्यपि अक्रममेव तथापि उक्तदृशा क्रमोऽवभासते इति ।

सोऽपि उच्यते, तत्र प्रत्यात्म कलादिवर्गो भिन्नः—तत्कार्यस्य कर्तृत्वोपोद्बलनादेः प्रत्यात्मभेदेन उपलम्भात्, स तु वर्गः कदाचित् एकीभवेत् अपि ईश्वरेच्छया सामाजिकात्मनामिव, तत्र सर्वोऽयं कलादिवर्गः शुद्धः स.११ परमेश्वरविषयतया तत्स्वरूपलाभानुगुणनिजकार्यकारी—संसारप्रतिद्वन्द्वित्वात् ।

स च परमेश्वरशक्तिपातवशात् तथा भवति इति वक्ष्यामस्तत्प्रकाशने ।

अशुद्धस्तु तद्विपरीतः ।

ऐसा होने पर माया-तत्त्व से विश्व का जन्म होता है। वह यद्यपि क्रम-रहित ही है, फिर भी बताई हुई दृष्टि से क्रम दिखता है। वह भी कहा जाता है। वहाँ कला आदि का वर्ग हर आत्मा के लिए अलग है, क्योंकि उसका कार्य, कर्तृत्व का पुष्ट होना आदि, हर आत्मा में अलग-अलग दिखता है; पर ईश्वर की इच्छा से वह वर्ग कभी एक भी हो सकता है, जैसे सभा में बैठे लोगों के लिए। उनमें कला आदि का यह पूरा वर्ग शुद्ध है जब वह परमेश्वर की ओर लगकर अपना काम उनके स्वरूप की प्राप्ति के अनुकूल करता है — क्योंकि तब वह संसार का विरोधी है। वह परमेश्वर के शक्तिपात से ऐसा होता है; यह हम उसके प्रकाशन में कहेंगे। अशुद्ध वर्ग उससे उलटा है।

पदपाठ एवं स्थिते माया-तत्त्वात् विश्व-प्रसवः — ऐसा होने पर माया-तत्त्व से विश्व का जन्म होता है · सः च यद्यपि अक्रमम् एव — और वह यद्यपि क्रम-रहित ही है · तथापि उक्त-दृशा क्रमः अवभासते इति — फिर भी बताई हुई दृष्टि से क्रम दिखता है · सः अपि उच्यते — वह भी कहा जाता है · तत्र प्रत्यात्म कला-आदि-वर्गः भिन्नः — वहाँ कला आदि का वर्ग हर आत्मा के लिए अलग है · तत्-कार्यस्य कर्तृत्व-उपोद्बलन-आदेः प्रत्यात्म-भेदेन उपलम्भात् — क्योंकि उसका कार्य, कर्तृत्व का पुष्ट होना आदि, हर आत्मा में अलग-अलग दिखता है · सः तु वर्गः कदाचित् एकीभवेत् अपि ईश्वर-इच्छया — पर ईश्वर की इच्छा से वह वर्ग

कभी एक भी हो सकता है · सामाजिक-आत्मनाम् इव — जैसे सभा में बैठे लोगों के लिए · तत्र सर्वः अयं कला-आदि-वर्गः शुद्धः — उनमें कला आदि का यह पूरा वर्ग शुद्ध है · यः परमेश्वर-विषयतया तत्-स्वरूप-लाभ-अनुगुण-निज-कार्य-कारी — जब वह परमेश्वर की ओर लगकर अपना काम उनके स्वरूप की प्राप्ति के अनुकूल करता है · संसार-प्रतिद्वन्द्वित्वात् — क्योंकि तब वह संसार का विरोधी है · सः च परमेश्वर-शक्तिपात-वशात् तथा भवति इति — और वह परमेश्वर के शक्तिपात से ऐसा होता है · वक्ष्यामः तत्-प्रकाशने — यह हम उसके प्रकाशन में कहेंगे · अशुद्धः तु तत्-विपरीतः — अशुद्ध वर्ग उससे उलटा है

तत्र मायातः कला जाता, या सुप्तस्थानीयम् अणुं किंचित्कर्तृत्वेन युनक्ति, सा च उच्छूनतेव संसारबीजस्य, मायाण्वोरुभयोः संयोगात् उत्पन्नापि मायां विकरोति, न अविकार्यमणुम्—इति मायाकार्यत्वम् अस्याः । एवम् अन्योन्यश्लेषात् अलक्षणीयान्तरत्वं पुंस्कलयोः । ३२.१२

वहाँ माया से कला पैदा होती है, जो सोए हुए जैसे अणु को थोड़े-से कर्तृत्व से जोड़ती है। वह संसार के बीज के फूलने जैसी है। यद्यपि वह माया और अणु दोनों के संयोग से पैदा होती है, वह माया को बदलती है, न कि अणु को, जो बदला नहीं जा सकता; इसलिए वह माया का कार्य है। इस तरह एक-दूसरे से चिपके रहने के कारण पुरुष और कला का भेद पहचाना नहीं जा सकता।

पदपाठ तत्र मायातः कला जाता — वहाँ माया से कला पैदा होती है · या सुप्त-स्थानीयम् अणुं किंचित्-कर्तृत्वेन युनक्ति — जो सोए हुए जैसे अणु को थोड़े-से कर्तृत्व से जोड़ती है · सा च उच्छूनता इव संसार-बीजस्य — और वह संसार के बीज के फूलने जैसी है · माया-अण्वोः उभयोः संयोगात् उत्पन्ना अपि — यद्यपि वह माया और अणु दोनों के संयोग से पैदा होती है · मायां विकरोति न अविकार्यम् अणुम् — वह माया को बदलती है, न कि अणु को, जो बदला नहीं जा सकता · इति माया-कार्यत्वम् अस्याः — इसलिए वह माया का कार्य है · एवम् अन्योन्य-श्लेषात् — इस तरह एक-दूसरे से चिपके रहने के कारण · अलक्षणीय-अन्तरत्वं पुंस्-कलयोः — पुरुष और कला का भेद पहचाना नहीं जा सकता

मायागर्भाधिकारिणस्तु कस्यचिदीश्वरस्य प्रसादात् सर्वकर्मक्षये मायापुरुषविवेको भवति, येन मायोर्ध्वे विज्ञानाकल आस्ते, न जातुचित् मायाधः, कलापुंविवेको वा येन कलोर्ध्वे तिष्ठति । ३२.१३
प्रकृतिपुरुषविवेको वा येन प्रधानाधो न संसरेत् ।
मलपुरुषविवेके तु शिवसमानत्वं ।
पुरुषपूर्णतादृष्टौ तु शिवत्वमेवेति ।

पर माया के गर्भ में अधिकार पाए किसी अणु को ईश्वर की कृपा से, सब कर्म क्षीण होने पर, माया और पुरुष का विवेक होता है, जिससे वह विज्ञानाकल होकर माया के ऊपर रहता है, कभी माया के नीचे नहीं; या कला और पुरुष का विवेक, जिससे वह कला के ऊपर रहता है; या प्रकृति और पुरुष का विवेक, जिससे वह प्रधान के नीचे नहीं भटकता। मल और पुरुष के विवेक में शिव की समानता है; और पुरुष की पूर्णता के दर्शन में शिवत्व ही है।

पदपाठ माया-गर्भ-अधिकारिणः तु कस्यचित् — पर माया के गर्भ में अधिकार पाए किसी अणु को · ईश्वरस्य प्रसादात् सर्व-कर्म-क्षये — ईश्वर की कृपा से, सब कर्म क्षीण होने पर · माया-पुरुष-विवेकः भवति — माया और पुरुष का विवेक होता है · येन माया-ऊर्ध्वे विज्ञानाकलः आस्ते — जिससे वह विज्ञानाकल होकर माया के ऊपर रहता है · न जातुचित् माया-अधः — कभी माया के नीचे नहीं · कला-पुं-विवेकः वा येन कला-ऊर्ध्वे तिष्ठति — या कला और पुरुष का विवेक, जिससे वह कला के ऊपर रहता है · प्रकृति-पुरुष-विवेकः वा येन प्रधान-अधः न संसरेत् — या प्रकृति और पुरुष का विवेक, जिससे वह प्रधान के नीचे नहीं भटकता · मल-पुरुष-विवेके तु शिव-समानत्वम् — पर मल और पुरुष के विवेक में शिव की समानता है · पुरुष-पूर्णता-दृष्टौ तु शिवत्वम् एव इति — और पुरुष की पूर्णता के दर्शन में शिवत्व ही है

एवं कलातत्त्वमेव किंचित्कर्तृत्वदायि, न च कर्तृत्वम् अज्ञस्य इति ।
किंचिज्ज्ञत्वदायिन्यशुद्धविद्या कलातो जाता, सा च विद्या बुद्धिं पश्यति,
तद्गतांश्च सुखादीन् विवेकेन गृह्णाति । ३२.१४
बुद्धेर्गुणसंकीर्णाकाराया विवेकेन ग्रहीतुमसामर्थ्यात् ।
तस्मात् बुद्धिप्रतिबिम्बितो भावो विद्यया विविच्यते ।

इस तरह कला-तत्त्व ही थोड़ा-सा कर्तृत्व देता है; और जो कुछ नहीं जानता, उसमें कर्तृत्व नहीं होता। इसलिए थोड़ा-सा ज्ञान देने वाली अशुद्ध विद्या कला से पैदा होती है। यह विद्या बुद्धि को देखती है और उसमें रहने वाले सुख आदि को विवेक से पकड़ती है, क्योंकि गुणों से मिले-जुले आकार वाली बुद्धि उन्हें विवेक से नहीं पकड़ सकती। इसलिए बुद्धि में प्रतिबिम्बित भाव को विद्या अलग करके पहचानती है।

पदपाठ एवं कला-तत्त्वम् एव किंचित्-कर्तृत्व-दायि — इस तरह कला-तत्त्व ही थोड़ा-सा कर्तृत्व देता है · न च कर्तृत्वम् अज्ञस्य इति — और जो कुछ नहीं जानता, उसमें कर्तृत्व नहीं होता · किंचित्-ज्ञत्व-दायिनी अशुद्ध-विद्या कलातः जाता — इसलिए थोड़ा-सा ज्ञान देने वाली अशुद्ध विद्या कला से पैदा होती है · सा च विद्या बुद्धिं पश्यति — और यह विद्या बुद्धि को देखती है · तत्-गतान् च सुख-आदीन् विवेकेन गृह्णाति — और उसमें रहने वाले सुख आदि को विवेक से पकड़ती है · बुद्धेः गुण-संकीर्ण-आकारायाः विवेकेन ग्रहीतुम् असामर्थ्यात् — क्योंकि गुणों से मिले-जुले आकार वाली बुद्धि उन्हें विवेक से नहीं पकड़ सकती · तस्मात् बुद्धि-प्रतिबिम्बितः भावः विद्यया विविच्यते — इसलिए बुद्धि में प्रतिबिम्बित भाव को विद्या अलग करके पहचानती है

किंचित्कर्तृत्वं किंचिद्भागसिद्धये क्वचिदेव कर्तृत्वम् इत्यत्र अर्थे पर्यवस्यति,
क्वचिदेव च इत्यत्र भागे रागतत्त्वस्य व्यापारः ।
न च अवैराग्यकृतं तत्—अवैराग्यस्यापि अरक्तिदर्शनात् । ३२.१५
वैराग्ये धर्मादावपि रक्तिर्दृश्यते ।
तृप्तस्य च अन्नादौ—अवैराग्याभावेऽपि अन्तःस्थरागानपायात् ।
तेन विना पुनरवैराग्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् ।

थोड़ा-सा कर्तृत्व, अपने "थोड़ा-सा" अंश को सिद्ध करने के लिए, इस अर्थ पर टिकता है: कहीं-कहीं ही कर्तृत्व। और "कहीं-कहीं ही" इस अंश में राग-तत्त्व का काम है। वह अवैराग्य का किया हुआ नहीं है, क्योंकि अवैराग्य में भी अनासक्ति देखी जाती है; वैराग्य में धर्म आदि के प्रति आसक्ति देखी जाती है; और तृप्त व्यक्ति में अन्न आदि के प्रति अवैराग्य न होने पर भी भीतर बैठा राग गया नहीं है — क्योंकि उसके बिना अवैराग्य फिर पैदा ही न हो पाता।

पदपाठ किंचित्-कर्तृत्वं किंचित्-भाग-सिद्धये — थोड़ा-सा कर्तृत्व, अपने "थोड़ा-सा" अंश को सिद्ध करने के लिए · क्वचित् एव कर्तृत्वम् इति अत्र अर्थे पर्यवस्यति — इस अर्थ पर टिकता है: कहीं-कहीं ही कर्तृत्व · क्वचित् एव च इति अत्र भागे राग-तत्त्वस्य व्यापारः — और "कहीं-कहीं ही" इस अंश में राग-तत्त्व का काम है · न च अवैराग्य-कृतं तत् — और वह अवैराग्य का किया हुआ नहीं है · अवैराग्यस्य अपि अरक्ति-दर्शनात् — क्योंकि अवैराग्य में भी अनासक्ति देखी जाती है · वैराग्ये धर्म-आदौ अपि रक्तिः दृश्यते — और वैराग्य में धर्म आदि के प्रति आसक्ति देखी जाती है · तृप्तस्य च अन्न-आदौ — और तृप्त व्यक्ति में अन्न आदि के प्रति · अवैराग्य-अभावे अपि अन्तःस्थ-राग-अनपायात् — अवैराग्य न होने पर भी भीतर बैठा राग गया नहीं है · तेन विना पुनः अवैराग्य-अनुत्पत्ति-प्रसङ्गात् — क्योंकि उसके बिना अवैराग्य फिर पैदा ही न हो पाता

कालश्च कार्यं कलयंस्तदवच्छिन्नं कर्तृत्वमपि कलयति, तुल्ये क्वचित्त्वे अस्मिन्नेव कर्तृत्वम् इत्यत्रार्थे नियतेर्व्यापारः ।
कार्यकारणभावेऽपि अस्या एव व्यापारः तेन कलात एव एतच्चतुष्कं जातम्,
इदमेव किंचिदधुना जानन् अभिष्वक्तः करोमि इत्येवंरूपा संविद् ३२.१६
देहपुर्यष्टकादिगता पशुरित्युच्यते ।
तदिदं मायादिषट्कं कञ्चुकषट्कम् उच्यते ।
संविदो मायया अपहस्तितत्वेन कलादीनाम् उपरिपातिनां कञ्चुकवत् अवस्थानात् ।

और काल, कार्य को नापता हुआ, उससे सीमित कर्तृत्व को भी नापता है। "कहीं-कहीं होना समान होते हुए भी इसी में कर्तृत्व" इस अर्थ में नियति का काम है; कार्य-कारण-भाव में भी इसी का काम है। इसलिए यह चारों कला से ही पैदा होते हैं। "बस यही थोड़ा-सा अभी जानता हुआ, उसमें आसक्त, मैं करता हूँ" — इस रूप की संवित्, जो देह, पुर्यष्टक आदि में बैठी है, पशु कहलाती है। माया आदि के ये छह छह कञ्चुक कहलाते हैं, क्योंकि संवित् को माया ने हटा दिया है और उस पर पड़े कला आदि कञ्चुक की तरह ठहरे हैं।

पदपाठ कालः च कार्यं कलयन् — और काल, कार्य को नापता हुआ · तत्-अवच्छिन्नं कर्तृत्वम् अपि कलयति — उससे सीमित कर्तृत्व को भी नापता है · तुल्ये क्वचित्त्वे अस्मिन् एव कर्तृत्वम् इति अत्र अर्थे — और "कहीं-कहीं होना समान होते हुए भी इसी में कर्तृत्व" इस अर्थ में · नियतेः व्यापारः — नियति का काम है · कार्य-कारण-भावे अपि अस्याः एव व्यापारः — कार्य-कारण-भाव में भी इसी का काम है · तेन कलातः एव एतत् चतुष्कं जातम् — इसलिए यह चारों कला से ही पैदा होते हैं · इदम् एव किंचित् अधुना जानन् अभिष्वक्तः करोमि — "बस यही थोड़ा-सा अभी जानता हुआ, उसमें आसक्त, मैं करता हूँ" · इति एवं-रूपा संविद् देह-पुर्यष्टक-आदि-गता — इस रूप की संवित्, जो देह, पुर्यष्टक आदि में बैठी है · पशुः इति उच्यते — पशु कहलाती है · तत् इदं माया-आदि-षट्कं कञ्चुक-षट्कम् उच्यते — माया आदि के ये छह छह कञ्चुक कहलाते हैं · संविदः मायया अपहस्तितत्वेन — क्योंकि संवित् को माया ने हटा दिया

है · कला-आदीनाम् उपरिपातिनां कञ्चुकवत् अवस्थानात् — और उस पर पड़े कला आदि कञ्चुक की तरह ठहरे हैं

एवं किंचित्कर्तृत्वं यत् मायाकार्यं तत्र किंचित्त्वविशिष्टं यत् कर्तृत्वं विशेष्यं, तत्र व्याप्रियमाणा कला विद्यादिप्रसवहेतुः, इति निरूपितम् । इदानीं विशेषणभागो यः किंचिदित्युक्तो ज्ञेयः कार्यश्च तं यावत् सा कला ३२.१७
स्वात्मनः पृथक् कुरुते तावत् एष एव सुखदुःखमोहात्मकभोग्यविशेषानुस्यूतस्य सामान्यमात्रस्य तद्गुणसाम्यापरनाम्नः प्रकृतितत्त्वस्य सर्गः, इति भोक्तृभोग्ययुगलस्य सममेव कलातत्त्वायत्ता सृष्टिः ।

इस तरह जो थोड़ा-सा कर्तृत्व माया का कार्य है, उसमें "थोड़ा-सा" से विशिष्ट जो कर्तृत्व है, वह विशेष्य है, और उस पर काम करती हुई कला विद्या आदि के जन्म का कारण है — यह बताया जा चुका। अब जो विशेषण-भाग "थोड़ा-सा" कहा गया, वह जानने योग्य और करने योग्य है। जैसे ही कला उसे अपने से अलग करती है, वैसे ही यही उस प्रकृति-तत्त्व की सृष्टि है, जिसका दूसरा नाम गुण-साम्य है — सुख, दुःख और मोह रूप सब विशेष भोग्यों में पिरोए हुए केवल-सामान्य की। इस तरह भोक्ता और भोग्य के जोड़े की सृष्टि एक साथ ही कला-तत्त्व के अधीन है।

पदपाठ एवं किंचित्-कर्तृत्वं यत् माया-कार्यम् — इस तरह जो थोड़ा-सा कर्तृत्व माया का कार्य है, उसमें · तत्र किंचित्त्व-विशिष्टं यत् कर्तृत्वं विशेष्यम् — "थोड़ा-सा" से विशिष्ट जो कर्तृत्व है, वह विशेष्य है · तत्र व्याप्रियमाणा कला विद्या-आदि-प्रसव-हेतुः — और उस पर काम करती हुई कला विद्या आदि के जन्म का कारण है · इति निरूपितम् — यह बताया जा चुका · इदानीं विशेषण-भागः यः किंचित् इति उक्तः — अब जो विशेषण-भाग "थोड़ा-सा" कहा गया · ज्ञेयः कार्यः च — वह जानने योग्य और करने योग्य है · तं यावत् सा कला स्व-आत्मनः पृथक् कुरुते — जैसे ही कला उसे अपने से अलग करती है · तावत् एषः एव — वैसे ही यही · सुख-दुःख-मोह-आत्मक-भोग्य-विशेष-अनुस्यूतस्य सामान्य-मात्रस्य — सुख, दुःख और मोह रूप सब विशेष भोग्यों में पिरोए हुए केवल-सामान्य का · तत्-गुण-साम्य-अपर-नाम्नः प्रकृति-तत्त्वस्य सर्गः — उस प्रकृति-तत्त्व की सृष्टि है, जिसका दूसरा नाम गुण-साम्य है · इति भोक्तृ-भोग्य-युगलस्य समम् एव कला-तत्त्व-आयत्ता सृष्टिः — इस तरह भोक्ता और भोग्य के जोड़े की सृष्टि एक साथ ही कला-तत्त्व के अधीन है

अत्र चैषां वास्तवेन पथा क्रमवन्ध्यैव सृष्टिरित्युक्तं, क्रमावभासोऽपि चास्तीत्यपि उक्तमेव ।

क्रमश्च विद्यारागादीनां विचित्रोऽपि दृष्टः कश्चिद्रज्यन् वेत्ति कोऽपि विदन् रज्यते इत्यादि । ३२.१८

तेन भिन्नक्रमनिरूपणमपि रौरवादिषु शास्त्रेषु अविरुद्धं मन्तव्यं, तदेव तु भोग्यसामान्यं प्रक्षोभगतं गुणतत्त्वम् ।

यहाँ कहा गया कि वास्तविक मार्ग से इनकी सृष्टि क्रम-रहित ही है; और यह भी कहा जा चुका कि क्रम का आभास भी है। विद्या, राग आदि का क्रम तरह-तरह का भी देखा जाता है: कोई आसक्त होते हुए जानता है, कोई जानते हुए आसक्त होता है, आदि। इसलिए रौरव आदि शास्त्रों में दिया अलग क्रम भी विरोध-रहित मानना चाहिए। वही भोग्य-सामान्य क्षुब्ध होने पर गुण-तत्त्व है।

पदपाठ अत्र च एषां वास्तवेन पथा क्रम-वन्ध्या एव सृष्टिः इति उक्तम् — और यहाँ कहा गया कि वास्तविक मार्ग से इनकी सृष्टि क्रम-रहित ही है · क्रम-अवभासः अपि च अस्ति इति अपि उक्तम् एव — और यह भी कहा जा चुका कि क्रम का आभास भी है · क्रमः च विद्या-राग-आदीनां विचित्रः अपि दृष्टः — और विद्या, राग आदि का क्रम तरह-तरह का भी देखा जाता है · कश्चित् रज्यन् वेत्ति कः अपि विदन् रज्यते इति आदि — कोई आसक्त होते हुए जानता है, कोई जानते हुए आसक्त होता है, आदि · तेन भिन्न-क्रम-निरूपणम् अपि रौरव-आदिषु शास्त्रेषु — इसलिए रौरव आदि शास्त्रों में दिया अलग क्रम भी · अविरुद्धं मन्तव्यम् — विरोध-रहित मानना चाहिए · तत् एव तु भोग्य-सामान्यं प्रक्षोभ-गतं गुण-तत्त्वम् — और वही भोग्य-सामान्य क्षुब्ध होने पर गुण-तत्त्व है

यत्र सुखं भोग्यरूपप्रकाशः सत्त्वम्, दुःखं प्रकाशाप्रकाशान्दोलनात्मकम् अत एव क्रियारूपं रजः, मोहः प्रकाशाभावरूपस्तमः ।

त्रितयमपि एतत् भोग्यरूपम् ।

एवं क्षुब्धात् प्रधानात् कर्तव्यान्तरोदयः, न अक्षुब्धादिति ।

क्षोभः अवश्यमेव अन्तराले अभ्युपगन्तव्य इति सिद्धं सांख्यापरिदृष्टं पृथग्भूतं गुणतत्त्वं । ३२.१९

स च क्षोभः प्रकृतेस्तत्त्वेशाधिष्ठानादेव, अन्यथा नियतं पुरुषं प्रति इति न सिध्येत् ।

जिसमें सुख, भोग्य-रूप का प्रकाश, सत्त्व है; दुःख, प्रकाश और अप्रकाश के बीच झूलना और इसीलिए क्रिया-रूप, रजस् है; मोह, प्रकाश का अभाव, तमस् है। ये तीनों भोग्य-रूप हैं। इस तरह क्षुब्ध प्रधान से आगे के कार्य पैदा होते हैं, अक्षुब्ध से नहीं। इसलिए बीच में क्षोभ अवश्य मानना पड़ेगा, और यों सांख्य से अनदेखा, अलग गुण-तत्त्व सिद्ध होता है। प्रकृति का वह क्षोभ तत्त्वेश के अधिष्ठान से ही होता है; नहीं तो वह किसी नियत पुरुष के लिए है, यह सिद्ध न होता।

पदपाठ यत्र सुखं भोग्य-रूप-प्रकाशः सत्त्वम् — जिसमें सुख, भोग्य-रूप का प्रकाश, सत्त्व है · दुःखं प्रकाश-अप्रकाश-आन्दोलन-आत्मकम् — दुःख, प्रकाश और अप्रकाश के बीच झूलना · अतः एव क्रिया-रूपं रजः — और इसीलिए क्रिया-रूप, रजस् है · मोहः प्रकाश-अभाव-रूपः तमः — मोह, प्रकाश का अभाव, तमस् है · त्रितयम् अपि एतत् भोग्य-रूपम् — ये तीनों भोग्य-रूप हैं · एवं क्षुब्धात् प्रधानात् कर्तव्य-अन्तर-उदयः — इस तरह क्षुब्ध प्रधान से आगे के कार्य पैदा होते हैं · न अक्षुब्धात् इति — अक्षुब्ध से नहीं · क्षोभः अवश्यम् एव अन्तराले अभ्युपगन्तव्यः इति — इसलिए बीच में क्षोभ अवश्य मानना पड़ेगा · सिद्धं सांख्य-अपरिदृष्टं पृथक्-भूतं गुण-तत्त्वम् — और यों सांख्य से अनदेखा, अलग गुण-तत्त्व सिद्ध होता है · सः च क्षोभः प्रकृतेः तत्त्व-ईश-अधिष्ठानात् एव — और प्रकृति का वह क्षोभ तत्त्वेश के अधिष्ठान से ही होता है · अन्यथा नियतं पुरुषं प्रति इति न सिध्येत् — नहीं तो वह किसी नियत पुरुष के लिए है, यह सिद्ध न होता

ततो गुणतत्त्वात् बुद्धितत्त्वं यत्र पुंप्रकाशो विषयश्च प्रतिबिम्बम् अर्पयतः । बुद्धितत्त्वात् अहङ्कारो येन बुद्धिप्रतिबिम्बिते वेद्यसंपर्के कलुषे पुंप्रकाशे अनात्मनि आत्माभिमानः शुक्तौ रजताभिमानवत् ।

३२.२०

अत एव कार इत्यनेन कृतकत्वम् अस्य उक्तं, सांख्यस्य तु तत् न युज्यते, स हि न आत्मनोऽहंविमर्शमयताम् इच्छति, वयं तु कर्तृत्वमपि तस्य इच्छामः । तच्च शुद्धं विमर्श एव अप्रतियोगि स्वात्मचमत्काररूपोऽहमिति ।

फिर गुण-तत्त्व से बुद्धि-तत्त्व, जिसमें पुरुष का प्रकाश और विषय दोनों प्रतिबिम्ब डालते हैं। बुद्धि-तत्त्व से अहंकार, जिससे बुद्धि में प्रतिबिम्बित, वेद्य के संपर्क से मैले पुरुष-प्रकाश में — जो आत्मा नहीं है उसमें — आत्मा का अभिमान होता है, जैसे सीप में चाँदी का भ्रम। इसीलिए "कार" शब्द से इसका बनाया हुआ होना कहा गया। पर सांख्य के लिए यह ठीक नहीं बैठता, क्योंकि वह आत्मा को "अहम्"-विमर्श-मय नहीं मानता; हम तो उसमें कर्तृत्व भी मानते हैं। और वह शुद्ध "अहम्" विमर्श ही है, जिसका कोई प्रतियोगी नहीं — अपने आत्मा के चमत्कार-रूप "अहम्"।

पदपाठ ततः गुण-तत्त्वात् बुद्धि-तत्त्वम् — फिर गुण-तत्त्व से बुद्धि-तत्त्व · यत्र पुं-प्रकाशः विषयः च प्रतिबिम्बम् अर्पयतः — जिसमें पुरुष का प्रकाश और विषय दोनों प्रतिबिम्ब डालते हैं · बुद्धि-तत्त्वात् अहङ्कारः — बुद्धि-तत्त्व से अहंकार · येन बुद्धि-प्रतिबिम्बिते वेद्य-संपर्के कलुषे पुं-प्रकाशे — जिससे बुद्धि में प्रतिबिम्बित, वेद्य के संपर्क से मैले पुरुष-प्रकाश में · अनात्मनि आत्म-अभिमानः — जो आत्मा नहीं है उसमें आत्मा का अभिमान होता है · शुक्तौ रजत-अभिमानवत् — जैसे सीप में चाँदी का भ्रम · अतः एव कारः इति अनेन कृतकत्वम् अस्य उक्तम् — इसीलिए "कार" शब्द से इसका बनाया हुआ होना कहा गया · सांख्यस्य तु तत् न युज्यते — पर सांख्य के लिए यह ठीक नहीं बैठता · सः हि न आत्मनः अहं-विमर्श-मयताम् इच्छति — क्योंकि वह आत्मा को "अहम्"-विमर्श-मय नहीं मानता · वयं तु कर्तृत्वम् अपि तस्य इच्छामः — हम तो उसमें कर्तृत्व भी मानते हैं · तत् च शुद्धं विमर्शः एव अप्रतियोगि — और वह शुद्ध विमर्श ही है, जिसका कोई प्रतियोगी नहीं · स्व-आत्म-चमत्कार-रूपः अहम् इति — अपने आत्मा के चमत्कार-रूप "अहम्"

एषोऽस्य अहङ्कारस्य करणस्कन्धः ।
प्रकृतिस्कन्धस्तु तस्यैव त्रिविधः सत्त्वादिभेदात् ।
तत्र सात्त्विको यस्मात् मनश्च बुद्धीन्द्रियपञ्चकं च, तत्र मनसि जन्ये
सर्वतन्मात्रजननसामर्थ्ययुक्तः स जनकः ।
श्रोत्रे तु शब्दजननसामर्थ्यविशिष्ट इति, यावत् घ्राणे गन्धजननयोग्यतायुक्त ३२.२१
इति, भौतिकमपि न युक्तम् 'अहं शृणोमि' इत्याद्यनुगमाच्च स्फुटम्
आहङ्कारिकत्वम्, करणत्वेन च अवश्यं कर्त्रंशस्पर्शित्वम्, अन्यथा
करणान्तरयोजनायाम् अनवस्थाद्यापातात् ।

यह इस अहंकार का करण-स्कन्ध है। उसी का प्रकृति-स्कन्ध सत्त्व आदि के भेद से तीन तरह का है। उनमें सात्त्विक वह है जिससे मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ निकलती हैं। जब मन पैदा होता है, तब वह जनक सब तन्मात्रों को पैदा करने की सामर्थ्य वाला होता है; श्रोत्र के लिए वह शब्द पैदा करने की सामर्थ्य से युक्त है; और यों घ्राण तक, जहाँ वह गन्ध पैदा करने की योग्यता वाला है। इन्द्रियों को भौतिक कहना भी ठीक नहीं: "मैं सुनता हूँ" आदि में "मैं" के अनुगत होने से वे स्पष्ट ही अहंकार से बने हैं। करण होने से उन्हें कर्ता-अंश को छूना ही होगा; नहीं तो किसी और करण से जोड़ने में अनवस्था आदि दोष आ पड़ेंगे।

पदपाठ एषः अस्य अहङ्कारस्य करण-स्कन्धः — यह इस अहंकार का करण-स्कन्ध है · प्रकृति-स्कन्धः तु तस्य एव त्रिविधः सत्त्व-आदि-भेदात् — उसी का प्रकृति-स्कन्ध सत्त्व आदि के भेद से तीन तरह का है · तत्र सात्त्विकः यस्मात् मनः च बुद्धि-इन्द्रिय-पञ्चकं च — उनमें सात्त्विक वह है जिससे मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ निकलती हैं · तत्र मनसि जन्ये सर्व-तन्मात्र-जनन-सामर्थ्य-युक्तः सः जनकः — जब मन पैदा होता है, तब वह जनक सब तन्मात्रों को पैदा करने की सामर्थ्य वाला होता है · श्रोत्रे तु शब्द-जनन-सामर्थ्य-विशिष्टः इति — श्रोत्र के लिए वह शब्द पैदा करने की सामर्थ्य से युक्त है · यावत् घ्राणे गन्ध-जनन-योग्यता-युक्तः इति — और यों घ्राण तक, जहाँ वह गन्ध पैदा करने की योग्यता वाला है · भौतिकम्

अपि न युक्तम् — इन्द्रियों को भौतिक कहना भी ठीक नहीं · **'अहं शृणोमि' इति आदि अनुगमात् च स्फुटम् आहङ्कारिकत्वम्** — "मैं सुनता हूँ" आदि में "मैं" के अनुगत होने से वे स्पष्ट ही अहंकार से बने हैं · **करणत्वेन च अवश्यं कर्तृ-अंश-स्पर्शित्वम्** — और करण होने से उन्हें कर्ता-अंश को छूना ही होगा · **अन्यथा करण-अन्तर-योजनायाम् अनवस्था-आदि-आपातात्** — नहीं तो किसी और करण से जोड़ने में अनवस्था आदि दोष आ पड़ेंगे

कर्त्रंशश्च अहङ्कार एव, तेन मुख्ये करणे द्वे पुंसः, ज्ञाने विद्या, क्रियायां कला, अन्धस्य पङ्गोश्च अहन्तारूपज्ञानक्रियानपगमात्, उद्रिक्ततन्मात्रभागविशिष्टात् तु सात्त्विकादेव अहंकारात् कर्मेन्द्रियपञ्चकम् 'अहं गच्छामि' इति अहङ्कारविशिष्टः कार्यकरणक्षमः पादेन्द्रियं, तस्य मुख्याधिष्ठानं बाह्यम् ३२.२२ **अन्यत्रापि तदस्त्येव इति रुग्णस्यापि न गतिविच्छेदः ।**
न च कर्तव्यसांकर्यमुक्तादेव हेतोः क्रिया करणकार्या, मुख्यं च गमनादीनां क्रियात्वं न रूपाद्युपलम्भस्य, तस्य काणादतन्त्रे गुणत्वात्, तस्मात् अवश्याभ्युपेयः कर्मेन्द्रियवर्गः ।

और कर्ता-अंश अहंकार ही है। इसलिए पुरुष के दो मुख्य करण हैं: ज्ञान में विद्या, क्रिया में कला — क्योंकि अंधे और लँगड़े में भी "मैं"-रूप ज्ञान और क्रिया नहीं जाते। पर तन्मात्र-भाग के बढ़ जाने से विशिष्ट उसी सात्त्विक अहंकार से पाँच कर्मेन्द्रियाँ निकलती हैं। पाद-इन्द्रिय वह है जो "मैं चलता हूँ" इस अहंकार से युक्त होकर अपना काम कर सकती है; उसका मुख्य अधिष्ठान बाहरी अंग है, पर वह और जगह भी है ही, इसलिए अपाहिज की भी गति पूरी तरह नहीं रुकती। और कहे हुए कारण से ही कामों का घालमेल भी नहीं होता। क्रिया करण से होती है; और चलना आदि ही मुख्य रूप से क्रिया हैं, रूप आदि का बोध नहीं, क्योंकि कणाद के तन्त्र में वह गुण है। इसलिए कर्मेन्द्रियों का वर्ग अवश्य मानना चाहिए।

पदपाठ कर्तृ-अंशः च अहङ्कारः एव — और कर्ता-अंश अहंकार ही है · तेन मुख्ये करणे द्वे पुंसः — इसलिए पुरुष के दो मुख्य करण हैं · ज्ञाने विद्या क्रियायां कला — ज्ञान में विद्या, क्रिया में कला · अन्धस्य पङ्गोः च अहन्ता-रूप-ज्ञान-क्रिया-अनपगमात् — क्योंकि अंधे और लँगड़े में भी "मैं"-रूप ज्ञान और क्रिया नहीं जाते · उद्रिक्त-तन्मात्र-भाग-विशिष्टात् तु सात्त्विकात् एव अहङ्कारात् — पर तन्मात्र-भाग के बढ़ जाने से विशिष्ट उसी सात्त्विक अहंकार से · कर्म-इन्द्रिय-पञ्चकम् — पाँच कर्मेन्द्रियाँ निकलती हैं · 'अहं गच्छामि' इति अहङ्कार-विशिष्टः कार्य-करण-क्षमः पाद-इन्द्रियम् — पाद-इन्द्रिय वह है जो "मैं चलता हूँ" इस

अहंकार से युक्त होकर अपना काम कर सकती है · **तस्य मुख्य-अधिष्ठानं बाह्यम्** — उसका मुख्य अधिष्ठान बाहरी अंग है · **अन्यत्र अपि तत् अस्ति एव इति** — पर वह और जगह भी है ही · **रुग्णस्य अपि न गति-विच्छेदः** — इसलिए अपाहिज की भी गति पूरी तरह नहीं रुकती · **न च कर्तव्य-सांकर्यम् उक्तात् एव हेतोः** — और कहे हुए कारण से ही कामों का घालमेल भी नहीं होता · **क्रिया करण-कार्या** — क्रिया करण से होती है · **मुख्यं च गमन-आदीनां क्रियात्वं न रूप-आदि-उपलम्भस्य** — और चलना आदि ही मुख्य रूप से क्रिया हैं, रूप आदि का बोध नहीं · **तस्य काणाद-तन्त्रे गुणत्वात्** — क्योंकि कणाद के तन्त्र में वह गुण है · **तस्मात् अवश्य-अभ्युपेयः कर्म-इन्द्रिय-वर्गः** — इसलिए कर्मेन्द्रियों का वर्ग अवश्य मानना चाहिए

स च पञ्चकः अनुसन्धेस्तावत्त्वात् ।

तथाहि बहिस्तावत्त्यागाय वा अनुसन्धिः आदानाय वा द्वयाय वा, उभयरहितत्वेन स्वरूपविश्रान्तये वा, तत्र क्रमेण पायुः पाणिः पाद् उपस्थ इति ।

अन्तः प्राणाश्रयकर्मानुसन्धेस्तु वागिन्द्रियम्, तेन इन्द्रियाधिष्ठाने हस्ते यत् गमनं तदपि पादेन्द्रियस्यैव कर्म इति मन्तव्यम्, तेन कर्मानन्त्यमपि न इन्द्रियानन्त्यम् आवहेत्, इयति राजसस्य उपश्लेषकत्वम् इत्याहुः ।

अन्ये तु राजसान्मन इत्याहुः ।

अन्ये तु सात्त्विकात् मनो राजसाच्च इन्द्रियाणि इति ।

वह वर्ग पाँच का है क्योंकि अनुसन्धान उतने ही तरह का है। क्योंकि बाहर की ओर अनुसन्धान या तो त्याग के लिए होता है, या ग्रहण के लिए, या दोनों के लिए, या दोनों से रहित होकर अपने स्वरूप में विश्राम के लिए; इनके लिए क्रम से पायु, हाथ, पैर और उपस्थ हैं। भीतर प्राण के आश्रय वाले कर्म के अनुसन्धान के लिए वाक्-इन्द्रिय है। इसलिए दूसरी इन्द्रिय के अधिष्ठान हाथ में जो चलना है, उसे भी पाद-इन्द्रिय का ही काम मानना चाहिए; यों कर्मों की अनन्तता इन्द्रियों की अनन्तता नहीं लाती। इतने में राजस अहंकार सहायक है, ऐसा वे कहते हैं। दूसरे कहते हैं कि मन राजस अहंकार से है; और दूसरे कहते हैं कि मन सात्त्विक से और इन्द्रियाँ राजस से हैं।

पदपाठ सः च पञ्चकः अनुसन्धेः तावत्त्वात् — और वह वर्ग पाँच का है क्योंकि अनुसन्धान उतने ही तरह का है · तथाहि बहिः तावत् त्यागाय वा अनुसन्धिः — क्योंकि बाहर की ओर अनुसन्धान या तो त्याग के लिए होता है · आदानाय वा द्वयाय वा — या ग्रहण के लिए, या दोनों के लिए · उभय-रहितत्वेन स्वरूप-विश्रान्तये वा — या दोनों से रहित होकर अपने स्वरूप में विश्राम के लिए · तत्र क्रमेण पायुः पाणिः पाद्

उपस्थः इति — इनके लिए क्रम से पायु, हाथ, पैर और उपस्थ हैं · अन्तः प्राण-आश्रय-कर्म-अनुसन्धेः तु वाक्-इन्द्रियम् — और भीतर प्राण के आश्रय वाले कर्म के अनुसन्धान के लिए वाक्-इन्द्रिय है · तेन इन्द्रिय-अधिष्ठाने हस्ते यत् गमनम् — इसलिए दूसरी इन्द्रिय के अधिष्ठान हाथ में जो चलना है · तत् अपि पाद-इन्द्रियस्य एव कर्म इति मन्तव्यम् — उसे भी पाद-इन्द्रिय का ही काम मानना चाहिए · तेन कर्म-आनन्त्यम् अपि न इन्द्रिय-आनन्त्यम् आवहेत् — इसलिए कर्मों की अनन्तता इन्द्रियों की अनन्तता नहीं लाती · इयति राजसस्य उपश्लेषकत्वम् इति आहुः — इतने में राजस अहंकार सहायक है, ऐसा वे कहते हैं · अन्ये तु राजसात् मनः इति आहुः — दूसरे कहते हैं कि मन राजस अहंकार से है · अन्ये तु सात्त्विकात् मनः राजसात् च इन्द्रियाणि इति — और दूसरे कहते हैं कि मन सात्त्विक से और इन्द्रियाँ राजस से हैं

भोक्त्रंशाच्छादकात् तु तमःप्रधानाहंकारात् तन्मात्राणि वेद्यैकरूपाणि पञ्च ।
शब्दविशेषाणां हि क्षोभात्मनां यदेकम् अक्षोभात्मकं प्राग्भावि सामान्यम् ३२.२४
अविशेषात्मकं तत् शब्दतन्मात्रं ।
एवं गन्धान्तेऽपि वाच्यं ।

पर भोक्ता-अंश को ढकने वाले तमः-प्रधान अहंकार से पाँच तन्मात्र निकलते हैं, जो केवल वेद्य-रूप हैं। क्योंकि क्षोभ-रूप विशेष शब्दों का जो एक, अक्षुब्ध, पहले से रहने वाला, विशेष-रहित सामान्य है — वह शब्द-तन्मात्र है। यही गन्ध तक भी कहना चाहिए।

पदपाठ भोक्तृ-अंश-आच्छादकात् तु तमः-प्रधान-अहङ्कारात् — पर भोक्ता-अंश को ढकने वाले तमः-प्रधान अहंकार से · तन्मात्राणि वेद्य-एक-रूपाणि पञ्च — पाँच तन्मात्र निकलते हैं, जो केवल वेद्य-रूप हैं · शब्द-विशेषाणां हि क्षोभ-आत्मनाम् — क्योंकि क्षोभ-रूप विशेष शब्दों का · यत् एकम् अक्षोभ-आत्मकं प्राग्भावि सामान्यम् अविशेष-आत्मकम् — जो एक, अक्षुब्ध, पहले से रहने वाला, विशेष-रहित सामान्य है · तत् शब्द-तन्मात्रम् — वह शब्द-तन्मात्र है · एवं गन्ध-अन्ते अपि वाच्यम् — यही गन्ध तक भी कहना चाहिए

तत्र शब्दतन्मात्रात् क्षुभितात् अवकाशदानव्यापारं नभः—शब्दस्य वाच्याध्यासावकाशसहत्वात् ।
शब्दतन्मात्रं क्षुभितं वायुः शब्दस्तु अस्य नभसा विरहाभावात् ।
रूपं क्षुभितं तेजः पूर्वगुणौ तु पूर्ववत् । ३२.२५
रसः क्षुभित आपः पूर्वे त्रयः पूर्ववत् ।
गन्धः क्षुभितो धरा पूर्वे चत्वारः पूर्ववत् ।
अन्ये शब्दस्पर्शाभ्यां वायुः, इत्यादिक्रमेण पञ्चभ्यो धरणी इति मन्यन्ते ।

उनमें क्षुब्ध शब्द-तन्मात्र से आकाश होता है, जिसका काम जगह देना है — क्योंकि शब्द अर्थ के आरोप के लिए जगह देता है। क्षुब्ध शब्द-तन्मात्र वायु है; और शब्द उसका है, क्योंकि वह आकाश से कभी अलग नहीं। क्षुब्ध रूप तेज है, और पहले के दो गुण पहले की तरह। क्षुब्ध रस जल है; पहले के तीन पहले की तरह। क्षुब्ध गन्ध धरा है; पहले के चार पहले की तरह। दूसरे मानते हैं कि वायु शब्द और स्पर्श से है, और इसी क्रम से पाँचों से धरणी है।

पदपाठ तत्र शब्द-तन्मात्रात् क्षुभितात् — उनमें क्षुब्ध शब्द-तन्मात्र से · अवकाश-दान-व्यापारं नभः — आकाश होता है, जिसका काम जगह देना है · शब्दस्य वाच्य-अध्यास-अवकाश-सहत्वात् — क्योंकि शब्द अर्थ के आरोप के लिए जगह देता है · शब्द-तन्मात्रं क्षुभितं वायुः — क्षुब्ध शब्द-तन्मात्र वायु है · शब्दः तु अस्य नभसा विरह-अभावात् — और शब्द उसका है, क्योंकि वह आकाश से कभी अलग नहीं · रूपं क्षुभितं तेजः — क्षुब्ध रूप तेज है · पूर्व-गुणौ तु पूर्ववत् — और पहले के दो गुण पहले की तरह · रसः क्षुभितः आपः — क्षुब्ध रस जल है · पूर्वे त्रयः पूर्ववत् — पहले के तीन पहले की तरह · गन्धः क्षुभितः धरा — क्षुब्ध गन्ध धरा है · पूर्वे चत्वारः पूर्ववत् — पहले के चार पहले की तरह · अन्ये शब्द-स्पर्शाभ्यां वायुः — दूसरे मानते हैं कि वायु शब्द और स्पर्श से है · इति आदि-क्रमेण पञ्चभ्यः धरणी इति मन्यन्ते — और इसी क्रम से पाँचों से धरणी है

गुणसमुदायमात्रं च पृथिवी, नान्यो गुणी कश्चित् ।
अस्मिंश्च तत्त्वकलापे ऊर्ध्वोर्ध्वगुणं व्यापकं, निकृष्टगुणं तु व्याप्यं ।
स एव गुणस्य उत्कर्षो—यत् तेन विना गुणान्तरं न उपपद्यते, तेन पृथिवीतत्त्वं
शिवतत्त्वात् प्रभृति जलतत्त्वेन व्याप्तम्, एवं जलं तेजसा इत्यादि
यावच्छक्तितत्त्वम् ॥

पृथिवी केवल गुणों का समूह है; कोई अलग गुणी नहीं है। इस तत्त्व-समूह में ऊपर-ऊपर के गुण वाला व्यापक है और नीचे के गुण वाला व्याप्य है। गुण की श्रेष्ठता यही है कि उसके बिना दूसरा गुण नहीं हो सकता। इसलिए पृथिवी-तत्त्व शिव-तत्त्व से लेकर जल-तत्त्व तक से व्याप्त है; इसी तरह जल तेज से, और यों शक्ति-तत्त्व तक।

पदपाठ गुण-समुदाय-मात्रं च पृथिवी — और पृथिवी केवल गुणों का समूह है · न अन्यः गुणी कश्चित् — कोई अलग गुणी नहीं है · अस्मिन् च तत्त्व-कलापे — और इस तत्त्व-समूह में · ऊर्ध्व-ऊर्ध्व-गुणं व्यापकम् — ऊपर-ऊपर के गुण वाला व्यापक है · निकृष्ट-गुणं तु व्याप्यम् — और नीचे के गुण वाला व्याप्य है · सः एव गुणस्य उत्कर्षः — और गुण की श्रेष्ठता यही है · यत् तेन विना गुण-अन्तरं न उपपद्यते — कि उसके बिना दूसरा गुण नहीं हो सकता · तेन पृथिवी-तत्त्वं शिव-तत्त्वात् प्रभृति जल-तत्त्वेन व्याप्तम् — इसलिए पृथिवी-तत्त्व शिव-तत्त्व से लेकर जल-तत्त्व तक से व्याप्त है · एवं जलं तेजसा इति आदि यावत् शक्ति-तत्त्वम् — इसी तरह जल तेज से, और यों शक्ति-तत्त्व तक

भूतानि तन्मात्रगणेन्द्रियाणि
मूलं पुमान्कञ्चुकयुक्सुशुद्धम् ।
विद्यादिशक्त्यन्तमियान्खसंवित्-
सिन्धोस्तरङ्गप्रसरप्रकारः ॥ ३२

भूत, तन्मात्रों का समूह और इन्द्रियाँ, मूल प्रकृति, कञ्चुकों से युक्त पुरुष, और विद्या से शक्ति तक के पूरी तरह शुद्ध स्तर — यह सब चित्-आकाश रूपी समुद्र की लहरों के फैलाव का रूप है।

पदपाठ भूतानि — भूत · तन्मात्र-गण-इन्द्रियाणि — तन्मात्रों का समूह और इन्द्रियाँ · मूलम् — मूल प्रकृति · पुमान् — पुरुष · कञ्चुक-युक् — कञ्चुकों से युक्त · सुशुद्धम् — पूरी तरह शुद्ध · विद्या-आदि-शक्ति-अन्तम् — विद्या से शक्ति तक · इयान् — यह सब · ख-संवित्-सिन्धोः — चित्-आकाश रूपी समुद्र का · तरङ्ग-प्रसर-प्रकारः — लहरों के फैलाव का रूप है

सअलतच्चपरिउण्णउ
सअलतच्चउत्तिण्णउ ।
परिआणहअत्ताणउ
परमसिवेण समाणउ ॥ ३२.२७

अपने आत्मा को, जो सब तत्त्वों से परिपूर्ण और सब तत्त्वों से परे है, परमशिव के समान पहचानो।

पदपाठ सअलतच्चपरिउण्णउ — सब तत्त्वों से परिपूर्ण · सअलतच्चउत्तिण्णउ — और सब तत्त्वों से परे · परिआणह अत्ताणउ — अपने आत्मा को पहचानो · परमसिवेण समाणउ — परमशिव के समान

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे तत्त्वस्वरूपप्रकाशनं नामाष्टममाह्निकम् ॥ ८ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में तत्त्वस्वरूपप्रकाशन नामक आठवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

नवममाह्निकम्

तत्त्वभेदप्रकाशनम्

तत्त्वों का वर्णन करने के बाद अब आचार्य बताते हैं कि हर तत्त्व के कितने भेद हैं। हर तत्त्व सात प्रकार के प्रमाताओं — शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र, विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल — और उनकी सात शक्तियों से जाना जाता है; इसलिए पृथ्वी से प्रकृति तक हर तत्त्व के पन्द्रह रूप हैं — उसका अपना शुद्ध रूप और चौदह अन्य। सकल से ऊपर की ओर सात शक्तियाँ गिनाई जाती हैं और यह दिखाया जाता है कि प्रमाता केवल शक्तियों के कारण भिन्न दिखते हैं, क्योंकि सचमुच चित् की स्वतन्त्रता के आनन्द में विश्रान्त प्रमाता एक ही है। "वेद्य होना" अनवस्था में ले जाता है — इस आपत्ति का उत्तर दिया जाता है: वस्तु का रूप वही है जो प्रमाता और उसकी शक्ति में विश्रान्त है, और वह स्वयं प्रकाशित होता है। पुरुष से कला तक तत्त्वों के तेरह रूप हैं, और इसी तरह नीचे उतरते हुए शिव तक, जिसमें कोई भेद नहीं। तत्त्वों का यही भेद भुवनों की विचित्रता पैदा करता है। फिर पृथ्वी को उदाहरण बनाकर उसके पन्द्रह रूप गिनाए जाते हैं, धरा-शिव से धरा-सकल तक। इसके बाद एक प्रमाता के भीतर का भेद: वस्तु को ग्रहण करता हुआ प्राण सोलह तुटियों में उठता है, अविभक्त पहली से वेद्य में लीन अन्तिम तक; बीच की बारह का विश्लेषण होता है, विकल्प घटने पर तुटियाँ घटती हैं, और शिव-समावेश में केवल दो रह जाती हैं; हर स्तर का अभ्यास अपनी सिद्धि देता है। फिर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्य और तुर्यातीत अवस्थाएँ इस आधार पर परिभाषित होती हैं कि वेद्य कैसे भासता है — अधिष्ठेय रूप में, अधिष्ठान रूप में, बीज रूप में, पूर्णता की ओर उन्मुख प्रमाता रूप में, और सबको समेटे पूर्ण रूप में; योगियों और प्रसंख्यान वालों के दिए नाम भी बताए जाते हैं और पन्द्रह से तीन तक के भेदों में इनका मेल दिखाया जाता है। समापन श्लोक कहता है कि किसी भी तत्त्व में प्रमाता का कोई स्थिर शरीर नहीं होता, इसलिए निर्विकल्प अहन्ता की भूमि में बसकर अपनी आत्मसत्ता पा लो।

— अथ तत्त्वानां भेदो निरूप्यते —

स च सप्तधा षडर्धशास्त्र एव परं परमेशेन उक्तः ।

तत्र शिवाः मन्त्रमहेशाः मन्त्रेशाः मन्त्राः विज्ञानाकलाः प्रलयाकलाः सकला इति सप्त शक्तिमन्तः । ३३.१

एषां सप्तैव शक्तयः, तद्भेदात् पृथिव्यादिप्रधानतत्त्वान्तं चतुर्दशभिर्भेदैः प्रत्येकं स्वं रूपं पञ्चदशम् ।

वह भेद सात प्रकार का है, और परमेश्वर ने उसे केवल त्रिक-शास्त्र में ही कहा है। उनमें शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र, विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल — ये सात शक्तिमान् हैं। इनकी शक्तियाँ भी सात ही हैं। उस भेद से पृथ्वी से प्रधान-तत्त्व तक हर तत्त्व के चौदह भेद होते हैं, और उसका अपना रूप पन्द्रहवाँ है।

पदपाठ सः च सप्तधा — और वह भेद सात प्रकार का है · षडर्ध-शास्त्रे एव परं परमेशेन उक्तः — परमेश्वर ने केवल त्रिक-शास्त्र में ही कहा है · तत्र शिवाः मन्त्रमहेशाः मन्त्रेशाः मन्त्राः — उनमें शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र · विज्ञानाकलाः प्रलयाकलाः सकलाः इति — विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल · सप्त शक्तिमन्तः — ये सात शक्तिमान् हैं · एषां सप्त एव शक्तयः — इनकी शक्तियाँ भी सात ही हैं · तत्-भेदात् — उस भेद से · पृथिवी-आदि-प्रधान-तत्त्व-अन्तम् — पृथ्वी से प्रधान-तत्त्व तक · चतुर्दशभिः भेदैः — चौदह भेदों के साथ · प्रत्येकं स्वं रूपं पञ्चदशम् — हर एक का अपना रूप पन्द्रहवाँ है

तत्र स्वं रूपं प्रमेयतायोग्यं स्वात्मनिष्ठम्—अपराभट्टारिकानुग्रहात्, प्रमातृषु उद्रिक्तशक्तिषु यत् विश्रान्तिभाजनं तत् तस्यैव शाक्तं रूपं श्रीमत्परापरानुग्रहात् ।

तच्च सप्तविधं शक्तीनां तावत्त्वात् । ३३.२

शक्तिमद्रूपप्रधाने तु प्रमातृवर्गे यत् विश्रान्तं तच्छक्तिमच्छिवरूपं श्रीमत्पराभट्टारिकानुग्रहात्, तदपि सप्तविधं—प्रमातृणां शिवात्प्रभृति सकलान्तानां तावताम् उक्तत्वात् ।

उनमें उसका अपना रूप, जो प्रमेय होने योग्य और अपने में स्थित है, भगवती अपरा के अनुग्रह से होता है। जिन प्रमाताओं में शक्ति बढ़ी हुई है, उनमें जो विश्रान्ति पाता है, वह उसी तत्त्व का शाक्त रूप है, श्रीमती परापरा के अनुग्रह से; और वह सात प्रकार का है, क्योंकि शक्तियाँ उतनी ही हैं। पर जिस प्रमातृ-वर्ग में शक्तिमान् का रूप प्रधान है, उसमें जो विश्रान्त है, वह उसका शक्तिमान् शिव-रूप है, श्रीमती भगवती परा के अनुग्रह से। वह भी सात प्रकार का है, क्योंकि शिव से सकल तक प्रमाता उतने ही कहे गए हैं।

पदपाठ तत्र स्वं रूपं प्रमेयता-योग्यं स्व-आत्म-निष्ठम् — उनमें उसका अपना रूप प्रमेय होने योग्य और अपने में स्थित है · अपरा-भट्टारिका-अनुग्रहात् — भगवती अपरा के अनुग्रह से · प्रमातृषु उद्रिक्त-शक्तिषु — जिन प्रमाताओं में शक्ति बढ़ी हुई है, उनमें · यत् विश्रान्ति-भाजनम् — जो विश्रान्ति पाता है · तत् तस्य एव शाक्तं रूपम् — वह उसी तत्त्व का शाक्त रूप है · श्रीमत्-परापरा-अनुग्रहात् — श्रीमती परापरा के अनुग्रह से · तत् च सप्तविधम् — और वह सात प्रकार का है · शक्तीनां तावत्त्वात् — क्योंकि शक्तियाँ उतनी ही हैं · शक्तिमत्-रूप-प्रधाने तु प्रमातृ-वर्गे — पर जिस प्रमातृ-वर्ग में शक्तिमान् का रूप प्रधान है, उसमें · यत् विश्रान्तम् — जो विश्रान्त है · तत् शक्तिमत् शिव-रूपम् — वह उसका शक्तिमान् शिव-रूप है · श्रीमत्-परा-भट्टारिका-अनुग्रहात् — श्रीमती भगवती परा के अनुग्रह से · तत् अपि सप्तविधम् — वह भी सात प्रकार का है · प्रमातृणां शिवात् प्रभृति सकल-अन्तानां तावताम् उक्तत्वात् — क्योंकि शिव से सकल तक प्रमाता उतने ही कहे गए हैं

तत्र शक्तिभेदादेव प्रमातृणां भेदः, स च स्फुटीकरणार्थं सकलादिक्रमेण भण्यते, तत्र सकलस्य विद्याकले शक्तिः तद्विशेषरूपत्वात् बुद्धिकर्माक्षशक्तीनां, प्रलयाकलस्य तु ते एव निर्विषयत्वात् अस्फुटे । विज्ञानाकलस्य ते एव विगलत्कल्पे तत्संस्कारसचिवा प्रबुध्यमाना शुद्धविद्या मन्त्रस्य । ३३.३

तत्संस्कारहीना सैव प्रबुद्धा मन्त्रेशस्य ।

सैव इच्छाशक्तिरूपतां स्वातन्त्र्यस्वभावां जिघृक्षन्ती मन्त्रमहेश्वरस्य ।

इच्छात्मिका स्फुटस्वातन्त्र्यात्मिका शिवस्य इति शक्तिभेदाः सप्त मुख्याः ।

यहाँ शक्तियों के भेद से ही प्रमाताओं का भेद है, और उसे स्पष्ट करने के लिए सकल से आरम्भ करके क्रम से कहा जाता है। सकल की शक्ति विद्या और कला हैं, क्योंकि बुद्धि, कर्म और इन्द्रियों की शक्तियाँ उन्हीं के विशेष रूप हैं। प्रलयाकल के लिए वे ही दोनों निर्विषय होने से अस्पष्ट हैं। विज्ञानाकल के लिए वे प्रायः गल चुकी हैं; उनके संस्कार के साथ जागती हुई शुद्धविद्या मन्त्र की शक्ति है। वही, उन संस्कारों से रहित और पूरी जगी हुई, मन्त्रेश्वर की शक्ति है। वही, स्वातन्त्र्य-स्वभाव वाली इच्छाशक्ति का रूप लेने को उद्यत, मन्त्रमहेश्वर की शक्ति है। इच्छा-रूप, स्पष्ट स्वातन्त्र्य-रूप होकर वह शिव की शक्ति है। ये शक्ति के सात मुख्य भेद हैं।

पदपाठ तत्र शक्ति-भेदात् एव प्रमातृणां भेदः — यहाँ शक्तियों के भेद से ही प्रमाताओं का भेद है · सः च स्फुटीकरण-अर्थं सकल-आदि-क्रमेण भण्यते — और उसे स्पष्ट करने के लिए सकल से आरम्भ करके क्रम से कहा जाता है · तत्र सकलस्य विद्या-कले शक्तिः — उनमें सकल की शक्ति विद्या और कला हैं · तत्-विशेष-रूपत्वात् बुद्धि-कर्म-अक्ष-शक्तीनाम् — क्योंकि बुद्धि, कर्म और इन्द्रियों की शक्तियाँ उन्हीं के विशेष रूप हैं · प्रलयाकलस्य तु ते एव निर्विषयत्वात् अस्फुटे — प्रलयाकल के लिए वे ही दोनों निर्विषय होने से अस्पष्ट हैं · विज्ञानाकलस्य ते एव विगलत्-कल्पे — विज्ञानाकल के लिए वे ही दोनों प्रायः गल चुकी हैं · तत्-संस्कार-सचिवा प्रबुध्यमाना शुद्धविद्या मन्त्रस्य — उनके संस्कार के साथ जागती हुई

शुद्धविद्या मन्त्र की शक्ति है · तत्-संस्कार-हीना सा एव प्रबुद्धा मन्त्रेशस्य — वही, उन संस्कारों से रहित और पूरी जगी हुई, मन्त्रेश्वर की शक्ति है · सा एव इच्छा-शक्ति-रूपतां स्वातन्त्र्य-स्वभावां जिघृक्षन्ती मन्त्रमहेश्वरस्य — वही, स्वातन्त्र्य-स्वभाव वाली इच्छाशक्ति का रूप लेने को उद्यत, मन्त्रमहेश्वर की शक्ति है · इच्छा-आत्मिका स्फुट-स्वातन्त्र्य-आत्मिका शिवस्य — इच्छा-रूप, स्पष्ट स्वातन्त्र्य-रूप होकर वह शिव की शक्ति है · इति शक्ति-भेदाः सप्त मुख्याः — ये शक्ति के सात मुख्य भेद हैं

तदुपरागकृतश्च शक्तिमत्सु प्रमातृषु भेदः—करणभेदस्य कर्तृभेदपर्यवसानात्, शक्तेरेव च अव्यतिरिक्तायाः करणीकर्तुं शक्यत्वात् न अन्यस्य— अनवस्थाद्यापत्तेः । ३३.४

और शक्तिमान् प्रमाताओं में भेद उन्हीं शक्तियों के रंग से होता है, क्योंकि करण का भेद कर्ता के भेद में जाकर ठहरता है, और क्योंकि केवल शक्ति ही, जो कर्ता से अलग नहीं है, करण बनाई जा सकती है — और कुछ नहीं, क्योंकि अनवस्था आदि दोष आ पड़ेंगे।

पदपाठ तत्-उपराग-कृतः च शक्तिमत्सु प्रमातृषु भेदः — और शक्तिमान् प्रमाताओं में भेद उन्हीं शक्तियों के रंग से होता है · करण-भेदस्य कर्तृ-भेद-पर्यवसानात् — क्योंकि करण का भेद कर्ता के भेद में जाकर ठहरता है · शक्तेः एव च अव्यतिरिक्तायाः करणीकर्तुं शक्यत्वात् — और क्योंकि केवल शक्ति ही, जो उससे अलग नहीं, करण बनाई जा सकती है · न अन्यस्य — और कुछ नहीं · अनवस्था-आदि-आपत्तेः — क्योंकि अनवस्था आदि दोष आ पड़ेंगे

वस्तुतः पुनरेक एव चित्स्वातन्त्र्यानन्दविश्रान्तः प्रमाता, तत्र पृथिवी स्वरूपमात्रविश्रान्ता यदा वेद्यते तदा स्वरूपम् अस्याः केवलं भाति चैत्रचक्षुर्दृष्टं चैत्रविदितं जानामीति, तत्र सकलशक्तिकृतं सकलशक्तिमद्रूपकृतं स्वरूपान्तरं भात्येव, एवं शिवान्तमपि वाच्यं, शिवशक्तिनिष्ठं शिवस्वभावविश्रान्तं च विश्वं जानामि इति प्रत्ययस्य विलक्षणस्य भावात् ।

पर सचमुच प्रमाता एक ही है, जो चित् की स्वतन्त्रता के आनन्द में विश्रान्त है। उसमें जब पृथ्वी केवल अपने रूप में विश्रान्त जानी जाती है, तब केवल उसका अपना रूप भासता है। पर "चैत्र की आँख से देखा, चैत्र का जाना हुआ — ऐसा मैं जानता हूँ" — इसमें सकल की शक्ति से और सकल के शक्तिमान् रूप से बना एक और रूप भासता ही है। यही शिव तक कहना चाहिए, क्योंकि "शिव की शक्ति में और शिव के स्वभाव में विश्रान्त विश्व को मैं जानता हूँ" — ऐसा अलग प्रत्यय होता है।

पदपाठ वस्तुतः पुनः एकः एव प्रमाता — पर सचमुच प्रमाता एक ही है · चित्-स्वातन्त्र्य-आनन्द-विश्रान्तः — चित् की स्वतन्त्रता के आनन्द में विश्रान्त · तत्र पृथिवी स्वरूप-मात्र-विश्रान्ता यदा वेद्यते — उसमें जब पृथ्वी केवल अपने रूप में विश्रान्त जानी जाती है · तदा स्वरूपम् अस्याः केवलं भाति — तब केवल उसका अपना रूप भासता है · चैत्र-चक्षुः-दृष्टं चैत्र-विदितं जानामि इति — "चैत्र की आँख से देखा, चैत्र का जाना हुआ — ऐसा मैं जानता हूँ" · तत्र सकल-शक्ति-कृतं सकल-शक्तिमत्-रूप-कृतं स्वरूप-अन्तरं भाति एव — वहाँ सकल की शक्ति से और सकल के शक्तिमान् रूप से बना एक और रूप भासता ही है · एवं शिव-अन्तम् अपि वाच्यम् — यही शिव तक कहना चाहिए · शिव-शक्ति-निष्ठं शिव-स्वभाव-विश्रान्तं च विश्वं जानामि इति — "शिव की शक्ति में और शिव के स्वभाव में विश्रान्त विश्व को मैं जानता हूँ" · प्रत्ययस्य विलक्षणस्य भावात् — क्योंकि ऐसा अलग प्रत्यय होता है

ननु भावस्य चेत् वेद्यता स्वं वपुः तत्सर्वान्प्रति वेद्यत्वं, वेद्यत्वमपि वेद्यम् इत्यनवस्था, तया च जगतोऽन्धसुप्तत्वं सुप्रकाशमेव, तया च वेद्यत्वावेद्यत्वे विरुद्धधर्मयोग इति दोषः? अत्र उच्यते—न तत् स्वं वपुः स्वरूपस्य पृथगुक्तत्वात्, किं तर्हि तत् प्रमातृशक्तौ प्रमातरि च यत् विश्रान्तिभाजनं यत् रूपं तत् खलु तत्, तत् स्वप्रकाशमेव तत् प्रकाशते न तु किंचिदपि प्रति इति सर्वज्ञत्वम् अनवस्थाविरुद्धधर्मयोगश्च इति दूरापास्तम् । ३३.६

"पर यदि वेद्य होना वस्तु का अपना शरीर है, तो वह सबके लिए वेद्य होगी; वेद्यता भी वेद्य होगी — यह अनवस्था है; उससे जगत् का अन्धा और सोया होना स्पष्ट ही है; और उससे वेद्य और अवेद्य दोनों होना विरुद्ध धर्मों का योग है — क्या यह दोष नहीं?" इस पर कहा जाता है: वह वस्तु का अपना शरीर नहीं है, क्योंकि उसका स्वरूप अलग कहा गया है। तो क्या है? वह तो वही रूप है जो प्रमाता की शक्ति में और प्रमाता में विश्रान्ति पाता है। वह स्वप्रकाश होकर ही प्रकाशित होता है, किसी के लिए नहीं। इस प्रकार सबके लिए वेद्य होना, अनवस्था और विरुद्ध धर्मों का योग — ये सब दूर हट गए।

पदपाठ ननु भावस्य चेत् वेद्यता स्वं वपुः — पर यदि वेद्य होना वस्तु का अपना शरीर है · तत् सर्वान् प्रति वेद्यत्वम् — तो वह सबके लिए वेद्य होगी · वेद्यत्वम् अपि वेद्यम् इति अनवस्था — और वेद्यता भी वेद्य होगी — यह अनवस्था है · तया च जगतः अन्ध-सुप्तत्वं सुप्रकाशम् एव — और उससे जगत् का अन्धा और सोया होना स्पष्ट ही है · तया च वेद्यत्व-अवेद्यत्वे विरुद्ध-धर्म-योगः इति दोषः — और उससे वेद्य और अवेद्य दोनों होना विरुद्ध धर्मों का योग है — यह दोष है · अत्र उच्यते — इस पर कहा जाता है · न तत् स्वं वपुः स्वरूपस्य पृथक् उक्तत्वात् — वह वस्तु का अपना शरीर नहीं है, क्योंकि उसका स्वरूप अलग कहा गया है · किं तर्हि — तो क्या है? · तत् प्रमातृ-शक्तौ प्रमातरि च यत् विश्रान्ति-भाजनं यत् रूपं तत् खलु तत् — वह तो वही रूप है जो प्रमाता की शक्ति में और प्रमाता में विश्रान्ति पाता है · तत् स्व-प्रकाशम् एव तत् प्रकाशते — वह स्वप्रकाश होकर ही प्रकाशित होता है · न तु किंचित् अपि प्रति — किसी के लिए नहीं · इति सर्वज्ञत्वम् अनवस्था-विरुद्ध-धर्म-योगः च इति दूर-अपास्तम् — इस प्रकार सबके लिए वेद्य होना, अनवस्था और विरुद्ध धर्मों का योग — ये सब दूर हट गए

अनन्तप्रमातृसंवेद्यमपि एकमेव तत् तस्य रूपं तावति तेषामेकाभासरूपत्वात् इति न प्रमात्रन्तरसंवेदनानुमानविघ्नः कश्चित्, तच्च तस्य रूपं सत्यम् अर्थक्रियाकारित्वात् तथैव, परदृश्यमानां कान्तां दृष्ट्वा तस्यै समीर्ष्यति, शिवस्वभावं विश्रान्तिकुम्भं पश्यन् समाविशति समस्तानन्तप्रमातृविश्रान्तं वस्तु पश्यन् पूर्णीभवति नर्तकीप्रेक्षणवत्, तस्यैव नीलस्य तद्रूपं प्रमातरि यत् विश्रान्तं तथैव स्वप्रकाशस्य विमर्शस्योदयात्—इति पञ्चदशात्मकत्वं पृथिव्याः प्रभृति प्रधानतत्त्वपर्यन्तम् ।

अनन्त प्रमाताओं से जाना जाकर भी वस्तु का वह रूप एक ही है, क्योंकि उतने में वे सब एक ही आभास-रूप हैं; इसलिए दूसरे प्रमाताओं के संवेदन के अनुमान में कोई बाधा नहीं। और वस्तु का वह रूप सत्य है, क्योंकि वह वैसे ही अर्थक्रिया करता है: दूसरे से देखी जाती प्रिया को देखकर मनुष्य उसके लिए ईर्ष्या करता है; शिव-स्वभाव में विश्रान्त घड़े को देखता हुआ वह समावेश पाता है; समस्त अनन्त प्रमाताओं में विश्रान्त वस्तु को देखता हुआ वह पूर्ण हो जाता है, जैसे नर्तकी को देखते समय। क्योंकि उसी नीले का वह रूप जो प्रमाता में विश्रान्त है, वैसा ही स्वप्रकाश विमर्श होकर उदित होता है। इस प्रकार पृथ्वी से प्रधान-तत्त्व तक हर तत्त्व पन्द्रह रूपों वाला है।

पदपाठ अनन्त-प्रमातृ-संवेद्यम् अपि एकम् एव तत् तस्य रूपम् — अनन्त प्रमाताओं से जाना जाकर भी वस्तु का वह रूप एक ही है · तावति तेषाम् एक-आभास-रूपत्वात् — क्योंकि उतने में वे सब एक ही आभास-रूप हैं · इति न प्रमातृ-अन्तर-संवेदन-अनुमान-विघ्नः कश्चित् — इसलिए दूसरे प्रमाताओं के संवेदन के अनुमान में कोई बाधा नहीं · तत् च तस्य रूपं सत्यम् अर्थ-क्रिया-कारित्वात् तथा एव — और वस्तु का वह रूप सत्य है, क्योंकि वह वैसे ही अर्थक्रिया करता है · पर-दृश्यमानां कान्तां दृष्ट्वा तस्यै समीर्ष्यति — दूसरे से देखी जाती प्रिया को देखकर वह उसके लिए ईर्ष्या करता है · शिव-स्वभावं विश्रान्ति-कुम्भं पश्यन् समाविशति — शिव-स्वभाव में विश्रान्त घड़े को देखता हुआ वह समावेश पाता

है · समस्त-अनन्त-प्रमातृ-विश्रान्तं वस्तु पश्यन् पूर्णीभवति — समस्त अनन्त प्रमाताओं में विश्रान्त वस्तु को देखता हुआ वह पूर्ण हो जाता है · नर्तकी-प्रेक्षण-वत् — जैसे नर्तकी को देखते समय · तस्य एव नीलस्य तत्-रूपं प्रमातरि यत् विश्रान्तम् — उसी नीले का वह रूप जो प्रमाता में विश्रान्त है · तथा एव स्व-प्रकाशस्य विमर्शस्य उदयात् — क्योंकि वैसा ही स्वप्रकाश विमर्श उदित होता है · इति पञ्चदश-आत्मकत्वं पृथिव्याः प्रभृति प्रधान-तत्त्व-पर्यन्तम् — इस प्रकार पृथ्वी से प्रधान-तत्त्व तक हर तत्त्व पन्द्रह रूपों वाला है

तावत्युद्रिक्तरागादिकञ्चुकस्य सकलस्य प्रमातृत्वात्; सकलस्यापि एवं पाञ्चदश्यं तस्यापि तावद्वेद्यत्वात् । ३३.८
वितत्य चैतत् निर्णीतं तन्त्रालोके ।

क्योंकि उतने में राग आदि कञ्चुकों से बढ़ा हुआ सकल ही प्रमाता है; और सकल का भी इसी तरह पन्द्रहपन है, क्योंकि वह भी उतने में वेद्य है। यह तन्त्रालोक में विस्तार से निर्णीत है।

पदपाठ तावति उद्रिक्त-राग-आदि-कञ्चुकस्य सकलस्य प्रमातृत्वात् — क्योंकि उतने में राग आदि कञ्चुकों से बढ़ा हुआ सकल ही प्रमाता है · सकलस्य अपि एवं पाञ्चदश्यम् — सकल का भी इसी तरह पन्द्रहपन है · तस्य अपि तावत् वेद्यत्वात् — क्योंकि वह भी उतने में वेद्य है · वितत्य च एतत् निर्णीतं तन्त्रालोके — और यह तन्त्रालोक में विस्तार से निर्णीत है

पुंसः प्रभृति कलातत्त्वान्तं त्रयोदशधा—सकलस्य तत्र प्रमातृतायोगेन तच्छक्तिशक्तिमदात्मनो भेदद्वयस्य प्रत्यस्तमयात्, तथा च सकलस्य स्वरूपत्वमेव केवलं, प्रलयाकलस्य स्वरूपत्वे पञ्चानां प्रमातृत्वे एकादश भेदाः ।

विज्ञानाकलस्य स्वरूपत्वे चतुर्णां प्रमातृत्वे नव भेदाः । ३३.९

मन्त्रस्य स्वरूपत्वे त्रयाणां प्रमातृत्वे सप्त ।

मन्त्रेशस्य स्वरूपत्वे द्वयोः प्रमातृत्वे पञ्च ।

मन्त्रमहेशस्य स्वरूपत्वे भगवत एकस्यैव प्रमातृत्वे शक्तिशक्तिमद्भेदात् त्रयः ।

शिवस्य तु प्रकाशैकचित्स्वातन्त्र्यनिर्भरस्य न कोऽपि भेदः परिपूर्णत्वात् ।

पुरुष से कला-तत्त्व तक तेरह रूप हैं, क्योंकि वहाँ सकल प्रमाता नहीं रहता, इसलिए उसकी शक्ति और शक्तिमान् रूप के दो भेद अस्त हो गए, और सकल का केवल स्वरूप ही रहता है। जहाँ प्रलयाकल स्वरूप है और पाँच प्रमाता हैं, वहाँ ग्यारह भेद हैं। जहाँ विज्ञानाकल स्वरूप है और चार प्रमाता हैं, वहाँ नौ भेद। जहाँ मन्त्र स्वरूप है और तीन प्रमाता हैं, वहाँ सात। जहाँ मन्त्रेश्वर स्वरूप है और दो प्रमाता हैं, वहाँ पाँच। जहाँ मन्त्रमहेश्वर स्वरूप है और केवल भगवान् प्रमाता हैं, वहाँ शक्ति और शक्तिमान् के भेद से तीन। पर शिव में, जो केवल प्रकाशरूप चित् की स्वतन्त्रता से भरे हैं, कोई भेद नहीं, क्योंकि वे परिपूर्ण हैं।

पदपाठ पुंसः प्रभृति कला-तत्त्व-अन्तं त्रयोदशधा — पुरुष से कला-तत्त्व तक तेरह रूप हैं · सकलस्य तत्र प्रमातृता-अयोगेन — क्योंकि वहाँ सकल प्रमाता नहीं रहता · तत्-शक्ति-शक्तिमत्-आत्मनः भेद-द्वयस्य प्रत्यस्तमयात् — इसलिए उसकी शक्ति और शक्तिमान् रूप के दो भेद अस्त हो गए · तथा च सकलस्य स्वरूपत्वम् एव केवलम् — और इस तरह सकल का केवल स्वरूप ही रहता है · प्रलयाकलस्य स्वरूपत्वे पञ्चानां प्रमातृत्वे एकादश भेदाः — जहाँ प्रलयाकल स्वरूप है और पाँच प्रमाता हैं, वहाँ ग्यारह भेद हैं · विज्ञानाकलस्य स्वरूपत्वे चतुर्णां प्रमातृत्वे नव भेदाः — जहाँ विज्ञानाकल स्वरूप है और चार प्रमाता हैं,

वहाँ नौ भेद · **मन्त्रस्य स्वरूपत्वे त्रयाणां प्रमातृत्वे सप्त** — जहाँ मन्त्र स्वरूप है और तीन प्रमाता हैं, वहाँ सात · **मन्त्रेशस्य स्वरूपत्वे द्वयोः प्रमातृत्वे पञ्च** — जहाँ मन्त्रेश्वर स्वरूप है और दो प्रमाता हैं, वहाँ पाँच · **मन्त्रमहेशस्य स्वरूपत्वे भगवतः एकस्य एव प्रमातृत्वे** — जहाँ मन्त्रमहेश्वर स्वरूप है और केवल भगवान् प्रमाता हैं · **शक्ति-शक्तिमत्-भेदात् त्रयः** — शक्ति और शक्तिमान् के भेद से तीन · **शिवस्य तु प्रकाश-एक-चित्-स्वातन्त्र्य-निर्भरस्य** — पर शिव में, जो केवल प्रकाशरूप चित् की स्वतन्त्रता से भरे हैं · **न कः अपि भेदः परिपूर्णत्वात्** — कोई भेद नहीं, क्योंकि वे परिपूर्ण हैं

एवम् अयं तत्त्वभेद एव परमेश्वरानुत्तरनयैकाख्ये निरूपितः भुवनभेदवैचित्र्यं करोति, नरकस्वर्गरुद्रभुवनानां पार्थिवत्वे समानेऽपि दूरतरस्य स्वभावभेदस्य उक्तत्वात् ।

३३.१०

अत्र च परस्परं भेदकलनया अवान्तरभेदज्ञानकुतूहली तन्त्रालोकमेव अवधारयेत् ।

एवम् एकैकघटाद्यनुसारेणापि पृथिव्यादीनां तत्त्वानां भेदो निरूपितः ।

इस प्रकार तत्त्वों का यही भेद, जो परमेश्वर के अनुत्तर नय नामक एक ही मत में बताया गया है, भुवनों के भेद की विचित्रता पैदा करता है; क्योंकि नरक, स्वर्ग और रुद्र-भुवन पार्थिव होने में समान होने पर भी उनमें बहुत बड़ा स्वभाव-भेद कहा गया है। यहाँ जो आपस के भेद की गणना से अवान्तर भेदों को जानने का उत्सुक हो, वह तन्त्रालोक को ही समझे। इस प्रकार एक-एक घड़े आदि के अनुसार भी पृथ्वी आदि तत्त्वों का भेद बता दिया गया।

पदपाठ एवम् अयं तत्त्व-भेदः एव — इस प्रकार तत्त्वों का यही भेद · परमेश्वर-अनुत्तर-नय-एक-आख्ये निरूपितः — परमेश्वर के अनुत्तर नय नामक एक ही मत में बताया गया · भुवन-भेद-वैचित्र्यं करोति — भुवनों के भेद की विचित्रता पैदा करता है · नरक-स्वर्ग-रुद्र-भुवनानां पार्थिवत्वे समाने अपि — क्योंकि नरक, स्वर्ग और रुद्र-भुवन पार्थिव होने में समान होने पर भी · दूरतरस्य स्वभाव-भेदस्य उक्तत्वात् — उनमें बहुत बड़ा स्वभाव-भेद कहा गया है · अत्र च परस्परं भेद-कलनया — और यहाँ आपस के भेद की गणना से · अवान्तर-भेद-ज्ञान-कुतूहली — जो अवान्तर भेदों को जानने का उत्सुक हो · तन्त्रालोकम् एव अवधारयेत् — वह तन्त्रालोक को ही समझे · एवम् एक-एक-घट-आदि-अनुसारेण अपि — इस प्रकार एक-एक घड़े आदि के अनुसार भी · पृथिवी-आदीनां तत्त्वानां भेदः निरूपितः — पृथ्वी आदि तत्त्वों का भेद बता दिया गया

अधुना समस्तं पृथिवीतत्त्वं प्रमातृप्रमेयरूपम् उद्दिश्य निरूप्यते—यो धरातत्त्वाभेदेन प्रकाशः स शिवः ।

यथा श्रुतिः 'पृथिव्येवेदं ब्रह्म' इति ।

धरातत्त्वसिद्धिप्रदान् प्रेरयति स धरामन्त्रमहेश्वरः, प्रेर्यो धरामन्त्रेशः, तस्यैवाभिमानिकविग्रहतात्मको वाचको मन्त्रः,

सांख्यादिपाशवविद्योत्तीर्णशिवविद्याक्रमेण अभ्यस्तपार्थिवयोगोऽप्राप्तध्रुवपदः धराविज्ञानाकलः । ३३.११

पाशवविद्याक्रमेण अभ्यस्तपार्थिवयोगः कल्पान्ते मरणे वा धराप्रलयकेवलः । सौषुप्ते हि तत्त्वावेशवशादेव चित्रस्य स्वप्नस्य उदयः स्यात्, गृहीतधराभिमानस्तु धरासकलः ।

अत्रापि शक्त्युद्रेकन्यग्भावाभ्यां चतुर्दशत्वम् इति प्रमातृतापन्नस्य धरातत्त्वस्य भेदाः, स्वरूपं तु शुद्धं प्रमेयम् इति, एवम् अपरत्रापि ।

अब समूचे पृथ्वी-तत्त्व को प्रमाता और प्रमेय दोनों रूपों में लेकर बताया जाता है। जो प्रकाश धरा-तत्त्व से अभिन्न है, वह शिव है — जैसे श्रुति कहती है, "यह पृथ्वी ही ब्रह्म है"। जो धरा-तत्त्व की सिद्धि देने वालों को प्रेरित करता है, वह धरा-मन्त्रमहेश्वर है; जो प्रेरित होता है, वह धरा-मन्त्रेश्वर है; उसी का वाचक, जो उसका अभिमान से लिया हुआ शरीर है, मन्त्र है। जिसने सांख्य आदि पाशव विद्याओं से ऊपर उठी शिव-विद्या के क्रम से पार्थिव योग का अभ्यास किया पर ध्रुव पद नहीं पाया, वह धरा-विज्ञानाकल है। जिसने पाशव विद्या के क्रम से पार्थिव योग का अभ्यास किया, वह कल्प के अन्त में या मृत्यु में धरा-प्रलयाकल है; क्योंकि सुषुप्ति में तत्त्व के आवेश से ही विचित्र स्वप्न उठ सकता है। जिसने "मैं धरा हूँ" यह अभिमान ले लिया, वह धरा-

सकल है। यहाँ भी शक्ति के उद्रेक और न्यग्भाव से चौदहपन है: ये प्रमाता बने हुए धरा-तत्त्व के भेद हैं, और उसका स्वरूप शुद्ध प्रमेय है। ऐसा ही अन्यत्र भी।

पदपाठ अधुना समस्तं पृथिवी-तत्त्वं प्रमातृ-प्रमेय-रूपम् उद्दिश्य निरूप्यते — अब समूचे पृथ्वी-तत्त्व को प्रमाता और प्रमेय दोनों रूपों में लेकर बताया जाता है · यः धरा-तत्त्व-अभेदेन प्रकाशः सः शिवः — जो प्रकाश धरा-तत्त्व से अभिन्न है, वह शिव है · यथा श्रुतिः पृथिवी एव इदं ब्रह्म इति — जैसे श्रुति कहती है, "यह पृथ्वी ही ब्रह्म है" · धरा-तत्त्व-सिद्धि-प्रदान् प्रेरयति सः धरा-मन्त्रमहेश्वरः — जो धरा-तत्त्व की सिद्धि देने वालों को प्रेरित करता है, वह धरा-मन्त्रमहेश्वर है · प्रेर्यः धरा-मन्त्रेशः — जो प्रेरित होता है, वह धरा-मन्त्रेश्वर है · तस्य एव आभिमानिक-विग्रहता-आत्मकः वाचकः मन्त्रः — उसी का वाचक, जो उसका अभिमान से लिया हुआ शरीर है, मन्त्र है · सांख्य-आदि-पाशव-विद्या-उत्तीर्ण-शिव-विद्या-क्रमेण — सांख्य आदि पाशव विद्याओं से ऊपर उठी शिव-विद्या के क्रम से · अभ्यस्त-पार्थिव-योगः अप्राप्त-ध्रुव-पदः धरा-विज्ञानाकलः — जिसने पार्थिव योग का अभ्यास किया पर ध्रुव पद नहीं पाया, वह धरा-विज्ञानाकल है · पाशव-विद्या-क्रमेण अभ्यस्त-पार्थिव-योगः — जिसने पाशव विद्या के क्रम से पार्थिव योग का अभ्यास किया · कल्प-अन्ते मरणे वा धरा-प्रलय-केवलः — वह कल्प के अन्त में या मृत्यु में धरा-प्रलयाकल है · सौषुप्ते हि तत्त्व-आवेश-वशात् एव चित्रस्य स्वप्नस्य उदयः स्यात् — क्योंकि सुषुप्ति में तत्त्व के आवेश से ही विचित्र स्वप्न उठ सकता है · गृहीत-धरा-अभिमानः तु धरा-सकलः — जिसने "मैं धरा हूँ" यह अभिमान ले लिया, वह धरा-सकल है · अत्र अपि शक्ति-उद्रेक-न्यग्भावाभ्यां चतुर्दशत्वम् — यहाँ भी शक्ति के उद्रेक और न्यग्भाव से चौदहपन है · इति प्रमातृता-आपन्नस्य धरा-तत्त्वस्य भेदाः — ये प्रमाता बने हुए धरा-तत्त्व के भेद हैं · स्वरूपं तु शुद्धं प्रमेयम् इति — और उसका स्वरूप शुद्ध प्रमेय है · एवम् अपरत्र अपि — ऐसा ही अन्यत्र भी

अथ एकस्मिन् प्रमातरि प्राणप्रतिष्ठिततया भेदनिरूपणम्—इह नीलं गृह्णतः प्राणः तुटिषोडशकात्मा वेद्यावेशपर्यन्तम् उदेति, तत्र आद्या तुटिरविभागैकरूपा, द्वितीया ग्राहकोल्लासरूपा, अन्त्या तु ग्राह्याभिन्ना तन्मयी, उपान्त्या तु स्फुटीभूतग्राहकरूपा, मध्ये तु यत् तुटिद्वादशकं तन्मध्यात् आद्यं षट्कं निर्विकल्पस्वभावं विकल्पाच्छादकं, षट्त्वं च अस्य स्वरूपेण एका तुटिः, आच्छादनीये च विकल्पे पञ्चरूपत्वम्, उन्मिमिषा उन्मिषत्ता, सा च इयं ३.१२
स्फुटक्रियारूपत्वात् तुटिद्वयात्मिका—स्पन्दनस्य एकक्षणरूपत्वाभावात्, उन्मिषितता स्वकार्यकर्तृत्वं च इत्येवमाच्छादनीयविकल्पपाञ्चविध्यात् स्वरूपाच्च षट् क्षणा निर्विकल्पकाः, ततोऽपि निर्विकल्पस्य ध्वंसमानता, ध्वंसो विकल्पस्य, उन्मिमिषा उन्मिषत्ता तुटिद्वयात्मिका उन्मिषितता च इति षट् तुटयः ।

अब एक ही प्रमाता में, प्राण में प्रतिष्ठित रूप से, भेद का निरूपण। यहाँ नीले को ग्रहण करते हुए प्राण, जो सोलह तुटियों का बना है, वेद्य में प्रवेश तक उठता है। उनमें पहली तुटि अविभक्त एकरूप है; दूसरी ग्राहक के उल्लास-रूप है; अन्तिम ग्राह्य से अभिन्न, उसी से बनी है; उससे पहले वाली स्पष्ट हुए ग्राहक के रूप की है। बीच की बारह तुटियों में से पहली छह निर्विकल्प स्वभाव की हैं और विकल्प को ढकती हैं। इसका छहपन यों है: अपने रूप से एक तुटि, और ढके जाने वाले विकल्प में पाँच रूप — खुलने की इच्छा; खुलना, जो स्पष्ट क्रिया-रूप होने से दो तुटियों का है, क्योंकि स्पन्दन एक क्षण का नहीं होता; खुल चुकना; और अपना कार्य करना। इस प्रकार ढके जाने वाले विकल्प के पाँच रूपों और अपने रूप से छह निर्विकल्प क्षण होते हैं। फिर निर्विकल्प का नष्ट होते जाना, विकल्प का नाश, खुलने की इच्छा, दो तुटियों का खुलना, और खुल चुकना — ये छह तुटियाँ और हैं।

पदपाठ अथ एकस्मिन् प्रमातरि प्राण-प्रतिष्ठिततया भेद-निरूपणम् — अब एक ही प्रमाता में, प्राण में प्रतिष्ठित रूप से, भेद का निरूपण · इह नीलं गृह्णतः प्राणः तुटि-षोडशक-आत्मा — यहाँ नीले को ग्रहण करते हुए प्राण, जो सोलह तुटियों का बना है · वेद्य-आवेश-पर्यन्तम् उदेति — वेद्य में प्रवेश तक उठता है · तत्र आद्या तुटिः अविभाग-एक-रूपा — उनमें पहली तुटि अविभक्त एकरूप है · द्वितीया ग्राहक-उल्लास-रूपा — दूसरी ग्राहक के उल्लास-रूप है · अन्त्या तु ग्राह्य-अभिन्ना तत्-मयी — अन्तिम ग्राह्य से अभिन्न, उसी से बनी है · उपान्त्या तु स्फुटीभूत-ग्राहक-रूपा — उससे पहले वाली स्पष्ट हुए ग्राहक के रूप की है · मध्ये तु यत् तुटि-द्वादशकं तत्-मध्यात् आद्यं षट्कम् — बीच की बारह तुटियों में से पहली छह · निर्विकल्प-स्वभावं विकल्प-आच्छादकम् — निर्विकल्प स्वभाव की हैं और विकल्प को ढकती हैं · षट्त्वं च अस्य स्वरूपेण एका तुटिः — और इसका छहपन यों है: अपने रूप से एक तुटि · आच्छादनीये च विकल्पे पञ्च-रूपत्वम् — और ढके जाने वाले विकल्प में पाँच रूप · उन्मिषा उन्मिषत्ता — खुलने की इच्छा, खुलना · सा च इयं स्फुट-क्रिया-रूपत्वात् तुटि-द्वय-आत्मिका — और यह खुलना, स्पष्ट क्रिया-रूप होने से, दो तुटियों का है · स्पन्दनस्य एक-क्षण-रूपत्व-अभावात् — क्योंकि स्पन्दन एक क्षण का नहीं होता · उन्मिषितता स्व-कार्य-कर्तृत्वं च — खुल चुकना, और अपना कार्य करना · इति एवम् आच्छादनीय-विकल्प-पाञ्चविध्यात् स्वरूपात् च षट् क्षणाः निर्विकल्पकाः — इस प्रकार ढके जाने वाले विकल्प के पाँच रूपों और अपने रूप से छह निर्विकल्प क्षण · ततः अपि निर्विकल्पस्य ध्वंसमानता — फिर निर्विकल्प का नष्ट होते जाना · ध्वंसः विकल्पस्य — विकल्प का नाश · उन्मिषा उन्मिषत्ता तुटि-द्वय-आत्मिका उन्मिषितता च — खुलने की इच्छा, दो तुटियों का खुलना, और खुल चुकना · इति षट् तुटयः — ये छह तुटियाँ हैं

स्वकार्यकर्तृता तु ग्राहकरूपता इति उक्तं न सा भूयो गण्यते, इत्येवं विवेकधना गुरूपदेशानुशीलिनः सर्वत्र पाञ्चदश्यं प्रविभागेन विविञ्चते । ३३.१३

विकल्पन्यूनत्वे तु तुटिन्यूनता सुखादिसंवित्ताविव यावत् अविकल्पतैव ।

अपना कार्य करना तो ग्राहक का रूप है, यह कहा जा चुका, इसलिए वह फिर से नहीं गिनी जाती। इस प्रकार विवेक के धनी, गुरु के उपदेश का अनुशीलन करने वाले, सब जगह पन्द्रहपन को विभाग करके पहचानते हैं। पर विकल्प के घटने पर तुटियाँ घटती हैं, जैसे सुख आदि के संवेदन में, यहाँ तक कि केवल निर्विकल्पता ही रह जाए।

पदपाठ स्व-कार्य-कर्तृता तु ग्राहक-रूपता इति उक्तम् — अपना कार्य करना तो ग्राहक का रूप है, यह कहा जा चुका · न सा भूयः गण्यते — इसलिए वह फिर से नहीं गिनी जाती · इति एवं विवेक-धनाः गुरु-उपदेश-अनुशीलिनः — इस प्रकार विवेक के धनी, गुरु के उपदेश का अनुशीलन करने वाले · सर्वत्र पाञ्चदश्यं प्रविभागेन विविञ्चते — सब जगह पन्द्रहपन को विभाग करके पहचानते हैं · विकल्प-न्यूनत्वे तु तुटि-न्यूनता — पर विकल्प के घटने पर तुटियाँ घटती हैं · सुख-आदि-संवित्तौ इव — जैसे सुख आदि के संवेदन में · यावत् अविकल्पता एव — यहाँ तक कि केवल निर्विकल्पता ही रह जाए

लोकास्तु विकल्पविश्रान्त्या ताम् अहन्तामयीम् अहन्ताच्छादितेदंभावविकल्पप्रसरां निर्विकल्पां विमर्शभुवम् अप्रकाशितामिव मन्यन्ते—दुःखावस्थां सुखविश्रान्ता इव, विकल्पनिर्ह्रासेन तु सा प्रकाशत एव इति इयम् असौ संबन्धे ग्राह्यग्राहकयोः सावधानता इति अभिनवगुप्तगुरवः । ३३.१४

पर लोग, विकल्प में विश्रान्त होने के कारण, उस अहन्ता-मय निर्विकल्प विमर्श-भूमि को — जिसमें "यह"-भाव के विकल्पों का फैलाव अहन्ता से ढका है — मानो अप्रकाशित समझते हैं, जैसे सुख में विश्रान्त लोग दुःख की अवस्था को। पर विकल्प के घट जाने पर वह प्रकाशित होती ही है। यही वह ग्राह्य और ग्राहक के सम्बन्ध में सावधानता है — ऐसा गुरु अभिनवगुप्त कहते हैं।

पदपाठ लोकाः तु विकल्प-विश्रान्त्या — पर लोग, विकल्प में विश्रान्त होने के कारण · ताम् अहन्ता-मयीं निर्विकल्पां विमर्श-भुवम् — उस अहन्ता-मय निर्विकल्प विमर्श-भूमि को · अहन्ता-आच्छादित-इदंभाव-विकल्प-प्रसराम् — जिसमें "यह"-भाव के विकल्पों का फैलाव अहन्ता से ढका है · अप्रकाशिताम् इव मन्यन्ते — मानो अप्रकाशित समझते हैं · दुःख-अवस्थां सुख-विश्रान्ताः इव — जैसे सुख में विश्रान्त लोग दुःख की अवस्था को · विकल्प-निर्ह्रासेन तु सा प्रकाशते एव — पर विकल्प के घट जाने पर वह प्रकाशित होती ही है · इति इयम् असौ संबन्धे ग्राह्य-ग्राहकयोः सावधानता — यही वह ग्राह्य और ग्राहक के सम्बन्ध में सावधानता है · इति अभिनवगुप्त-गुरवः — ऐसा गुरु अभिनवगुप्त कहते हैं

एवं च पाञ्चदश्ये स्थिते यावत् स्फुटेदन्तात्मनो भेदस्य न्यूनता तावत् द्वयं द्वयं ह्रसति यावत् द्वितुटिकः शिवावेशः, तत्र आद्या तुटिः सर्वतः पूर्णा, द्वितीया सर्वज्ञानकरणाविष्टाभ्यस्यमाना सर्वज्ञत्वसर्वकर्तृत्वाय कल्पते न तु आद्या । यदाह श्रीकल्लटः 'तुटिपात इति' अत्र पातशब्दं सैव भगवती श्रीमत्काली मातृसद्भावो भैरवः प्रतिभा इत्यलं रहस्यारहस्यनेन । ३३.१५

एवं मन्त्रमहेशतुटेः प्रभृति तत्तदभ्यासात् तत्तत्सिद्धिः ।

और इस प्रकार पन्द्रहपन के स्थिर होने पर, जितना-जितना स्पष्ट "यह"-पन रूप भेद घटता है, उतना-उतना दो-दो घटता जाता है, यहाँ तक कि शिव-समावेश दो तुटियों का रह जाता है। उनमें पहली तुटि सब ओर से पूर्ण है; दूसरी, सब ज्ञान और करणों से व्याप्त, अभ्यास की जाए तो सर्वज्ञता और सर्वकर्तृता देती है — पहली नहीं। जैसा श्रीकल्लट कहते हैं, "तुटिपात": यहाँ "पात" शब्द का अर्थ वही भगवती श्रीमत्काली है — मातृसद्भाव, भैरव, प्रतिभा। बस, रहस्य को खोलना बहुत हुआ। इसी तरह मन्त्रमहेश्वर की तुटि से लेकर जिस-जिस के अभ्यास से वह-वह सिद्धि होती है।

पदपाठ एवं च पाञ्चदश्ये स्थिते — और इस प्रकार पन्द्रहपन के स्थिर होने पर · यावत् स्फुट-इदन्ता-आत्मनः भेदस्य न्यूनता — जितना-जितना स्पष्ट "यह"-पन रूप भेद घटता है · तावत् द्वयं द्वयं ह्रसति — उतना-उतना दो-दो घटता जाता है · यावत् द्वि-तुटिकः शिव-आवेशः — यहाँ तक कि शिव-समावेश दो तुटियों का रह जाता है · तत्र आद्या तुटिः सर्वतः पूर्णा — उनमें पहली तुटि सब ओर से पूर्ण है · द्वितीया सर्व-ज्ञान-करण-आविष्टा अभ्यस्यमाना — दूसरी, सब ज्ञान और करणों से व्याप्त, अभ्यास की जाए तो · सर्वज्ञत्व-सर्वकर्तृत्वाय कल्पते न तु आद्या — सर्वज्ञता और सर्वकर्तृता देती है, पहली नहीं · यत् आह श्रीकल्लटः तुटि-पातः इति — जैसा श्रीकल्लट कहते हैं, "तुटिपात" · अत्र पात-शब्दं सा एव भगवती श्रीमत्-काली — यहाँ "पात" शब्द का अर्थ वही भगवती श्रीमत्काली है · मातृ-सद्भावः भैरवः प्रतिभा — मातृसद्भाव, भैरव, प्रतिभा · इति अलं रहस्य-अरहस्यनेन — बस, रहस्य को खोलना बहुत हुआ · एवं मन्त्रमहेश-तुटेः प्रभृति — इसी तरह मन्त्रमहेश्वर की तुटि से लेकर · तत्-तत्-अभ्यासात् तत्-तत्-सिद्धिः — जिस-जिस के अभ्यास से वह-वह सिद्धि होती है

अथात्रैव जाग्रदाद्यवस्था निरूप्यन्ते,—तत्र वेद्यस्य तद्विषयायाश्च संविदो यत् वैचित्र्यम् अन्योन्यापेक्षं सत् सा अवस्था, न वेद्यस्य केवलस्य न चापि केवलायाः संविदो न चापि पृथक् पृथक् द्वे ।

तत्र यदाधिष्ठेयतया बहीरूपतया भानं तदा जाग्रदवस्था मेये मातरि माने च ।

यदा तु तत्रैव अधिष्ठानरूपतया भानं संकल्पः तदा स्वप्नावस्था । ३३.१६

यदा तु तत्रैव अधिष्ठातृरूपतया बीजात्मतयैव भानं तदा सुषुप्तावस्था ।

इमा एव तिस्रः प्रमेयप्रमाणप्रमात्रवस्थाः प्रत्येकं जाग्रदादिभेदात् चतुर्विधा उक्ताः ।

अब यहीं जाग्रत् आदि अवस्थाएँ बताई जाती हैं। वेद्य का और उस पर लगी संवित् का जो एक-दूसरे पर निर्भर विचित्रता है, वह अवस्था है — केवल वेद्य की नहीं, न केवल संवित् की, न ही दोनों की अलग-अलग दो। जब वह अधिष्ठेय रूप में, बाहरी रूप में भासता है, तब जाग्रत् अवस्था है — प्रमेय, प्रमाता और प्रमाण में। पर जब उसी में वह अधिष्ठान रूप में, संकल्प रूप में भासता है, तब स्वप्न अवस्था है। पर जब उसी में वह अधिष्ठाता रूप में, केवल बीज रूप में भासता है, तब सुषुप्ति अवस्था है। यही तीन प्रमेय, प्रमाण और प्रमाता की अवस्थाएँ हर एक जाग्रत् आदि के भेद से चार प्रकार की कही गई हैं।

पदपाठ अथ अत्र एव जाग्रत्-आदि-अवस्थाः निरूप्यन्ते — अब यहीं जाग्रत् आदि अवस्थाएँ बताई जाती हैं · तत्र वेद्यस्य तत्-विषयायाः च संविदः — उनमें वेद्य का और उस पर लगी संवित् का · यत् वैचित्र्यम् अन्योन्य-अपेक्षं सत् सा अवस्था — जो एक-दूसरे पर निर्भर विचित्रता है, वह अवस्था है · न वेद्यस्य केवलस्य — केवल वेद्य की नहीं · न च अपि केवलायाः संविदः — न केवल संवित् की · न च अपि पृथक् पृथक् द्वे — न ही दोनों की अलग-अलग दो · तत्र यदा अधिष्ठेयतया बहीरूपतया भानम् — उनमें जब वह अधिष्ठेय रूप में, बाहरी रूप में भासता है · तदा जाग्रत्-अवस्था मेये मातरि माने च — तब जाग्रत् अवस्था है — प्रमेय, प्रमाता और प्रमाण में · यदा तु तत्र एव अधिष्ठान-रूपतया भानं संकल्पः — पर जब उसी में

वह अधिष्ठान रूप में, संकल्प रूप में भासता है · **तदा स्वप्न-अवस्था** — तब स्वप्न अवस्था है · **यदा तु तत्र एव अधिष्ठातृ-रूपतया बीज-आत्मतया एव भानम्** — पर जब उसी में वह अधिष्ठाता रूप में, केवल बीज रूप में भासता है · **तदा सुषुप्त-अवस्था** — तब सुषुप्ति अवस्था है · **इमाः एव तिस्रः प्रमेय-प्रमाण-प्रमातृ-अवस्थाः** — यही तीन प्रमेय, प्रमाण और प्रमाता की अवस्थाएँ · **प्रत्येकं जाग्रत्-आदि-भेदात् चतुर्विधाः उक्ताः** — हर एक जाग्रत् आदि के भेद से चार प्रकार की कही गई हैं

यदा तु तस्मिन्नेव प्रमातृविश्रान्तिगते प्रमातुः पूर्णतौन्मुख्यात् तद्द्वारेण पूर्णतोन्मुखतया भानं तदा तुर्यावस्था, सा च रूपं दृशाहमित्येवं-विधम् अंशत्रयम् उत्तीर्य पश्यामीति अनुपायिका प्रमातृता स्वातन्त्र्यसारा, नैकट्यमध्यत्वदूरत्वैः प्रमातृप्रमाणप्रमेयताभिषेकं ददती तदवस्थात्रयानुग्राहकत्वात् त्रिभेदा । ३३.१७

एतदेव अवस्थाचतुष्टयं पिण्डस्थपदस्थरूपस्थरूपातीतशब्दैर्योगिनो व्यवहरन्ति, प्रसंख्यानधनास्तु सर्वतोभद्रं व्याप्तिः महाव्याप्तिः प्रचय इति शब्दैः । अन्वर्थं चात्र दर्शितं तन्त्रालोके श्लोकवार्तिके च । यच्च सर्वान्तर्भूतं पूर्णरूपं तत् तुर्यातीतं सर्वातीतं महाप्रचयं च निरूपयन्ति ।

पर जब उसी में, जो प्रमाता में विश्रान्त हो गया है, प्रमाता के पूर्णता की ओर उन्मुख होने से, उसके द्वारा वह पूर्णता की ओर उन्मुख रूप में भासता है, तब तुर्य अवस्था है। वह है "मैं देखता हूँ" — रूप, दृष्टि और अहम्, इन तीन अंशों को पार करके। यह बिना उपाय की प्रमातृता है, जिसका सार स्वातन्त्र्य है; और निकटता, मध्यता और दूरी से प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय होने का अभिषेक देती हुई, उन तीन अवस्थाओं पर अनुग्रह करने से वह तीन प्रकार की है। इन्हीं चार अवस्थाओं को योगी पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत शब्दों से कहते हैं, और प्रसंख्यान के धनी सर्वतोभद्र, व्याप्ति, महाव्याप्ति और प्रचय शब्दों से। इन नामों की सार्थकता तन्त्रालोक और श्लोकवार्तिक में दिखाई गई है। और जो पूर्ण रूप है जिसमें सब समाया है, उसे तुर्यातीत, सर्वातीत और महाप्रचय कहते हैं।

पदपाठ यदा तु तस्मिन् एव प्रमातृ-विश्रान्ति-गते — पर जब उसी में, जो प्रमाता में विश्रान्त हो गया है · प्रमातुः पूर्णता-औन्मुख्यात् — प्रमाता के पूर्णता की ओर उन्मुख होने से · तत्-द्वारेण पूर्णता-उन्मुखतया भानम् — उसके द्वारा वह पूर्णता की ओर उन्मुख रूप में भासता है · तदा तुर्य-अवस्था — तब

तुर्य अवस्था है · सा च रूपं दृक् अहम् इति एवंविधम् अंश-त्रयम् उत्तीर्य पश्यामि इति — और वह है "मैं देखता हूँ" — रूप, दृष्टि और अहम्, इन तीन अंशों को पार करके · अनुपायिका प्रमातृता स्वातन्त्र्य-सारा — बिना उपाय की प्रमातृता, जिसका सार स्वातन्त्र्य है · नैकट्य-मध्यत्व-दूरत्वैः — निकटता, मध्यता और दूरी से · प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेयता-अभिषेकं ददती — प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय होने का अभिषेक देती हुई · तत्-अवस्था-त्रय-अनुग्राहकत्वात् त्रि-भेदा — उन तीन अवस्थाओं पर अनुग्रह करने से वह तीन प्रकार की है · एतत् एव अवस्था-चतुष्टयम् — इन्हीं चार अवस्थाओं को · पिण्डस्थ-पदस्थ-रूपस्थ-रूपातीत-शब्दैः योगिनः व्यवहरन्ति — योगी पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत शब्दों से कहते हैं · प्रसंख्यान-धनाः तु सर्वतोभद्रं व्याप्तिः महाव्याप्तिः प्रचयः इति शब्दैः — और प्रसंख्यान के धनी सर्वतोभद्र, व्याप्ति, महाव्याप्ति और प्रचय शब्दों से · अन्वर्थं च अत्र दर्शितं तन्त्रालोके श्लोकवार्तिके च — और इन नामों की सार्थकता तन्त्रालोक और श्लोकवार्तिक में दिखाई गई है · यत् च सर्व-अन्तर्भूतं पूर्ण-रूपम् — और जो पूर्ण रूप है जिसमें सब समाया है · तत् तुर्यातीतं सर्वातीतं महाप्रचयं च निरूपयन्ति — उसे तुर्यातीत, सर्वातीत और महाप्रचय कहते हैं

किं च यस्य यद्यदा रूपं स्फुटं स्थिरम् अनुबन्धि तत् जाग्रत्, तस्यैव तद्विपर्ययः स्वप्नः, यः लयाकलस्य भोगः सर्ववेदनं सुषुप्तं, यो विज्ञानाकलस्य भोगः भोग्याभिन्नीकरणं तुर्यं मन्त्रादीनां स भोगः, भावानां शिवाभेदस्तुर्यातीतं सर्वातीतम् । ३३.१८

और भी, जिसका जो रूप जब स्पष्ट, स्थिर और सिलसिलेवार हो, वह उसका जाग्रत् है; उसी का उससे उलटा स्वप्न है। जो प्रलयाकल का भोग है, सबका न जानना, वह सुषुप्ति है। जो विज्ञानाकल का भोग है, भोग्य को अपने से अभिन्न करना, वह तुर्य है, और वही मन्त्र आदि का भोग है। पदार्थों का शिव से अभेद तुर्यातीत है, सर्वातीत है।

पदपाठ किं च यस्य यत् यदा रूपं स्फुटं स्थिरम् अनुबन्धि तत् जाग्रत् — और भी, जिसका जो रूप जब स्पष्ट, स्थिर और सिलसिलेवार हो, वह उसका जाग्रत् है · तस्य एव तत्-विपर्ययः स्वप्नः — उसी का उससे उलटा स्वप्न है · यः लयाकलस्य भोगः सर्व-अवेदनं सुषुप्तम् — जो प्रलयाकल का भोग है, सबका न जानना, वह सुषुप्ति है · यः विज्ञानाकलस्य भोगः भोग्य-अभिन्नीकरणं तुर्यम् — जो विज्ञानाकल का भोग है, भोग्य को अपने से अभिन्न करना, वह तुर्य है · मन्त्र-आदीनां सः भोगः — वही मन्त्र आदि का भोग है · भावानां शिव-अभेदः तुर्यातीतं सर्वातीतम् — पदार्थों का शिव से अभेद तुर्यातीत है, सर्वातीत है

तत्र स्वरूपसकलौ १ प्रलयाकलः २ विज्ञानाकलः ३ मन्त्रतदीशतन्महेशवर्गः ४ शिवः ५ इति पञ्चदशभेदे पञ्च अवस्थाः ।

स्वरूपं प्रलयाकल इत्यादिक्रमेण त्रयोदशभेदे, स्वरूपं विज्ञानाकलशक्तिः विज्ञानाकल इत्येकादशभेदे, स्वरूपं मन्त्राः तदीशाः महेशाः शिवः इति नवभेदे, स्वरूपं मन्त्रेशाः महेशः शक्तिः शिव इति सप्तभेदे, स्वरूपं महेशशक्तिः महेशः शक्तिः शिव इति पञ्चभेदे, स्वरूपं क्रियाशक्तिः ज्ञानशक्तिः इच्छाशक्तिः शिव इति त्रिभेदे, अभिन्नेऽपि शिवतत्त्वे क्रियाज्ञानेच्छानन्दचिद्रूपकल्पया प्रसंख्यानयोगधनाः पञ्चपदत्वम् आहुः ॥ ३३.१९

उनमें पन्द्रह भेदों में पाँच अवस्थाएँ हैं: स्वरूप और सकल, एक; प्रलयाकल, दो; विज्ञानाकल, तीन; मन्त्र, मन्त्रेश और मन्त्रमहेश का वर्ग, चार; शिव, पाँच। तेरह भेदों में "स्वरूप, प्रलयाकल" इत्यादि क्रम से; ग्यारह भेदों में "स्वरूप, विज्ञानाकल की शक्ति, विज्ञानाकल"; नौ भेदों में "स्वरूप, मन्त्र, मन्त्रेश, महेश, शिव"; सात भेदों में "स्वरूप, मन्त्रेश, महेश, शक्ति, शिव"; पाँच भेदों में "स्वरूप, महेश की शक्ति, महेश, शक्ति, शिव"; तीन भेदों में "स्वरूप, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, शिव"। अभिन्न शिव-तत्त्व में भी प्रसंख्यान-योग के धनी क्रिया, ज्ञान, इच्छा, आनन्द और चित् रूपों की कल्पना से पाँच पद कहते हैं।

पदपाठ तत्र स्वरूप-सकलौ १ — उनमें स्वरूप और सकल, एक · प्रलयाकलः २ विज्ञानाकलः ३ — प्रलयाकल, दो; विज्ञानाकल, तीन · मन्त्र-तदीश-तन्महेश-वर्गः ४ शिवः ५ — मन्त्र, मन्त्रेश और मन्त्रमहेश का वर्ग, चार; शिव, पाँच · इति पञ्चदश-भेदे पञ्च अवस्थाः — इस प्रकार पन्द्रह भेदों में पाँच अवस्थाएँ हैं · स्वरूपं प्रलयाकलः इति आदि-क्रमेण त्रयोदश-भेदे — तेरह भेदों में, "स्वरूप, प्रलयाकल" इत्यादि क्रम से · स्वरूपं विज्ञानाकल-शक्तिः विज्ञानाकलः इति एकादश-भेदे — ग्यारह भेदों में, "स्वरूप, विज्ञानाकल की शक्ति, विज्ञानाकल" · स्वरूपं मन्त्राः तदीशाः महेशाः शिवः इति नव-भेदे — नौ भेदों में, "स्वरूप, मन्त्र, मन्त्रेश, महेश, शिव" · स्वरूपं मन्त्रेशाः महेशः शक्तिः शिवः इति सप्त-भेदे — सात भेदों

में, "स्वरूप, मन्त्रेश, महेश, शक्ति, शिव" · **स्वरूपं महेश-शक्तिः महेशः शक्तिः शिवः इति पञ्च-भेदे** — पाँच भेदों में, "स्वरूप, महेश की शक्ति, महेश, शक्ति, शिव" · **स्वरूपं क्रिया-शक्तिः ज्ञान-शक्तिः इच्छा-शक्तिः शिवः इति त्रि-भेदे** — तीन भेदों में, "स्वरूप, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, शिव" · **अभिन्ने अपि शिव-तत्त्वे** — अभिन्न शिव-तत्त्व में भी · **क्रिया-ज्ञान-इच्छा-आनन्द-चित्-रूप-कॢप्त्या** — क्रिया, ज्ञान, इच्छा, आनन्द और चित् रूपों की कल्पना से · **प्रसंख्यान-योग-धनाः पञ्च-पदत्वम् आहुः** — प्रसंख्यान-योग के धनी पाँच पद कहते हैं

भूम्यादौ तत्त्वजाले न हि भवति वपुस्तादृशं यत्प्रमातुः
संविद्विश्रान्तिवन्ध्यं स्फुरति स बहुधा मातृभावोऽस्य यस्मात् ।
तेनास्मिन्वेद्यजाले क्रमगतकलनां निर्विकल्पामहन्ता-
स्वातन्त्र्यामर्शसारां भुवमधिवसत प्राप्नुत स्वात्मसत्ताम् ॥ ३३

पृथ्वी आदि तत्त्वों के जाल में प्रमाता का ऐसा कोई शरीर नहीं होता जो संवित् में विश्रान्ति से खाली होकर चमके — क्योंकि उसका प्रमाता-भाव अनेक प्रकार का है। इसलिए इस वेद्यों के जाल में, जिसकी गणना क्रम से चलती है, उस निर्विकल्प भूमि में बसो जिसका सार अहन्ता की स्वतन्त्रता का विमर्श है, और अपनी आत्मसत्ता को पाओ।

पदपाठ **भूमि-आदौ** — पृथ्वी आदि में · **तत्त्व-जाले** — तत्त्वों के जाल में · **न** — नहीं · **हि** — सचमुच · **भवति** — होता है · **वपुः** — शरीर · **तादृशम्** — ऐसा · **यत्** — जो · **प्रमातुः** — प्रमाता का · **संवित्-विश्रान्ति-वन्ध्यम्** — संवित् में विश्रान्ति से खाली · **स्फुरति** — चमकता है · **सः** — वह · **बहुधा** — अनेक प्रकार से · **मातृ-भावः** — प्रमाता-भाव · **अस्य** — उसका · **यस्मात्** — क्योंकि · **तेन** — इसलिए · **अस्मिन्** — इस · **वेद्य-जाले** — वेद्यों के जाल में · **क्रम-गत-कलनाम्** — जिसकी गणना क्रम से चलती है · **निर्विकल्पाम्** — निर्विकल्प · **अहन्ता-स्वातन्त्र्य-आमर्श-साराम्** — जिसका सार अहन्ता की स्वतन्त्रता का विमर्श है · **भुवम्** — भूमि में · **अधिवसत** — बसो · **प्राप्नुत** — पाओ · **स्व-आत्म-सत्ताम्** — अपनी आत्मसत्ता को

पहिण उभाहरभावकलपुणअब्भन्तरि एह
सचिवपसम इपुणजअल इब्भिहिनिद्दकलेह ।
संवेअण पअरूढ इउभावकलाउसमग्गु
भरिअदसुस्सुहुपुणभरिउ ॥ १ ॥

३३.२०

पहले, भाव के इस पन्द्रह-रूप समूह के भीतर, जब उसकी सहचर शक्तियाँ शान्त हों, उसे एक निर्मल स्फुरण जानो। संवेदन में जड़ जमाया भाव का यह सारा समूह उसके सुख से भरा है, और फिर भरा है।

पदपाठ पहिण उभाहरभावकलपुणअब्भन्तरि एह — पहले, भाव के इस पन्द्रह-रूप समूह के भीतर · सचिवपसम इपुणजअल इब्भिहिनिद्दकलेह — जब उसकी सहचर शक्तियाँ शान्त हों, उसे एक निर्मल स्फुरण जानो · संवेअण पअरूढ इउभावकलाउसमग्गु — संवेदन में जड़ जमाया भाव का यह सारा समूह · भरिअदसुस्सुहुपुणभरिउ — उसके सुख से भरा है, और फिर भरा है

तुरिआणन्तरलग्गु
घडुबोहिणहंउज्जोअसिएह ।
वितत्त समत्थफुरणकमेण
कमेणलिहालमिसाणमिपञ्चावतु ॥ २ ॥

३३.२१

तुर्य से परे से जुड़ा हुआ, बोध का यह उजाला "मैं" होकर चमकता है। अपने पूरे स्फुरण के क्रम से फैला हुआ, क्रम से वह पाँच अवस्थाओं का रूप लेता है।

पदपाठ तुरिआणन्तरलग्गु — तुर्य से परे से जुड़ा हुआ · घडुबोहिणहंउज्जोअसिएह — बोध का यह उजाला "मैं" होकर चमकता है · वितत्त समत्थफुरणकमेण — अपने पूरे स्फुरण के क्रम से फैला हुआ · कमेणलिहालमिसाणमिपञ्चावतु — क्रम से वह पाँच अवस्थाओं का रूप लेता है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे तत्त्वभेदप्रकाशनं नाम नवममाह्निकम् ॥ ९ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में तत्त्वभेदप्रकाशन नामक नौवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

दशममाह्निकम्

कलाध्वप्रकाशनम्

तत्त्वों का अध्वा बताने के बाद यह छोटा आह्निक कलाओं के अध्वा पर आता है। जैसे तत्त्व वह रूप है जो भुवनों के समूह में अनुगत रहता है, वैसे ही कला वह रूप है जो तत्त्वों के समूह में अनुगत रहती है। कलाएँ पाँच हैं: पृथ्वी में निवृत्ति, जहाँ से तत्त्वों की सृष्टि लौटती है; जल से प्रकृति तक के वर्ग में प्रतिष्ठा, जो कारण होकर पोषण और पूरण करती है; पुरुष से माया तक विद्या, जहाँ वेद्य छिपता है और संवित् बढ़ती है; शुद्धविद्या से शक्ति तक शान्ता, जहाँ कञ्चुकों की तरंगें शान्त होती हैं; और शिव-तत्त्व में शान्तातीता, जो उपदेश, भावना और पूजा में गिनी जाती है — जबकि स्वतन्त्र परम तत्त्व, जहाँ तक वह अप्रमेय है, कलातीत है। पहली चार कलाएँ ही पार्थिव, प्राकृत, मायीय और शाक्त — चार अण्ड हैं, और यह समझाया जाता है कि अण्ड का आवरण शक्ति तक ही क्यों है, जहाँ स्पर्श में अभी प्रतिघात है। फिर छत्तीस तत्त्व पाँच समूहों में गिने जाते हैं — दस स्थूल-सूक्ष्म प्रमेय, दस शुद्ध और कर्तृता-स्पर्शी करण, पाँच जहाँ कर्तृभाव स्पष्ट है, पाँच जहाँ वह शुद्ध है, पाँच जहाँ वह खिलने की ओर है, और सब अवच्छेद से शून्य छत्तीसवाँ शिव — और सैंतीसवें और अड़तीसवें की व्याख्या बिना अनवस्था के होती है। आत्मकला, विद्याकला और शिवकला का त्रिविध क्रम और नौ तत्त्वों का क्रम भी बताया जाता है। अन्त में छह अध्वा: प्रमेय की ओर भुवन, तत्त्व और कला — स्थूल, सूक्ष्म और पर; प्रमाता की ओर पद, मन्त्र और वर्ण — प्रमाण, उसका शमन और पूर्ण प्रमाता। तीन आर्या श्लोक हर कला के वर्ण, पद, मन्त्र, भुवन और तत्त्व गिनाते हैं, और देशभाषा के पद भुवनों और अध्वाओं के पूरे जाल को उस एक तत्त्व में समेट देते हैं जो परम भैरव का शरीर है।

उक्तस्तावत् तत्त्वाध्वा ।

कलाध्वा तु निरूप्यते, तत्र यथा भुवनेषु अनुगामि किंचिद्रूपं तत्त्वम् इत्युक्तम्, तथा तत्त्वेषु वर्गशो यत् अनुगामि रूपं तत् कला—एकरूपकलनासहिष्णुत्वात् ।

३४.१

तद्यथा पृथिव्यां निवृत्तिः—निवर्तते यतस्तत्त्वसर्ग इति ।

जलादिप्रधानान्ते वर्गे प्रतिष्ठा—कारणतयाप्यायनपूरणकारित्वात् ।

पुमादिमायान्ते विद्या—वेद्यतिरोभावे संविदाधिक्यात् ।

शुद्धविद्यादिशक्त्यन्ते शान्ता—कञ्चुकतरङ्गोपशमात् ।

तत्त्वों का अध्वा तो कहा जा चुका। अब कलाओं का अध्वा बताया जाता है। जैसे भुवनों में अनुगत कोई रूप तत्त्व कहा गया, वैसे ही तत्त्वों में वर्ग-वर्ग करके जो अनुगत रूप है, वह कला है, क्योंकि वह एक रूप में गिने जाने को सह सकती है। जैसे पृथ्वी में निवृत्ति है, क्योंकि उससे तत्त्वों की सृष्टि लौटती है। जल से प्रधान तक के वर्ग में प्रतिष्ठा है, क्योंकि वह कारण होकर पोषण और पूरण करती है। पुरुष से माया तक विद्या है, क्योंकि वेद्य के छिपने पर संवित् बढ़ती है। शुद्धविद्या से शक्ति तक शान्ता है, क्योंकि कञ्चुकों की तरंगें शान्त हो जाती हैं।

पदपाठ उक्तः तावत् तत्त्व-अध्वा — तत्त्वों का अध्वा तो कहा जा चुका · कला-अध्वा तु निरूप्यते — अब कलाओं का अध्वा बताया जाता है · तत्र यथा भुवनेषु अनुगामि किंचित् रूपं तत्त्वम् इति उक्तम् — जैसे भुवनों में अनुगत कोई रूप तत्त्व कहा गया · तथा तत्त्वेषु वर्गशः यत् अनुगामि रूपं तत् कला — वैसे ही तत्त्वों में वर्ग-वर्ग करके जो अनुगत रूप है, वह कला है · एक-रूप-कलना-सहिष्णुत्वात् — क्योंकि वह एक रूप में गिने जाने को सह सकती है · तत् यथा पृथिव्यां निवृत्तिः — जैसे पृथ्वी में निवृत्ति है · निवर्तते यतः तत्त्व-सर्गः इति — क्योंकि उससे तत्त्वों की सृष्टि लौटती है · जल-आदि-प्रधान-अन्ते वर्गे प्रतिष्ठा — जल से प्रधान तक के वर्ग में प्रतिष्ठा है · कारणतया आप्यायन-पूरण-कारित्वात् — क्योंकि वह कारण होकर पोषण और पूरण करती है · पुम्-आदि-माया-अन्ते विद्या — पुरुष से माया तक विद्या है · वेद्य-तिरोभावे संवित्-आधिक्यात् — क्योंकि वेद्य के छिपने पर संवित् बढ़ती है · शुद्धविद्या-आदि-शक्ति-अन्ते शान्ता —

शुद्धविद्या से शक्ति तक शान्ता है · कञ्चुक-तरङ्ग-उपशमात् — क्योंकि कञ्चुकों की तरंगें शान्त हो जाती हैं

एतदेव अण्डचतुष्टयं—पार्थिव-प्राकृत-मायीय-शाक्ताभिधम् ।
पृथिव्यादिशक्तीनाम् अत्र अवस्थानेन शक्तितत्त्वे यावत् परस्पर्शो विद्यते
स्पर्शस्य च सप्रतिघत्वमिति तावति युक्तम् अण्डत्वम् । ३४.२
शिवतत्त्वे शान्तातीता—तस्योपदेशभावनार्चादौ कल्यमानत्वात् ।
स्वतन्त्रं तु परं तत्त्वं, तत्रापि यत् अप्रमेयं तत्कलातीतम् ।

यही चार अण्ड हैं — पार्थिव, प्राकृत, मायीय और शाक्त नाम के। क्योंकि पृथ्वी आदि की शक्तियाँ यहाँ रहती हैं, शक्ति-तत्त्व तक दूसरे का स्पर्श रहता है, और स्पर्श में प्रतिघात होता है; इसलिए वहाँ तक अण्ड होना उचित है। शिव-तत्त्व में शान्तातीता है, क्योंकि वह उपदेश, भावना, पूजा आदि में गिना जाता है। पर परम तत्त्व स्वतन्त्र है, और उसमें भी जो अप्रमेय है, वह कलातीत है।

पदपाठ एतत् एव अण्ड-चतुष्टयम् — यही चार अण्ड हैं · पार्थिव-प्राकृत-मायीय-शाक्त-अभिधम् — पार्थिव, प्राकृत, मायीय और शाक्त नाम के · पृथिवी-आदि-शक्तीनाम् अत्र अवस्थानेन — क्योंकि पृथ्वी आदि की शक्तियाँ यहाँ रहती हैं · शक्ति-तत्त्वे यावत् पर-स्पर्शः विद्यते — शक्ति-तत्त्व तक दूसरे का स्पर्श रहता है · स्पर्शस्य च सप्रतिघत्वम् इति — और स्पर्श में प्रतिघात होता है · तावति युक्तम् अण्डत्वम् — इसलिए वहाँ तक अण्ड होना उचित है · शिव-तत्त्वे शान्तातीता — शिव-तत्त्व में शान्तातीता है · तस्य उपदेश-भावना-अर्चा-आदौ कल्यमानत्वात् — क्योंकि वह उपदेश, भावना, पूजा आदि में गिना जाता है · स्वतन्त्रं तु परं तत्त्वम् — पर परम तत्त्व स्वतन्त्र है · तत्र अपि यत् अप्रमेयं तत् कलातीतम् — और उसमें भी जो अप्रमेय है, वह कलातीत है

एवं पञ्चैव कलाः षट्त्रिंशत्तत्त्वानि ।
तथाहि—प्रमेयत्वं द्विधा—स्थूलसूक्ष्मत्वेन इति दश ।
करणत्वं द्विधा—शुद्धं कर्तृतास्पर्शि च इति दश ।
करणतोपसर्जनकर्तृभावस्फुटत्वात् पञ्च, शुद्धकर्तृभावात् पञ्च,
विगलितविभागतया विकासोन्मुखत्वे पञ्च, सर्वावच्छेदशून्यं शिवतत्त्वं
षट्त्रिंशम् । ३४.३

इस प्रकार पाँच ही कलाएँ और छत्तीस तत्त्व हैं। क्योंकि प्रमेय होना दो तरह का है, स्थूल और सूक्ष्म — यह दस। करण होना दो तरह का है, शुद्ध और कर्तृता को छूने वाला — दस। पाँच जहाँ करणता गौण होकर कर्तृभाव स्पष्ट है; शुद्ध कर्तृभाव के पाँच; पाँच जहाँ विभाग गलकर वह विकास की ओर उन्मुख है; और सब अवच्छेद से शून्य शिव-तत्त्व छत्तीसवाँ है।

पदपाठ एवं पञ्च एव कलाः षट्त्रिंशत् तत्त्वानि — इस प्रकार पाँच ही कलाएँ और छत्तीस तत्त्व हैं · तथाहि प्रमेयत्वं द्विधा स्थूल-सूक्ष्मत्वेन इति दश — क्योंकि प्रमेय होना दो तरह का है, स्थूल और सूक्ष्म — दस · करणत्वं द्विधा शुद्धं कर्तृता-स्पर्शि च इति दश — करण होना दो तरह का है, शुद्ध और कर्तृता को छूने वाला — दस · करणता-उपसर्जन-कर्तृ-भाव-स्फुटत्वात् पञ्च — पाँच जहाँ करणता गौण होकर कर्तृभाव स्पष्ट है · शुद्ध-कर्तृ-भावात् पञ्च — शुद्ध कर्तृभाव के पाँच · विगलित-विभागतया विकास-उन्मुखत्वे पञ्च — पाँच जहाँ विभाग गलकर वह विकास की ओर उन्मुख है · सर्व-अवच्छेद-शून्यं शिव-तत्त्वं षट्त्रिंशम् — और सब अवच्छेद से शून्य शिव-तत्त्व छत्तीसवाँ है

तद्यदा उपदिश्यते भाव्यते वा यत् तत्प्रतिष्ठापदम्, तत् सप्तत्रिंशम्, तस्मिन्नपि भाव्यमाने अष्टात्रिंशम्, न च अनवस्था—तस्य भाव्यमानस्य अनवच्छिन्नस्वातन्त्र्ययोगिनो वेद्यीकरणे सप्तत्रिंश एव पर्यवसानात्, षट्त्रिंशं तु सर्वतत्त्वोत्तीर्णतया संभाव्यावच्छेदम् इति पञ्चकलाविधिः । ३४.४

विज्ञानाकलपर्यन्तम् आत्मकला, ईशान्तं विद्याकला, शिष्टं शिवकला इति त्रितत्त्वविधिः ।

एवं नवतत्त्वाद्यपि ऊहयेत् इति ।

जब उसका उपदेश या भावना की जाती है, तो जो उसका प्रतिष्ठा-पद है, वह सैंतीसवाँ है; उसकी भी भावना करने पर अड़तीसवाँ। और अनवस्था नहीं होती, क्योंकि जिसकी भावना की जाती है, वह अनवच्छिन्न स्वातन्त्र्य वाला है, इसलिए उसे वेद्य बनाना सैंतीसवें में ही जाकर ठहरता है; और छत्तीसवाँ, सब तत्त्वों से परे होने से, सम्भावित अवच्छेद वाला है। यह पाँच कलाओं की विधि है। विज्ञानाकल तक आत्मकला है, ईश्वर तक विद्याकला, और शेष शिवकला — यह तीन तत्त्वों की विधि है। इसी तरह नौ तत्त्व आदि का भी ऊहन कर ले।

पदपाठ तत् यदा उपदिश्यते भाव्यते वा — जब उसका उपदेश या भावना की जाती है · यत् तत्-प्रतिष्ठा-पदम् तत् सप्तत्रिंशम् — जो उसका प्रतिष्ठा-पद है, वह सैंतीसवाँ है · तस्मिन् अपि भाव्यमाने अष्टात्रिंशम् — उसकी भी भावना करने पर अड़तीसवाँ · न च अनवस्था — और अनवस्था नहीं होती · तस्य भाव्यमानस्य अनवच्छिन्न-स्वातन्त्र्य-योगिनः — क्योंकि जिसकी भावना की जाती है, वह अनवच्छिन्न स्वातन्त्र्य वाला है · वेद्यीकरणे सप्तत्रिंशे एव पर्यवसानात् — इसलिए उसे वेद्य बनाना सैंतीसवें में ही जाकर ठहरता है · षट्त्रिंशं तु सर्व-तत्त्व-उत्तीर्णतया संभाव्य-अवच्छेदम् — और छत्तीसवाँ, सब तत्त्वों से परे होने से, सम्भावित अवच्छेद वाला है · इति पञ्च-कला-विधिः — यह पाँच कलाओं की विधि है · विज्ञानाकल-पर्यन्तम् आत्म-कला — विज्ञानाकल तक आत्मकला है · ईश-अन्तं विद्या-कला — ईश्वर तक विद्याकला है · शिष्टं शिव-कला इति त्रि-तत्त्व-विधिः — शेष शिवकला है — यह तीन तत्त्वों की विधि है · एवं नव-तत्त्व-आदि अपि ऊहयेत् इति — इसी तरह नौ तत्त्व आदि का भी ऊहन कर ले

मेयांशगामी स्थूलसूक्ष्मपररूपत्वात् त्रिविधो भुवनतत्त्वकलात्माध्वभेदः, मातृविश्रान्त्या तथैव त्रिविधः, तत्र प्रमाणतायां पदाध्वा, प्रमाणस्यैव क्षोभतरङ्गशाम्यत्तायां मन्त्राध्वा, तत्प्रशमे पूर्णप्रमातृतायां वर्णाध्वा, स एव च असौ तावति विश्रान्त्या लब्धस्वरूपो भवति इति एकस्यैव षड्विधत्वं युक्तम् । ३४.५

भुवन, तत्त्व और कला रूप अध्वा का भेद प्रमेय के अंश में जाने वाला है और स्थूल, सूक्ष्म और पर रूप होने से तीन प्रकार का है। प्रमाता में विश्रान्ति से वह वैसे ही तीन प्रकार का है: प्रमाण-भाव में पदाध्वा है; प्रमाण की ही क्षोभ-तरंगों के शान्त होते समय मन्त्राध्वा; उनके शान्त हो जाने पर, पूर्ण प्रमातृता में, वर्णाध्वा। और वही अध्वा उतने में विश्रान्ति से अपना रूप पाता है। इसलिए एक ही अध्वा का छह प्रकार का होना उचित है।

पदपाठ मेय-अंश-गामी — प्रमेय के अंश में जाने वाला · स्थूल-सूक्ष्म-पर-रूपत्वात् त्रिविधः — स्थूल, सूक्ष्म और पर रूप होने से तीन प्रकार का है · भुवन-तत्त्व-कला-आत्म-अध्व-भेदः — भुवन, तत्त्व और कला रूप अध्वा का भेद · मातृ-विश्रान्त्या तथा एव त्रिविधः — प्रमाता में विश्रान्ति से वैसे ही तीन प्रकार का है · तत्र प्रमाणतायां पद-अध्वा — उनमें प्रमाण-भाव में पदाध्वा है · प्रमाणस्य एव क्षोभ-तरङ्ग-शाम्यत्तायां मन्त्र-अध्वा — प्रमाण की ही क्षोभ-तरंगों के शान्त होते समय मन्त्राध्वा · तत्-प्रशमे पूर्ण-प्रमातृतायां वर्ण-अध्वा — उनके शान्त हो जाने पर, पूर्ण प्रमातृता में, वर्णाध्वा · सः एव च असौ तावति विश्रान्त्या लब्ध-स्वरूपः भवति — और वही अध्वा उतने में विश्रान्ति से अपना रूप पाता है · इति एकस्य एव षड्विधत्वं युक्तम् — इसलिए एक ही अध्वा का छह प्रकार का होना उचित है

पदमन्त्रवर्णमेकं
पुरषोडशकं धरेति च निवृत्तिः ।
तत्त्वार्णमग्निनयनं
रसशरपुरमष्टमन्त्रपदमन्या ॥१॥

३४

एक पद, एक मन्त्र, एक वर्ण, सोलह भुवन और पृथ्वी-तत्त्व — यह निवृत्ति है। तेईस तत्त्व और वर्ण, छप्पन भुवन, आठ मन्त्र और पद — यह दूसरी, प्रतिष्ठा है।

पदपाठ पद-मन्त्र-वर्णम् — पद, मन्त्र और वर्ण · एकम् — एक-एक · पुर-षोडशकम् — सोलह भुवन · धरा — पृथ्वी · इति — इस प्रकार · च — और · निवृत्तिः — निवृत्ति है · तत्त्व-अर्णम् — तत्त्व और वर्ण · अग्नि-नयनम् — तेईस (अग्नि तीन, नयन दो) · रस-शर-पुरम् — छप्पन भुवन (रस छह, शर पाँच) · अष्ट-मन्त्र-पदम् — आठ मन्त्र और पद · अन्या — दूसरी (प्रतिष्ठा)

मुनितत्त्वार्णं द्विकपद-
मन्त्रं वस्वक्षिभुवनमपरकला ।
अभ्रयर्णतत्त्वमेकक-
पदमन्त्रं सैन्यभुवनमिति तुर्या ॥२॥

३५

सात तत्त्व और वर्ण, दो पद और मन्त्र, अट्ठाईस भुवन — यह अगली कला, विद्या है। तीन वर्ण और तत्त्व, एक पद और मन्त्र, अठारह भुवन — यह चौथी, शान्ता है।

पदपाठ मुनि-तत्त्व-अर्णम् — सात तत्त्व और वर्ण (मुनि सात) · द्विक-पद-मन्त्रम् — दो पद और मन्त्र · वसु-अक्षि-भुवनम् — अट्ठाईस भुवन (वसु आठ, अक्षि दो) · अपर-कला — अगली कला (विद्या) है · अभ्रय-अर्ण-तत्त्वम् — तीन वर्ण और तत्त्व · एकक-पद-मन्त्रम् — एक पद और मन्त्र · सैन्य-भुवनम् — अठारह भुवन (सेनाएँ अठारह) · इति — इस प्रकार · तुर्या — चौथी (शान्ता) है

षोडश वर्णाः पदमन्त्र-
तत्त्वमेकं च शान्त्यतीतेयम् ।
अभिनवगुप्तेनार्या-
त्रयमुक्तं संग्रहाय शिष्येभ्यः ॥३॥ ३६

सोलह वर्ण, और एक पद, एक मन्त्र और एक तत्त्व — यह शान्त्यतीता है। अभिनवगुप्त ने ये तीन आर्या शिष्यों के लिए संग्रह-रूप में कही हैं।

पदपाठ षोडश — सोलह · वर्णाः — वर्ण · पद-मन्त्र-तत्त्वम् — पद, मन्त्र और तत्त्व · एकम् — एक-एक · च — और · शान्त्यतीता — शान्त्यतीता · इयम् — यह है · अभिनवगुप्तेन — अभिनवगुप्त ने · आर्या-त्रयम् — ये तीन आर्या · उक्तम् — कही हैं · संग्रहाय — संग्रह के लिए · शिष्येभ्यः — शिष्यों के लिए

भुवनजालसअलउ
परिसरसहअवसीसइतत्ताहंसकूउ ।
तत्तब्भाउकलणा
इविमरिसहसीसइपञ्चकलाहंसरूउ ॥ ३६.१

भुवनों का सारा जाल अपने परिसर के साथ तत्त्व कहा जाता है, हंस का नीड़। तत्त्वों के भाव की गणना इस विमर्श में पाँच कलाएँ कही जाती हैं, हंस का रूप।

पदपाठ भुवनजालसअलउ — भुवनों का सारा जाल · परिसरसहअवसीसइतत्ताहंसकूउ — अपने परिसर के साथ तत्त्व कहा जाता है, हंस का नीड़ · तत्तब्भाउकलणा — तत्त्वों के भाव की गणना · इविमरिसहसीसइपञ्चकलाहंसरूउ — इस विमर्श में पाँच कलाएँ कही जाती हैं, हंस का रूप

पञ्चकलामउएहु
महेसरुक्कणइविउज्झइ ।
इच्छइसुहमउ ३६.२
भरिहविबोधतरङ्गमहासरु ॥

यह पाँच कलाओं का बना, महेश्वर के द्वारा जगाया जाता है। जब वे चाहते हैं, बोध की तरंगों वाला विमर्श का महासरोवर सुखमय होकर भर जाता है।

पदपाठ पञ्चकलामउएहु — यह पाँच कलाओं का बना · महेसरुक्कणइविउज्झइ — महेश्वर के द्वारा जगाया जाता है · इच्छइसुहमउ — जब वे चाहते हैं, सुखमय होकर · भरिहविबोधतरङ्गमहासरु — बोध की तरंगों वाला विमर्श का महासरोवर भर जाता है

सोचिअभासइ
भवतरुविसरउ ।
सअलउअद्धजालु ३६.३
निअधअणिपरिमरिमेहहरो ॥

वही संसार-वृक्ष के विस्तार के रूप में चमकता है। अध्वाओं के सारे जाल को महेश्वर अपने विमर्श में धारण करते हैं।

पदपाठ सोचिअभासइ — वही चमकता है · भवतरुविसरउ — संसार-वृक्ष के विस्तार के रूप में · सअलउअद्धजालु — अध्वाओं का सारा जाल · निअधअणिपरिमरिमेहहरो — महेश्वर अपने विमर्श में धारण करते हैं

चेअणुभरिअभरिउ
अप्पहमणिसच्चिअपाणिमणु ।
माणसपाणपवण
धीसामसुपूरितजजिखणु ॥ ३६.४

अपने आप में, मन में, प्राण और हृदय में भी चेतना से भरा और लबालब — मन, प्राण, वायु और बुद्धि उसी क्षण पूरी भर जाती है।

पदपाठ चेअणुभरिअभरिउ — चेतना से भरा और लबालब · अप्पहमणिसच्चिअपाणिमणु — अपने आप में, मन में, प्राण और हृदय में भी · माणसपाणपवण — मन, प्राण और वायु · धीसामसुपूरितजजिखणु — और बुद्धि उसी क्षण पूरी भर जाती है

तंजिघडाइ निहलु
परभइरवणाहहुहोइतणु ।
मत्तिदाणुआवाहणु
प्रअणुसण्णिहाणुइउ अहिणअउडु ॥ ३६.५

जो अपने को पूरी तरह ऐसा गढ़ लेता है, उसका शरीर परम भैरव नाथ का शरीर हो जाता है। उसका भक्ति-दान और आवाहन स्वयं प्रभु का सान्निध्य हैं — ऐसा अभिनव कहते हैं।

पदपाठ तंजिघडाइ निहलु — जो अपने को पूरी तरह ऐसा गढ़ लेता है · परभइरवणाहहुहोइतणु — उसका शरीर परम भैरव नाथ का शरीर हो जाता है · मत्तिदाणुआवाहणु — उसका भक्ति-दान और आवाहन · प्रअणुसण्णिहाणुइउ अहिणअउडु — स्वयं प्रभु का सान्निध्य हैं — ऐसा अभिनव कहते हैं

सब्बिहअद्धकलण

निर्ब्बाहाराएतिलडेचिअएहइतत्त्व ॥ ३६.६

सभी अध्वाओं की गणना, अन्त तक निभाई जाए तो, इसी एक तत्त्व में आ टिकती है।

पदपाठ सब्बिहअद्धकलण — सभी अध्वाओं की गणना · निर्ब्बाहाराएतिलडेचिअएहइतत्त्व — अन्त तक निभाई जाए तो इसी एक तत्त्व में आ टिकती है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे कलाध्वप्रकाशनं नाम दशममाह्निकम् ॥ १० ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में कलाध्वप्रकाशन नामक दसवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

एकादशमाह्निकम्

शक्तिपातप्रकाशनम्

दीक्षा सिखाने से पहले यह जानना होता है कि उसका अधिकारी कौन है, और यह प्रश्न शक्तिपात से तय होता है। अभिनवगुप्त पहले भेदवादियों की व्याख्याओं को गिराते हैं। यदि अनुग्रह ज्ञान के उदय से आता है तो ज्ञान का उदय किससे हुआ? यदि कर्म से, तो अनुग्रह भी एक भोग बन जाएगा और हर भोगी पर पड़ेगा। यदि ईश्वर की इच्छा से, तो तर्क गोल घूमता है और ईश्वर पर राग-द्वेष का दोष आता है। यदि दो विरुद्ध कर्मों के बराबर होने से, तो कर्म क्रम से फल देते हैं, इसलिए विरोध हो ही नहीं सकता, और सन्तुलित कर्म देह के गिरने को रोक नहीं सकता। मल का पकना, वैराग्य, विवेक, सज्जनों की सेवा, पूजा — ये सब कारण भी इन्हीं कारणों से गिर जाते हैं। केवल स्वतन्त्र परमेश्वर का अद्वैतवाद इसे समझा पाता है: जो परमेश्वर अपना स्वरूप छिपाने की क्रीड़ा से बद्ध जीव बना है, वही उसे झट या क्रम से फिर खोलता है, और यही खोलना शक्तिपात है। जब उसका लक्ष्य स्वरूप-बोध हो तो वह किसी पर निर्भर नहीं; जब जीव भोग चाहे तो वह कर्म को देखता है; जब दोनों चाहे तो एक में सापेक्ष और दूसरे में निरपेक्ष। यह नहीं पूछा जा सकता कि वह किसी एक पर ही क्यों गिरता है, क्योंकि वह पुरुष स्वयं परमेश्वर ही है जो ऐसा दिख रहा है। शक्तिपात नौ प्रकार का है: तीव्र, मध्य और मन्द, और हर एक उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्ट। उत्कृष्ट तीव्र से देह गिरते ही परमेश्वरता मिलती है; मध्यम तीव्र से ऐसा प्रातिभ ज्ञान उगता है जिसे गुरु या शास्त्र की अपेक्षा नहीं, पर संवाद के लिए शास्त्र देखा भी जा सकता है, और प्रातिभ गुरु सबसे बलवान है। निकृष्ट तीव्र जीव को सद्गुरु के पास भेजता है, जो इन सब शास्त्रों के ज्ञान से पूर्ण साक्षात् भैरव है; उससे शिष्य ज्ञान-रूप दीक्षा पाकर जीते-जी मुक्त होता है, या अभ्यासी हो तो मरण-क्षण में प्राण छुड़ाने वाली दीक्षा पाता है। मध्य के तीन भेद देह के अन्त में, भोग के साथ या बिना, मुक्ति देते हैं; मन्द भेद भोग की इच्छा से परमेश्वर के मन्त्र और योग की ओर ले जाते हैं, फिर भी मोक्ष तक पहुँचते हैं। अन्य मतों का अनुग्रह राजा की कृपा जैसा है, मोक्ष तक नहीं जाता। इन भेदों की अनन्त विचित्रता के कारण नीचे के शासनों के गुरु त्रिक का मण्डल देखने के भी अधिकारी नहीं, जबकि त्रिक का

गुरु सर्वाधिकारी है। पूर्ण ज्ञान वाले गुरु को कभी नहीं छोड़ना चाहिए; यदि वह न बताए तो दोष शिष्य का है। तिरोभाव इसका उलटा है: प्रबुद्ध मूढ़ की तरह आचरण करे तो हानि नहीं, पर मूढ़ जो प्रबुद्धों की नकल करके उनकी निन्दा करे, वह दुःख और मोह के कीचड़ में डूबता है; फिर भी तिरोभूत भी परमेश्वर की इच्छा से फिर उठता है। अपने में पाँचों कृत्य देखता हुआ साधक अपने को कभी खण्डित न देखे।

तत्र यावत् इदम् उक्तम् तत् साक्षात् कस्यचित् अपवर्गाप्तये यथोक्तसंग्रहनीत्या भवति, कस्यचित् वक्ष्यमाणदीक्षायाम् उपयोगगमनात् इति दीक्षादिकं वक्तव्यम् । ३७.१

तत्र कः अधिकारी इति निरूपणार्थं शक्तिपातो विचार्यते ।

यहाँ तक जो कुछ कहा गया, वह कही हुई संग्रह-रीति से किसी के लिए सीधे मोक्ष पाने का साधन है; किसी के लिए वह आगे कही जाने वाली दीक्षा में काम आता है। इसलिए दीक्षा आदि कहनी चाहिए। उसमें अधिकारी कौन है, यह तय करने के लिए शक्तिपात पर विचार किया जाता है।

पदपाठ तत्र यावत् इदम् उक्तम् — यहाँ तक जो कुछ कहा गया · तत् साक्षात् कस्यचित् अपवर्ग-आप्तये — वह किसी के लिए सीधे मोक्ष पाने का साधन है · यथा-उक्त-संग्रह-नीत्या भवति — कही हुई संग्रह-रीति से · कस्यचित् वक्ष्यमाण-दीक्षायाम् उपयोग-गमनात् — किसी के लिए आगे कही जाने वाली दीक्षा में काम आता है · इति दीक्षा-आदिकं वक्तव्यम् — इसलिए दीक्षा आदि कहनी चाहिए · तत्र कः अधिकारी इति निरूपण-अर्थम् — उसमें अधिकारी कौन है, यह तय करने के लिए · शक्तिपातः विचार्यते — शक्तिपात पर विचार किया जाता है

तत्र केचित् आहुः ज्ञानाभावात् अज्ञानमूलः संसारः तदपगमे ज्ञानोदयात् शक्तिपात इति तेषां सम्यक् ज्ञानोदय एव किंकृत इति वाच्यम्, कर्मजन्यत्वे कर्मफलवत् भोगत्वप्रसङ्गे भोगिनि च शक्तिपाताभ्युपगतौ अतिप्रसङ्गः, ईश्वरेच्छानिमित्तत्वे तु ज्ञानोदयस्य अन्योन्याश्रयता वैयर्थ्यं च, ईश्वरे रागादिप्रसङ्गः, विरुद्धयोः कर्मणोः समबलयोः अन्योन्यप्रतिबन्धे कर्मसाम्यं, ततः शक्तिपात इति चेत्, न—क्रमिकत्वे विरोधायोगात्, विरोधेऽपि अन्यस्य अविरुद्धस्य कर्मणो भोगदानप्रसङ्गात्, अविरुद्धकर्माप्रवृत्तौ तदैव देहपातप्रसङ्गात्, जात्यायुष्प्रदं कर्म न प्रतिबध्यते भोगप्रदमेव तु प्रतिबध्यते इति चेत्, कुतः—तत्कर्मसद्भावे यदि शक्तिः पतेत् तर्हि सा भोगप्रदात् किं बिभियात् । ३७.२

इस विषय में कुछ लोग कहते हैं: ज्ञान के अभाव से संसार अज्ञान-मूलक है; उसके हटने पर ज्ञान के उदय से शक्तिपात होता है। उन्हें बताना होगा कि वह सम्यक् ज्ञान का उदय किससे हुआ। यदि कर्म से जन्मा हो, तो कर्म-फल की तरह वह भी भोग ठहरेगा, और भोगी पर शक्तिपात मानने में अतिप्रसंग होगा। यदि उसका कारण ईश्वर की इच्छा हो, तो ज्ञान का उदय अन्योन्याश्रित और व्यर्थ हो जाएगा, और ईश्वर पर राग-द्वेष का दोष आएगा। यदि कहो कि दो विरुद्ध बराबर बल वाले कर्म एक-दूसरे को रोकते हैं, इससे कर्म-साम्य होता है और उससे शक्तिपात — तो नहीं: कर्म क्रम से फल देते हैं, इसलिए विरोध हो ही नहीं सकता; विरोध हो भी तो कोई और अविरुद्ध कर्म भोग देता रहेगा; और यदि कोई अविरुद्ध कर्म चल ही न रहा हो तो उसी क्षण देह गिर पड़ेगी। यदि कहो कि जन्म और आयु देने वाला कर्म नहीं रुकता, केवल भोग देने वाला रुकता है — तो क्यों? यदि उस कर्म के रहते शक्ति गिर सकती है, तो वह भोग देने वाले कर्म से क्यों डरे?

पदपाठ तत्र केचित् आहुः — इस विषय में कुछ लोग कहते हैं · ज्ञान-अभावात् अज्ञान-मूलः संसारः — ज्ञान के अभाव से संसार अज्ञान-मूलक है · तत्-अपगमे ज्ञान-उदयात् शक्तिपातः इति — उसके हटने पर ज्ञान के उदय से शक्तिपात होता है · तेषां सम्यक् ज्ञान-उदयः एव किं-कृतः इति वाच्यम् — उन्हें बताना होगा कि वह सम्यक् ज्ञान का उदय किससे हुआ · कर्म-जन्यत्वे — यदि कर्म से जन्मा हो · कर्म-फलवत् भोगत्व-प्रसङ्गे — तो कर्म-फल की तरह वह भी भोग ठहरेगा · भोगिनि च शक्तिपात-अभ्युपगतौ अतिप्रसङ्गः — और भोगी पर शक्तिपात मानने में अतिप्रसंग होगा · ईश्वर-इच्छा-निमित्तत्वे तु — यदि उसका कारण ईश्वर की इच्छा हो · ज्ञान-उदयस्य अन्योन्य-आश्रयता वैयर्थ्यं च — तो ज्ञान का उदय अन्योन्याश्रित और व्यर्थ हो जाएगा · ईश्वरे राग-आदि-प्रसङ्गः — और ईश्वर पर राग-द्वेष का दोष आएगा · विरुद्धयोः कर्मणोः समबलयोः — दो विरुद्ध बराबर बल वाले कर्मों के · अन्योन्य-प्रतिबन्धे कर्म-साम्यम् — एक-दूसरे को रोकने पर कर्म-साम्य होता है · ततः शक्तिपातः इति चेत् — उससे शक्तिपात होता है — यदि यह कहो · न — नहीं · क्रमिकत्वे विरोध-अयोगात् — क्योंकि कर्म क्रम से फल देते हैं, इसलिए विरोध हो ही नहीं सकता · विरोधे अपि — विरोध हो भी तो · अन्यस्य अविरुद्धस्य कर्मणः भोग-दान-प्रसङ्गात् — कोई और अविरुद्ध कर्म भोग देता रहेगा · अविरुद्ध-कर्म-अप्रवृत्तौ — और यदि कोई अविरुद्ध कर्म चल ही न रहा हो · तदा एव देह-पात-प्रसङ्गात् — तो उसी क्षण देह गिर पड़ेगी · जाति-आयुः-प्रदं कर्म न प्रतिबध्यते — जन्म और आयु देने वाला कर्म नहीं रुकता · भोग-प्रदम् एव तु प्रतिबध्यते इति चेत् — केवल भोग देने वाला कर्म रुकता है — यदि यह कहो · कुतः — क्यों? · तत्-कर्म-सद्भावे यदि शक्तिः पतेत् — यदि उस कर्म के रहते शक्ति गिर सकती है · तर्हि सा भोग-प्रदात् किं बिभियात् — तो वह भोग देने वाले कर्म से क्यों डरे?

अथ मलपरिपाके शक्तिपातः सोऽपि किंस्वरूपः? किं च तस्य निमित्तम्? इति, एतेन वैराग्यं धर्मविशेषो विवेकः सत्सेवा सत्प्राप्तिः देवपूजा इत्यादिहेतुः प्रत्युक्त इति भेदवादिनां सर्वम् असमञ्जसम् ।

अथवा यदि मल के पकने पर शक्तिपात होता है — तो वह पकना भी क्या चीज़ है, और उसका कारण क्या है? इससे वैराग्य, विशेष धर्म, विवेक, सज्जनों की सेवा, सज्जनों का मिलना, देव-पूजा आदि कारण भी खण्डित हो गए। इसलिए भेदवादियों का सारा मत असंगत है।

पदपाठ **अथ मल-परिपाके शक्तिपातः** — अथवा मल के पकने पर शक्तिपात होता है, तो · **सः अपि किं-स्वरूपः** — वह पकना भी क्या चीज़ है? · **किं च तस्य निमित्तम् इति** — और उसका कारण क्या है? · **एतेन** — इससे · **वैराग्यं धर्म-विशेषः विवेकः** — वैराग्य, विशेष धर्म, विवेक · **सत्-सेवा सत्-प्राप्तिः देव-पूजा** — सज्जनों की सेवा, सज्जनों का मिलना, देव-पूजा · **इति-आदि-हेतुः प्रत्युक्तः** — आदि कारण भी खण्डित हो गए · **इति भेदवादिनां सर्वम् असमञ्जसम्** — इसलिए भेदवादियों का सारा मत असंगत है

स्वतन्त्रपरमेशाद्वयवादे तु उपपद्यते एतत्, यथाहि—परमेश्वरः स्वरूपाच्छादनक्रीडया पशुः पुद्गलोऽणुः संपन्नः, न च तस्य देशकालस्वरूपभेदविरोधः तद्वत् स्वरूपस्थगनविनिवृत्त्या स्वरूपप्रत्यापत्तिं झटिति वा क्रमेण वा समाश्रयन् शक्तिपातपात्रम् अणुः उच्यते, स्वातन्त्र्यमात्रसारश्च असौ परमशिवः शक्तेः पातयिता इति निरपेक्ष एव शक्तिपातो यः स्वरूपप्रथाफलः, यस्तु भोगोत्सुकस्य स कर्मापेक्षः, ३७.४ **लोकोत्तररूपभोगोत्सुकस्य तु स एव शक्तिपातः परमेश्वरेच्छाप्रेरितमायागर्भाधिकारीयरुद्रविष्णुब्रह्मादिद्वारेण, मन्त्रादिरूपत्वं मायापुंविवेकं पुंस्कलाविवेकं पुंप्रकृतिविवेकं पुंबुद्धिविवेकमन्यच्च फलं प्रस्नुवानः तदधरतत्त्वभोगं प्रतिबध्नाति, भोगमोक्षोभयोत्सुकस्य भोगे कर्मापेक्षो, मोक्षे तु तन्निरपेक्षः इति सापेक्षनिरपेक्षः ।**

पर स्वतन्त्र परमेश्वर के अद्वैतवाद में यह संगत हो जाता है। परमेश्वर अपना स्वरूप छिपाने की क्रीड़ा से पशु, पुद्गल, अणु बन गया है — और इसमें देश, काल या स्वरूप के भेद का कोई विरोध नहीं। उसी तरह जब स्वरूप का ढकना हटता है और वह झट या क्रम से अपना स्वरूप फिर पाता है, तब अणु शक्तिपात का पात्र कहलाता है; और केवल स्वातन्त्र्य जिसका सार है, वह परमशिव शक्ति को गिराने वाला है। इसलिए जिस शक्तिपात का फल स्वरूप का प्रकट होना है, वह सर्वथा निरपेक्ष है। जो भोग के इच्छुक के लिए है, वह कर्म-सापेक्ष है। लोकोत्तर भोग के इच्छुक के लिए वही शक्तिपात — परमेश्वर की इच्छा से प्रेरित, माया के भीतर अधिकारी रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा आदि के द्वारा — मन्त्र आदि का रूप, माया से, कला से, प्रकृति से और बुद्धि से पुरुष का विवेक और दूसरे फल बहाता हुआ नीचे के तत्त्वों के

भोग को रोक देता है। भोग और मोक्ष दोनों के इच्छुक के लिए वह भोग में कर्म-सापेक्ष और मोक्ष में उससे निरपेक्ष है; इसलिए वह सापेक्ष-निरपेक्ष है।

पदपाठ **स्वतन्त्र-परमेश-अद्वय-वादे तु** — पर स्वतन्त्र परमेश्वर के अद्वैतवाद में · **उपपद्यते एतत्** — यह संगत हो जाता है · **यथाहि** — क्योंकि · **परमेश्वरः स्वरूप-आच्छादन-क्रीडया** — परमेश्वर अपना स्वरूप छिपाने की क्रीड़ा से · **पशुः पुद्गलः अणुः संपन्नः** — पशु, पुद्गल, अणु बन गया है · **न च तस्य देश-काल-स्वरूप-भेद-विरोधः** — और उसमें देश, काल या स्वरूप के भेद का कोई विरोध नहीं · **तद्वत्** — उसी तरह · **स्वरूप-स्थगन-विनिवृत्त्या** — स्वरूप का ढकना हटने से · **स्वरूप-प्रत्यापत्तिं झटिति वा क्रमेण वा समाश्रयन्** — झट या क्रम से अपना स्वरूप फिर पाता हुआ · **शक्तिपात-पात्रम् अणुः उच्यते** — अणु शक्तिपात का पात्र कहलाता है · **स्वातन्त्र्य-मात्र-सारः च असौ परमशिवः** — और केवल स्वातन्त्र्य जिसका सार है, वह परमशिव · **शक्तेः पातयिता इति** — शक्ति को गिराने वाला है · **निरपेक्षः एव शक्तिपातः** — इसलिए शक्तिपात सर्वथा निरपेक्ष है · **यः स्वरूप-प्रथा-फलः** — जिसका फल स्वरूप का प्रकट होना है · **यः तु भोग-उत्सुकस्य** — पर जो भोग के इच्छुक के लिए है · **सः कर्म-अपेक्षः** — वह कर्म-सापेक्ष है · **लोकोत्तर-रूप-भोग-उत्सुकस्य तु** — लोकोत्तर भोग के इच्छुक के लिए · **सः एव शक्तिपातः** — वही शक्तिपात · **परमेश्वर-इच्छा-प्रेरित-माया-गर्भ-अधिकारीय-रुद्र-विष्णु-ब्रह्मा-आदि-द्वारेण** — परमेश्वर की इच्छा से प्रेरित, माया के भीतर अधिकारी रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा आदि के द्वारा · **मन्त्र-आदि-रूपत्वं** — मन्त्र आदि का रूप · **माया-पुं-विवेकं पुंस्-कला-विवेकं** — माया से पुरुष का विवेक, कला से पुरुष का विवेक · **पुं-प्रकृति-विवेकं पुं-बुद्धि-विवेकम्** — प्रकृति से पुरुष का विवेक, बुद्धि से पुरुष का विवेक · **अन्यत् च फलं प्रस्नुवानः** — और दूसरे फल बहाता हुआ · **तत्-अधर-तत्त्व-भोगं प्रतिबध्नाति** — उससे नीचे के तत्त्वों के भोग को रोक देता है · **भोग-मोक्ष-उभय-उत्सुकस्य** — भोग और मोक्ष दोनों के इच्छुक के लिए · **भोगे कर्म-अपेक्षः** — भोग में वह कर्म-सापेक्ष · **मोक्षे तु तत्-निरपेक्षः** — पर मोक्ष में उससे निरपेक्ष है · **इति सापेक्ष-निरपेक्षः** — इसलिए वह सापेक्ष-निरपेक्ष है

न च वाच्यं—कस्मात् कस्मिंश्चिदेव पुंसि शक्तिपात इति, स एव परमेश्वरः तथा भाति इति सतत्त्वे कोऽसौ पुमान् नाम यदुद्देशेन विषयकृता चोदना इयम्।

और यह नहीं पूछना चाहिए कि शक्तिपात किसी एक ही पुरुष पर क्यों होता है। जब सच यह है कि परमेश्वर ही वैसा दिखता है, तो वह पुरुष कौन है जिसे लेकर यह आपत्ति उठाई गई है?

पदपाठ न च वाच्यम् — और यह नहीं पूछना चाहिए · कस्मात् कस्मिंश्चित् एव पुंसि शक्तिपातः इति — कि शक्तिपात किसी एक ही पुरुष पर क्यों होता है · सः एव परमेश्वरः तथा भाति इति सतत्त्वे — क्योंकि सच यह है कि परमेश्वर ही वैसा दिखता है · कः असौ पुमान् नाम — वह पुरुष कौन है · यत्-उद्देशेन विषय-कृता चोदना इयम् — जिसे लेकर यह आपत्ति उठाई गई है?

स चायं शक्तिपातो नवधा,—तीव्र-मध्य-मन्दस्य उत्कर्ष-माध्यस्थ्य-निकर्षैः पुनस्त्रैविध्यात्, तत्र उत्कृष्टतीव्रात् तदैव देहपाते परमेशता, मध्यतीव्रात् शास्त्राचार्यानपेक्षिणः स्वप्रत्ययस्य प्रातिभज्ञानोदयः यदुदये बाह्यसंस्कारं विनैव भोगापवर्गप्रदः प्रातिभो गुरुरित्युच्यते तस्य हि न समय्यादिकल्पना काचित्, ३७.६ **अत्रापि तारतम्यसद्भावः—इच्छावैचित्र्यात् इति, सत्यपि प्रातिभत्वे शास्त्राद्यपेक्षा संवादाय स्यादपि, इति निर्भित्तिसभित्त्यादिबहुभेदत्वम् आचार्यस्य प्रातिभस्यागमेषु उक्तम्, सर्वथा प्रतिभांशो बलीयान्—तत्संनिधौ अन्येषाम् अनधिकारात् ।**

और यह शक्तिपात नौ प्रकार का है: तीव्र, मध्य और मन्द, हर एक फिर उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्ट भेद से तीन-तीन। उनमें उत्कृष्ट तीव्र से उसी समय देह गिरती है और परमेश्वरता मिलती है। मध्यम तीव्र से ऐसा प्रातिभ ज्ञान उगता है जो स्वयं-निश्चित है और जिसे शास्त्र या आचार्य की अपेक्षा नहीं; उसके उगने पर, बाहरी संस्कार के बिना ही, वह भोग और मोक्ष देने वाला प्रातिभ गुरु कहलाता है, और उसके लिए समयी आदि की कोई व्यवस्था नहीं। यहाँ भी इच्छा की विचित्रता के कारण तारतम्य है। प्रातिभ होते हुए भी संवाद के लिए शास्त्र आदि की अपेक्षा हो भी सकती है; इसलिए आगमों में प्रातिभ आचार्य के निराधार, साधार आदि अनेक भेद कहे गए हैं। हर हाल में प्रतिभा का अंश बलवान है, क्योंकि उसके सामने दूसरों का अधिकार नहीं रहता।

पदपाठ सः च अयं शक्तिपातः नवधा — और यह शक्तिपात नौ प्रकार का है · तीव्र-मध्य-मन्दस्य — तीव्र, मध्य और मन्द के · उत्कर्ष-माध्यस्थ्य-निकर्षैः पुनः त्रैविध्यात् — उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्ट भेद से फिर तीन-तीन होने से · तत्र उत्कृष्ट-तीव्रात् — उनमें उत्कृष्ट तीव्र से · तदा एव देह-पाते परमेशता — उसी समय देह गिरने पर परमेश्वरता · मध्य-तीव्रात् — मध्यम तीव्र से · शास्त्र-आचार्य-अनपेक्षिणः स्व-प्रत्ययस्य

प्रातिभ-ज्ञान-उदयः — शास्त्र और आचार्य की अपेक्षा न रखने वाले, स्वयं-निश्चित प्रातिभ ज्ञान का उदय · **यत्-उदये** — जिसके उगने पर · **बाह्य-संस्कारं विना एव** — बाहरी संस्कार के बिना ही · **भोग-अपवर्ग-प्रदः प्रातिभः गुरुः इति उच्यते** — वह भोग और मोक्ष देने वाला प्रातिभ गुरु कहलाता है · **तस्य हि न समयी-आदि-कल्पना काचित्** — उसके लिए समयी आदि की कोई व्यवस्था नहीं · **अत्र अपि तारतम्य-सद्भावः** — यहाँ भी तारतम्य है · **इच्छा-वैचित्र्यात् इति** — इच्छा की विचित्रता के कारण · **सति अपि प्रातिभत्वे** — प्रातिभ होते हुए भी · **शास्त्र-आदि-अपेक्षा संवादाय स्यात् अपि** — संवाद के लिए शास्त्र आदि की अपेक्षा हो भी सकती है · **इति निर्भित्ति-सभित्ति-आदि-बहु-भेदत्वम्** — इसलिए निराधार, साधार आदि अनेक भेद · **आचार्यस्य प्रातिभस्य आगमेषु उक्तम्** — प्रातिभ आचार्य के आगमों में कहे गए हैं · **सर्वथा प्रतिभा-अंशः बलीयान्** — हर हाल में प्रतिभा का अंश बलवान है · **तत्-संनिधौ अन्येषाम् अनधिकारात्** — क्योंकि उसके सामने दूसरों का अधिकार नहीं

भेददर्शन इव अनादिशिवसंनिधौ मुक्तशिवानां सृष्टिलयादिकृत्येषु मन्दतीव्रात् शक्तिपातात् सद्गुरुविषया यियासा भवति, असद्गुरुविषयायां तु तिरोभाव एव, असद्गुरुतस्तु सद्गुरुगमनं शक्तिपातादेव ।

सद्गुरुस्तु समस्तैतच्छास्त्रतत्त्वज्ञानपूर्णः साक्षात् भगवद्भैरवभट्टारक एव ३७.७ योगिनोऽपि स्वभ्यस्तज्ञानतयैव मोचकत्वे तत्र योग्यत्वस्य सौभाग्यलावण्यादिमत्त्वस्येवानुपयोगात् ।

असद्गुरुस्तु अन्यः सर्व एव ।

जैसे भेदवादी दर्शन में अनादि शिव की उपस्थिति में मुक्त शिवों का सृष्टि, लय आदि कृत्यों में अधिकार नहीं रहता, वैसे ही निकृष्ट तीव्र शक्तिपात से सद्गुरु के पास जाने की इच्छा होती है; यदि इच्छा असद्गुरु की ओर हो तो वह तिरोभाव ही है, और असद्गुरु से सद्गुरु के पास जाना शक्तिपात से ही होता है। सद्गुरु तो इन सब शास्त्रों के तत्त्व-ज्ञान से पूर्ण, साक्षात् भगवान् भैरव ही है। योगी भी भली-भाँति अभ्यास किए ज्ञान से ही मुक्त करता है, क्योंकि वहाँ योग-सिद्धि का उतना ही कम उपयोग है जितना सौभाग्य या सुन्दरता का। इनसे भिन्न सब असद्गुरु हैं।

पदपाठ भेद-दर्शने इव — जैसे भेदवादी दर्शन में · अनादि-शिव-संनिधौ — अनादि शिव की उपस्थिति में · मुक्त-शिवानां सृष्टि-लय-आदि-कृत्येषु — मुक्त शिवों का सृष्टि, लय आदि कृत्यों में अधिकार नहीं रहता · मन्द-तीव्रात् शक्तिपातात् — निकृष्ट तीव्र शक्तिपात से · सद्गुरु-विषया यियासा भवति — सद्गुरु के पास जाने की इच्छा होती है · असद्गुरु-विषयायां तु तिरोभावः एव — पर यदि इच्छा असद्गुरु की ओर हो तो वह तिरोभाव ही है · असद्गुरुतः तु सद्गुरु-गमनं शक्तिपातात् एव — और असद्गुरु से सद्गुरु के पास जाना शक्तिपात से ही होता है · सद्गुरुः तु — सद्गुरु तो · समस्त-एतत्-शास्त्र-तत्त्व-ज्ञान-पूर्णः — इन सब शास्त्रों के तत्त्व-ज्ञान से पूर्ण · साक्षात् भगवत्-भैरव-भट्टारकः एव — साक्षात् भगवान् भैरव ही है · योगिनः अपि — योगी भी · सु-अभ्यस्त-ज्ञानतया एव मोचकत्वे — भली-भाँति अभ्यास किए ज्ञान से ही मुक्त करता है · तत्र योग्यत्वस्य अनुपयोगात् — क्योंकि वहाँ योग-सिद्धि का कोई उपयोग नहीं · सौभाग्य-लावण्य-आदि-मत्त्वस्य इव — जैसे सौभाग्य या सुन्दरता का नहीं · असद्गुरुः तु अन्यः सर्वः एव — इनसे भिन्न सब असद्गुरु हैं

एवं यियासुः गुरोः ज्ञानलक्षणां दीक्षां प्राप्नोति यया सद्य एव मुक्तो भवति जीवन्नपि, अत्र अवलोकनात् कथनात् शास्त्रसंबोधनात् चर्यादर्शनात् चरुदानात् इत्यादयो भेदाः । ३७.८

अभ्यासवतो वा तदानीं सद्य एव प्राणवियोजिकां दीक्षां लभते, सा तु मरणक्षण एव कार्या इति वक्ष्याम इति ।

इस तरह जाने का इच्छुक गुरु से ज्ञान-रूप दीक्षा पाता है, जिससे वह जीते-जी तुरन्त मुक्त हो जाता है। इसमें देखने से, कहने से, शास्त्र समझाने से, चर्या दिखाने से, चरु देने से आदि भेद हैं। अथवा अभ्यास वाला उसी समय तुरन्त प्राण छुड़ाने वाली दीक्षा पाता है — पर वह मरण के क्षण में ही करनी चाहिए, यह हम आगे कहेंगे।

पदपाठ एवं यियासुः — इस तरह जाने का इच्छुक · गुरोः ज्ञान-लक्षणां दीक्षां प्राप्नोति — गुरु से ज्ञान-रूप दीक्षा पाता है · यया सद्यः एव मुक्तः भवति जीवन् अपि — जिससे वह जीते-जी तुरन्त मुक्त हो जाता है · अत्र — इसमें · अवलोकनात् कथनात् शास्त्र-संबोधनात् — देखने से, कहने से, शास्त्र समझाने से · चर्या-दर्शनात् चरु-दानात् — चर्या दिखाने से, चरु देने से · इति-आदयः भेदाः — आदि भेद हैं · अभ्यासवतः वा — अथवा अभ्यास वाला · तदानीं सद्यः एव — उसी समय तुरन्त · प्राण-वियोजिकां दीक्षां लभते — प्राण छुड़ाने वाली दीक्षा पाता है · सा तु मरण-क्षणे एव कार्या — पर वह मरण के क्षण में ही करनी चाहिए · इति वक्ष्यामः इति — यह हम आगे कहेंगे

तीव्रस्त्रिधा उत्कृष्टमध्यात् शक्तिपातात् कृतदीक्षाकोऽपि स्वात्मनः शिवतायां न तथा दृढप्रतिपत्तिः भवति, प्रतिपत्तिपरिपाकक्रमेण तु देहान्ते शिव एव, मध्यमध्यात्तु शिवतोत्सुकोऽपि भोगप्रेप्सुः भवति इति तथैव दीक्षायां ज्ञानभाजनम्, स च योगाभ्यासलब्धम् अनेनैव देहेन भोगं भुक्त्वा देहान्ते शिव एव । ३७.९

निकृष्टमध्यात्तु देहान्तरेण भोगं भुक्त्वा शिवत्वम् एति, इति ।

तीव्र इस तरह तीन प्रकार का है। उत्कृष्ट मध्य शक्तिपात से दीक्षित होकर भी वह अपनी शिवता का वैसा पक्का निश्चय नहीं पाता; पर निश्चय के क्रम से पकने पर देह के अन्त में वह शिव ही है। मध्यम मध्य से वह शिवता का इच्छुक होकर भी भोग चाहता है, इसलिए दीक्षा में वह उसी तरह ज्ञान का पात्र है; योग के अभ्यास से पाया हुआ भोग वह इसी देह से भोगकर देह के अन्त में शिव ही है। निकृष्ट मध्य से वह दूसरी देह से भोग भोगकर शिवत्व पाता है।

पदपाठ तीव्रः त्रिधा — तीव्र इस तरह तीन प्रकार का है · उत्कृष्ट-मध्यात् शक्तिपातात् — उत्कृष्ट मध्य शक्तिपात से · कृत-दीक्षाकः अपि — दीक्षित होकर भी · स्व-आत्मनः शिवतायां न तथा दृढ-प्रतिपत्तिः भवति — अपनी शिवता का वैसा पक्का निश्चय नहीं पाता · प्रतिपत्ति-परिपाक-क्रमेण तु — पर निश्चय के क्रम से पकने पर · देह-अन्ते शिवः एव — देह के अन्त में वह शिव ही है · मध्य-मध्यात् तु — मध्यम मध्य से · शिवता-उत्सुकः अपि भोग-प्रेप्सुः भवति — शिवता का इच्छुक होकर भी वह भोग चाहता है · इति तथा एव दीक्षायां ज्ञान-भाजनम् — इसलिए दीक्षा में वह उसी तरह ज्ञान का पात्र है · सः च योग-अभ्यास-लब्धम् — और वह योग के अभ्यास से पाया हुआ · अनेन एव देहेन भोगं भुक्त्वा — भोग इसी देह से भोगकर · देह-अन्ते शिवः एव — देह के अन्त में शिव ही है · निकृष्ट-मध्यात् तु — निकृष्ट मध्य से · देह-अन्तरेण भोगं भुक्त्वा — दूसरी देह से भोग भोगकर · शिवत्वम् एति इति — वह शिवत्व पाता है

मध्यस्तु त्रिधा—भोगोत्सुकता यदा प्रधानभूता तदा मन्दत्वं—पारमेश्वरमन्त्रयोगोपायतया यतस्तत्र औत्सुक्यम्, पारमेशमन्त्रयोगादेश्च यतो मोक्षपर्यन्तत्वम् अतः शक्तिपातरूपता । ३७.१०

तत्रापि तारतम्यात् त्रैविध्यम्, इत्येष मुख्यः शक्तिपातः ।

वैष्णवादीनां तु राजानुग्रहवत् न मोक्षान्तता इति न इह विवेचनम् ।

मध्य इस तरह तीन प्रकार का है। जब भोग की इच्छा प्रधान हो, तब वह मन्द है — परमेश्वर के मन्त्र और योग के उपाय से, क्योंकि इच्छा वहीं लगी है; और क्योंकि परमेश्वर के मन्त्र, योग आदि मोक्ष तक पहुँचते हैं, इसलिए वह भी शक्तिपात ही है। इसमें भी तारतम्य से तीन भेद हैं। यह मुख्य शक्तिपात है। वैष्णव आदि के लिए वह राजा की कृपा की तरह है, उसका अन्त मोक्ष में नहीं होता, इसलिए यहाँ उसका विचार नहीं।

पदपाठ मध्यः तु त्रिधा — मध्य इस तरह तीन प्रकार का है · भोग-उत्सुकता यदा प्रधान-भूता — जब भोग की इच्छा प्रधान हो · तदा मन्दत्वम् — तब वह मन्द है · पारमेश्वर-मन्त्र-योग-उपायतया — परमेश्वर के मन्त्र और योग के उपाय से · यतः तत्र औत्सुक्यम् — क्योंकि इच्छा वहीं लगी है · पारमेश-मन्त्र-योग-आदेः च यतः मोक्ष-पर्यन्तत्वम् — और क्योंकि परमेश्वर के मन्त्र, योग आदि मोक्ष तक पहुँचते हैं · अतः शक्तिपात-रूपता — इसलिए वह भी शक्तिपात ही है · तत्र अपि तारतम्यात् त्रैविध्यम् — इसमें भी तारतम्य से तीन भेद हैं · इति एषः मुख्यः शक्तिपातः — यह मुख्य शक्तिपात है · वैष्णव-आदीनां तु — पर वैष्णव आदि के लिए · राज-अनुग्रहवत् — राजा की कृपा की तरह · न मोक्ष-अन्तता — उसका अन्त मोक्ष में नहीं होता · इति न इह विवेचनम् — इसलिए यहाँ उसका विचार नहीं

शिवशक्त्यधिष्ठानं तु सर्वत्र इति उक्तम्, सा परं ज्येष्ठा न भवति अपि तु घोरा घोरतरा वा, स एष शक्तिपातो विचित्रोऽपि तारतम्यवैचित्र्यात् भिद्यते, कश्चित् वैष्णवादिस्थः समय्यादिक्रमेण स्रोतःपञ्चके च प्राप्तपरिपाकः सर्वोत्तीर्णभगवत्षडर्धशास्त्रपरमाधिकारिताम् एति, अन्यस्तु उल्लङ्घनक्रमेण॥ ११॥ अनन्तभेदेन, कोऽपि अक्रमम् इति अत एव अधराधरशासनस्था गुरवोऽपि इह मण्डलमात्रदर्शनेऽपि अनधिकारिणः, ऊर्ध्वशासनस्थस्तु गुरुः अधराधरशासनं प्रत्युत प्राणयति—पूर्णत्वात् इति सर्वाधिकारी ।

यह कहा जा चुका है कि शिव की शक्ति का अधिष्ठान सर्वत्र है; पर वहाँ वह ज्येष्ठा नहीं, बल्कि घोरा या घोरतरा होती है। यह शक्तिपात विचित्र होकर भी तारतम्य की विचित्रता से और बँटता है। कोई वैष्णव आदि मत में स्थित व्यक्ति समयी आदि के क्रम से और पाँच स्रोतों में परिपक्व होकर सबसे ऊपर के भगवान् के त्रिक शास्त्र की परम अधिकारिता पाता है; कोई दूसरा क्रम लाँघकर, अनन्त भेदों से; और कोई बिना किसी क्रम के। इसीलिए नीचे से नीचे शासनों में स्थित गुरु भी यहाँ मण्डल देखने भर के भी अधिकारी नहीं, पर ऊपर के शासन में स्थित गुरु नीचे के शासनों को उलटे प्राण देता है, क्योंकि वह पूर्ण है; इसलिए वह सर्वाधिकारी है।

पदपाठ शिव-शक्ति-अधिष्ठानं तु सर्वत्र इति उक्तम् — यह कहा जा चुका है कि शिव की शक्ति का अधिष्ठान सर्वत्र है · सा परं ज्येष्ठा न भवति — पर वहाँ वह ज्येष्ठा नहीं होती · अपि तु घोरा घोरतरा वा — बल्कि घोरा या घोरतरा होती है · सः एषः शक्तिपातः विचित्रः अपि — यह शक्तिपात विचित्र होकर भी · तारतम्य-वैचित्र्यात् भिद्यते — तारतम्य की विचित्रता से और बँटता है · कश्चित् वैष्णव-आदि-स्थः — कोई वैष्णव आदि मत में स्थित · समयी-आदि-क्रमेण स्रोतः-पञ्चके च प्राप्त-परिपाकः — समयी आदि के क्रम से और पाँच स्रोतों में परिपक्व होकर · सर्व-उत्तीर्ण-भगवत्-षडर्ध-शास्त्र-परम-अधिकारिताम् एति — सबसे ऊपर के भगवान् के त्रिक शास्त्र की परम अधिकारिता पाता है · अन्यः तु उल्लङ्घन-क्रमेण अनन्त-भेदेन — कोई दूसरा क्रम लाँघकर, अनन्त भेदों से · कः अपि अक्रमम् इति — और कोई बिना किसी क्रम के · अतः एव — इसीलिए · अधर-अधर-शासन-स्थाः गुरवः अपि — नीचे से नीचे शासनों में स्थित गुरु

भी · **इह मण्डल-मात्र-दर्शने अपि अनधिकारिणः** — यहाँ मण्डल देखने भर के भी अधिकारी नहीं · **ऊर्ध्व-शासन-स्थः तु गुरुः** — पर ऊपर के शासन में स्थित गुरु · **अधर-अधर-शासनं प्रत्युत प्राणयति** — नीचे के शासनों को उलटे प्राण देता है · **पूर्णत्वात् इति सर्व-अधिकारी** — क्योंकि वह पूर्ण है; इसलिए वह सर्वाधिकारी है

स च दैशिको गुरुः आचार्यो दीक्षकः चुम्बकः, स चायं पूर्णज्ञान एव सर्वोत्तमः —तेन विना दीक्षाद्यसंपत्तेः ।

योगी तु फलोत्सुकस्य युक्तो यदि उपायोपदेशेन अव्यवहितमेव फलं दातुं शक्तः उपायोपदेशेन तु ज्ञाने एव युक्तो मोक्षेऽपि अभ्युपायात् ३७.१२

ज्ञानपूर्णताकाङ्क्षी च बहूनपि गुरून् कुर्यात् ।

उत्तमोत्तमादिज्ञानभेदापेक्षया तेषु तु वर्तेत, संपूर्णज्ञानगुरुत्यागे तु प्रायश्चित्तमेव ।

और वही दैशिक, गुरु, आचार्य, दीक्षक और चुम्बक है; पूर्ण ज्ञान वाला वही सबसे उत्तम है, क्योंकि उसके बिना दीक्षा आदि सिद्ध नहीं होते। योगी फल के इच्छुक के लिए ठीक है, यदि वह उपाय बताकर सीधे फल दे सकता हो; पर उपाय बताने में वह ज्ञान में ही ठीक है, क्योंकि वही मोक्ष का भी उपाय है। पूर्ण ज्ञान चाहने वाला बहुत-से गुरु भी कर सकता है और उत्तम से उत्तम ज्ञान के भेद के अनुसार उनमें रहे; पर पूर्ण ज्ञान वाले गुरु को छोड़ने पर प्रायश्चित्त ही है।

पदपाठ सः च दैशिकः गुरुः आचार्यः दीक्षकः चुम्बकः — और वही दैशिक, गुरु, आचार्य, दीक्षक और चुम्बक है · सः च अयं पूर्ण-ज्ञानः एव सर्व-उत्तमः — और पूर्ण ज्ञान वाला वही सबसे उत्तम है · तेन विना दीक्षा-आदि-असंपत्तेः — क्योंकि उसके बिना दीक्षा आदि सिद्ध नहीं होते · योगी तु फल-उत्सुकस्य युक्तः — योगी फल के इच्छुक के लिए ठीक है · यदि उपाय-उपदेशेन — यदि उपाय बताकर · अव्यवहितम् एव फलं दातुं शक्तः — वह सीधे फल दे सकता हो · उपाय-उपदेशेन तु ज्ञाने एव युक्तः — पर उपाय बताने में वह ज्ञान में ही ठीक है · मोक्षे अपि अभ्युपायात् — क्योंकि वही मोक्ष का भी उपाय है · ज्ञान-पूर्णता-आकाङ्क्षी च — और पूर्ण ज्ञान चाहने वाला · बहून् अपि गुरून् कुर्यात् — बहुत-से गुरु भी कर सकता है · उत्तम-उत्तम-आदि-ज्ञान-भेद-अपेक्षया — उत्तम से उत्तम ज्ञान के भेद के अनुसार · तेषु तु वर्तेत — वह उनमें रहे · संपूर्ण-ज्ञान-गुरु-त्यागे तु प्रायश्चित्तम् एव — पर पूर्ण ज्ञान वाले गुरु को छोड़ने पर प्रायश्चित्त ही है

ननु सोऽपि अब्रुवन् विपरीतं वा ब्रुवन् किं न त्याज्यः, नैव इति ब्रूमः, तस्य हि पूर्णज्ञानत्वात् एव रागाद्यभाव इति अवचनादिकं शिष्यगतेनैव केनचित् अयोग्यत्वानाश्वस्तत्वादिना निमित्तेन स्यात् इति, तदुपासने यतनीयं शिष्येण, न तत्त्यागे ।

एवम् अनुग्रहनिमित्तं शक्तिपातो निरपेक्ष एव—कर्मादिनियत्यपेक्षणात् ।

पर क्या वह भी, यदि न बताए या उलटा बताए, छोड़ने योग्य नहीं? नहीं, हम कहते हैं। पूर्ण ज्ञान वाला होने से उसमें राग आदि नहीं; इसलिए न बताना आदि शिष्य में ही रहने वाले किसी कारण से होगा, जैसे अयोग्यता या अविश्वास। शिष्य को उसकी सेवा में यत्न करना चाहिए, उसे छोड़ने में नहीं। इस तरह अनुग्रह का कारण शक्तिपात सर्वथा निरपेक्ष है, क्योंकि नियति की अपेक्षा कर्म आदि को होती है।

पदपाठ ननु सः अपि — पर क्या वह भी · अब्रुवन् विपरीतं वा ब्रुवन् — न बताए या उलटा बताए तो · किं न त्याज्यः — क्या छोड़ने योग्य नहीं? · न एव इति ब्रूमः — नहीं, हम कहते हैं · तस्य हि पूर्ण-ज्ञानत्वात् एव राग-आदि-अभावः इति — क्योंकि पूर्ण ज्ञान वाला होने से उसमें राग आदि नहीं · अवचन-आदिकं — इसलिए न बताना आदि · शिष्य-गतेन एव केनचित् निमित्तेन स्यात् — शिष्य में ही रहने वाले किसी कारण से होगा · अयोग्यत्व-अनाश्वस्तत्व-आदिना इति — जैसे अयोग्यता या अविश्वास · तत्-उपासने यतनीयं शिष्येण — शिष्य को उसकी सेवा में यत्न करना चाहिए · न तत्-त्यागे — उसे छोड़ने में नहीं · एवम् अनुग्रह-निमित्तं शक्तिपातः निरपेक्षः एव — इस तरह अनुग्रह का कारण शक्तिपात सर्वथा निरपेक्ष है · कर्म-आदि-नियति-अपेक्षणात् — क्योंकि नियति की अपेक्षा कर्म आदि को होती है

तिरोभाव इति, तिरोभावो हि कर्माद्यपेक्षगाढदुःखमोहभागित्वफलः, यथाहि— प्रकाशस्वातन्त्र्यात् प्रबुद्धोऽपि मूढवत् चेष्टते हृदयेन च मूढचेष्टां निन्दति, तथा मूढोऽपि प्रबुद्धचेष्टां मन्त्राराधनादिकां कुर्यात्, निन्देच्च, यथा च अस्य मूढचेष्टा क्रियमाणापि प्रबुद्धस्य ध्वंसम् एति तथा अस्य प्रबुद्धचेष्टा, सा तु निन्द्यमाना— निषिद्धाचरणरूपत्वात् स्वयं च तयैव विशङ्कमानत्वात् एनं दुःखमोहपङ्के ७.१४ **निमज्जयति, न तु उत्पन्नशक्तिपातस्य तिरोभावोऽस्ति, अत्रापि च कर्माद्यपेक्षा पूर्ववत् निषेध्या, तत्रापि च इच्छावैचित्र्यात् एतद्देहमात्रोपभोग्यदुःखफलत्वं वा दीक्षासमयचर्यागुरुदेवाग्न्यादौ सेवानिन्दनोभयप्रसक्तानामिव प्राक् शिवशासनस्थानां तत्त्यागिनामिव ।**

तिरोभाव के विषय में: तिरोभाव का फल है कर्म आदि पर निर्भर गहरे दुःख और मोह का भागी बनना। प्रकाश की स्वतन्त्रता से प्रबुद्ध भी मूढ़ की तरह आचरण करता है और हृदय से मूढ़ के आचरण की निन्दा करता है; वैसे ही मूढ़ भी प्रबुद्ध का आचरण, मन्त्र-आराधना आदि, कर सकता है और उसकी निन्दा भी कर सकता है। जैसे मूढ़ का आचरण करने पर भी प्रबुद्ध के लिए नष्ट हो जाता है, वैसे ही मूढ़ के लिए प्रबुद्ध का आचरण; पर जब वह उसकी निन्दा करता है — क्योंकि यह निषिद्ध आचरण है, और वह स्वयं उसी से शंकित रहता है — तो वह उसे दुःख और मोह के कीचड़ में डुबो देता है। पर जिस पर शक्तिपात हो चुका, उसका तिरोभाव नहीं होता। यहाँ भी कर्म आदि की अपेक्षा पहले की तरह निषिद्ध है। और यहाँ भी इच्छा की विचित्रता से फल केवल इसी देह में भोगा जाने वाला दुःख भी हो सकता है — जैसे दीक्षा, समय, चर्या, गुरु, देव, अग्नि आदि के प्रति सेवा और निन्दा दोनों में लगे हुओं का, या जैसे पहले शिव-शासन में रहकर उसे छोड़ देने वालों का।

पदपाठ तिरोभावः इति — तिरोभाव के विषय में · तिरोभावः हि — तिरोभाव · कर्म-आदि-अपेक्ष-गाढ-दुःख-मोह-भागित्व-फलः — कर्म आदि पर निर्भर गहरे दुःख और मोह का भागी बनाना जिसका फल है · यथाहि — क्योंकि · प्रकाश-स्वातन्त्र्यात् — प्रकाश की स्वतन्त्रता से · प्रबुद्धः अपि मूढवत् चेष्टते — प्रबुद्ध भी मूढ़ की तरह आचरण करता है · हृदयेन च मूढ-चेष्टां निन्दति — और हृदय से मूढ़ के आचरण की निन्दा करता है · तथा मूढः अपि — वैसे ही मूढ़ भी · प्रबुद्ध-चेष्टां मन्त्र-आराधन-आदिकां कुर्यात् — प्रबुद्ध का आचरण, मन्त्र-आराधना आदि कर सकता है · निन्देत् च — और उसकी निन्दा भी कर सकता है · यथा च अस्य मूढ-चेष्टा क्रियमाणा अपि — और जैसे मूढ़ का आचरण करने पर भी · प्रबुद्धस्य ध्वंसम् एति — प्रबुद्ध के लिए नष्ट हो जाता है · तथा अस्य प्रबुद्ध-चेष्टा — वैसे ही मूढ़ के लिए प्रबुद्ध का आचरण · सा तु निन्द्यमाना — पर वह आचरण निन्दित होने पर · निषिद्ध-आचरण-रूपत्वात् — क्योंकि यह निषिद्ध आचरण है · स्वयं च तया एव विशङ्कमानत्वात् — और वह स्वयं उसी से शंकित रहता है · एनं दुःख-मोह-पङ्के निमज्जयति — उसे दुःख और मोह के कीचड़ में डुबो देता है · न तु उत्पन्न-शक्तिपातस्य तिरोभावः अस्ति — पर जिस पर शक्तिपात हो चुका, उसका तिरोभाव नहीं होता · अत्र अपि च कर्म-आदि-अपेक्षा पूर्ववत् निषेध्या — और यहाँ भी कर्म आदि की अपेक्षा पहले की तरह निषिद्ध है · तत्र अपि च इच्छा-वैचित्र्यात् — और यहाँ भी इच्छा की विचित्रता से · एतत्-देह-मात्र-उपभोग्य-दुःख-फलत्वं वा — फल केवल इसी देह में भोगा जाने वाला दुःख भी हो सकता है · दीक्षा-समय-चर्या-गुरु-देव-अग्नि-आदौ — दीक्षा, समय, चर्या, गुरु, देव, अग्नि आदि के प्रति · सेवा-निन्दन-उभय-प्रसक्तानाम् इव — जैसे सेवा और निन्दा दोनों में लगे हुओं का · प्राक् शिव-शासन-स्थानां तत्-त्यागिनाम् इव — या जैसे पहले शिव-शासन में रहकर उसे छोड़ देने वालों का

तत्रापि इच्छावैचित्र्यात् तिरोभूतोऽपि स्वयं वा शक्तिपातेन युज्यते, मृतो वा बन्धुगुर्वादिकृपामुखेन, इत्येवं पञ्चकृत्यभागित्वं स्वात्मनि अनुसंदधत् परमेश्वर एव, इति न खण्डितमात्मानं पश्येत् । ३६

यहाँ भी इच्छा की विचित्रता से तिरोभूत भी शक्तिपात से जुड़ता है — या तो स्वयं, या मरने पर बन्धु, गुरु आदि की कृपा के द्वारा। इस प्रकार अपने में पाँचों कृत्यों का भागी होना देखता हुआ वह परमेश्वर ही है; इसलिए आत्मा को कभी खण्डित न देखे।

पदपाठ तत्र अपि इच्छा-वैचित्र्यात् — यहाँ भी इच्छा की विचित्रता से · तिरोभूतः अपि — तिरोभूत भी · स्वयं वा शक्तिपातेन युज्यते — या तो स्वयं शक्तिपात से जुड़ता है · मृतः वा बन्धु-गुरु-आदि-कृपा-मुखेन — या मरने पर बन्धु, गुरु आदि की कृपा के द्वारा · इति एवं — इस प्रकार · पञ्च-कृत्य-भागित्वं स्व-आत्मनि अनुसंदधत् — अपने में पाँचों कृत्यों का भागी होना देखता हुआ · परमेश्वरः एव — वह परमेश्वर ही है · इति न खण्डितम् आत्मानं पश्येत् — इसलिए आत्मा को कभी खण्डित न देखे

यथा निर्गलस्वात्मस्वातन्त्र्यात्परमेश्वरः ।
आच्छादयेन्निजं धाम तथा विवृणुयादपि ॥ ३७

जैसे परमेश्वर अपने आत्मा की निर्बाध स्वतन्त्रता से अपने धाम को ढक लेता है, वैसे ही वह उसे खोल भी देता है।

पदपाठ यथा — जैसे · निर्गल-स्व-आत्म-स्वातन्त्र्यात् — अपने आत्मा की निर्बाध स्वतन्त्रता से · परमेश्वरः — परमेश्वर · आच्छादयेत् — ढक लेता है · निजम् — अपने · धाम — धाम को · तथा — वैसे ही · विवृणुयात् — खोल भी देता है · अपि — भी

अप्रबुद्धेऽपि वा धाम्नि स्वस्मिन्बुद्धवदाचरेत् ।
भूयो बुद्ध्येत वा सोऽयं शक्तिपातोऽनपेक्षकः ॥ ३८

या अपने धाम के अप्रबुद्ध होने पर भी वह प्रबुद्ध की तरह आचरण करे; या फिर जाग जाए। यह शक्तिपात निरपेक्ष है।

पदपाठ अप्रबुद्धे — अप्रबुद्ध होने पर · अपि — भी · वा — या · धाम्नि — धाम के · स्वस्मिन् — अपने · बुद्धवत् — प्रबुद्ध की तरह · आचरेत् — आचरण करे · भूयः — फिर · बुद्ध्येत — जाग जाए · वा — या · सः — यह · अयम् — वह · शक्तिपातः — शक्तिपात · अनपेक्षकः — निरपेक्ष है

जह निअच्छेउ
महेसरु अच्छवि संविरवितन्ह ।
पुणुस अत्ति विपर
पसरु अच्छ इविमल सरूइ ॥ ३८.१

जैसे महेश्वर अपनी इच्छा से अपने संवित्-सूर्य को ढक लेता है, वैसे ही फिर वह उलटी ओर फैलता है, स्वच्छ, अपने निर्मल स्वरूप में।

पदपाठ जह निअच्छेउ महेसरु — जैसे महेश्वर अपनी इच्छा से · अच्छवि संविरवितन्ह — अपने संवित्-सूर्य को ढक लेता है · पुणुस अत्ति विपर पसरु — वैसे ही फिर वह उलटी ओर फैलता है · अच्छ इविमल सरूइ — स्वच्छ, अपने निर्मल स्वरूप में

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे शक्तिपातप्रकाशनं नाम एकादशमाह्निकम् ॥ ११ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में शक्तिपातप्रकाशन नामक ग्यारहवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

द्वादशमाह्निकम्

स्नानप्रकाशनम्

दीक्षा का वर्णन करने से पहले उससे पूर्व किया जाने वाला स्नान सिखाना है। स्नान का अर्थ है शुद्धता, और शुद्धता का अर्थ है परमेश्वर के स्वरूप में समावेश। अशुद्धि वह भाव है कि जो वास्तव में एक है — अपना आत्मा, जिसका सार स्वतन्त्र, आनन्दमय चित् है, या सारा विश्व — उसमें किसी और स्वभाव की चीज़ मिली हुई है। यह अशुद्धि महाभैरव में समावेश से हटती है, जो किसी को झट मिलता है और किसी को आगे के उपायों से, एक या अनेक, किसी विशेष समय और स्थान पर, जैसा विश्वास जिसे मिले। स्नान आठ प्रकार का है: पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, चन्द्र, सूर्य और आत्मा में, जिन्हें मन्त्रन्यास से परमेश्वर का रूप बना लिया जाता है; जब देह इस तरह परमेश्वर से आविष्ट होती है तो देह में फैली चेतना भी आविष्ट हो जाती है — और जो केवल स्नान और स्वच्छ वस्त्र से प्रसन्न होता है, उसके लिए भी यह परमेश्वर की ओर एक उपाय बन जाता है। शास्त्र हर एक के मुख्य फल गिनाते हैं: धृति, आप्यायन, वीर्य, मल का दाह, व्याप्ति, सृष्टि की सामर्थ्य, स्थिति की सामर्थ्य और अभेद। वीर के लिए विशेष रूप हैं — रण की धूल, वीर-जल, महावायु, वीर-भस्म, श्मशान का आकाश, उनमें रखे सूर्य-चन्द्र और निर्विकल्प आत्मा। स्नान फिर बाह्य और आभ्यन्तर है: बाह्य है हर तत्त्व में, जिसे उसमें उपास्य मन्त्र से एक कर लिया गया हो, डूबना, और उसका मुख्य रूप है वीर के पात्र में आनन्द-द्रव्य को देखकर शिवमय करना, उसी में मन्त्र-चक्र की पूजा और उसी से देह और प्राण दोनों पर टिके देवता-चक्र का तर्पण; आभ्यन्तर है पृथ्वी आदि के रूप भीतर धारण करके उनके चक्रों से तन्मय होना। स्नान वास्तव में परभैरव में निमज्जन है; बाहरी स्नान केवल उपचार से स्नान है।

दीक्षादिकं वक्तव्यम् इति उक्तम्, अतो दीक्षास्वरूपनिरूपणार्थं प्राक् कर्तव्यं स्नानम् उपदिश्यते ।

स्नानं च शुद्धता उच्यते, शुद्धता च परमेश्वरस्वरूपसमावेशः । ३९.१

कालुष्यापगमो हि शुद्धिः, कालुष्यं च तदेकरूपेऽपि अतत्स्वभावरूपान्तरसंवलनाभिमानः ।

कहा गया था कि दीक्षा आदि कहनी चाहिए। इसलिए दीक्षा का स्वरूप बताने के लिए पहले किया जाने वाला स्नान सिखाया जाता है। स्नान का अर्थ है शुद्धता, और शुद्धता का अर्थ है परमेश्वर के स्वरूप में समावेश। क्योंकि अशुद्धि का हटना ही शुद्धि है, और अशुद्धि है जो वास्तव में एक ही रूप है, उसमें किसी और स्वभाव के दूसरे रूप के मिले होने का भाव।

पदपाठ दीक्षा-आदिकं वक्तव्यम् इति उक्तम् — कहा गया था कि दीक्षा आदि कहनी चाहिए · अतः दीक्षा-स्वरूप-निरूपण-अर्थम् — इसलिए दीक्षा का स्वरूप बताने के लिए · प्राक् कर्तव्यं स्नानम् उपदिश्यते — पहले किया जाने वाला स्नान सिखाया जाता है · स्नानं च शुद्धता उच्यते — स्नान का अर्थ है शुद्धता · शुद्धता च परमेश्वर-स्वरूप-समावेशः — और शुद्धता का अर्थ है परमेश्वर के स्वरूप में समावेश · कालुष्य-अपगमः हि शुद्धिः — क्योंकि अशुद्धि का हटना ही शुद्धि है · कालुष्यं च — और अशुद्धि है · तत्-एक-रूपे अपि — जो वास्तव में एक ही रूप है, उसमें · अ-तत्-स्वभाव-रूप-अन्तर-संवलन-अभिमानः — किसी और स्वभाव के दूसरे रूप के मिले होने का भाव

तदिह स्वतन्त्रानन्दचिन्मात्रसारे स्वात्मनि विश्वत्रापि वा तदन्यरूपसंवलनाभिमानः अशुद्धिः, सा च महाभैरवसमावेशेन व्यपोह्यते, सोऽपि कस्यचित् झटिति भवेत्, कस्यापि उपायान्तरमुखप्रेक्षी । ३९.२ तत्रापि च एकद्वित्र्यादिभेदेन समस्तव्यस्ततया क्वचित् कस्यचित् कदाचित् च, तथा आश्वासोपलब्धेः विचित्रो भेदः ।

इसलिए यहाँ अशुद्धि है अपने आत्मा में — जिसका सार केवल स्वतन्त्र, आनन्दमय चित् है — या सारे विश्व में उससे भिन्न रूप के मिले होने का भाव। वह महाभैरव में समावेश से हटती है। वह समावेश किसी को झट हो जाता है; किसी के लिए वह दूसरे उपायों की राह देखता है। और उसमें भी भेद विचित्र है — एक, दो, तीन आदि उपायों से, मिलकर या अलग-अलग, कहीं, किसी को, कभी, जैसा विश्वास जिसे मिले।

पदपाठ तत् इह — इसलिए यहाँ · स्वतन्त्र-आनन्द-चित्-मात्र-सारे स्व-आत्मनि — अपने आत्मा में, जिसका सार केवल स्वतन्त्र, आनन्दमय चित् है · विश्वत्र अपि वा — या सारे विश्व में · तत्-अन्य-रूप-संवलन-अभिमानः अशुद्धिः — उससे भिन्न रूप के मिले होने का भाव अशुद्धि है · सा च महाभैरव-समावेशेन व्यपोह्यते — और वह महाभैरव में समावेश से हटती है · सः अपि कस्यचित् झटिति भवेत् — वह समावेश किसी को झट हो जाता है · कस्य अपि उपाय-अन्तर-मुख-प्रेक्षी — किसी के लिए वह दूसरे उपायों की राह देखता है · तत्र अपि च — और उसमें भी · एक-द्वि-त्रि-आदि-भेदेन समस्त-व्यस्ततया — एक, दो, तीन आदि उपायों से, मिलकर या अलग-अलग · क्वचित् कस्यचित् कदाचित् च — कहीं, किसी को, कभी · तथा आश्वास-उपलब्धेः — जैसा विश्वास जिसे मिले · विचित्रः भेदः — भेद विचित्र है

स च अष्टधा—क्षितिजलपवनहुताशनाकाशसोमसूर्यात्मरूपासु अष्टासु मूर्तिषु मन्त्रन्यासमहिम्ना परमेश्वररूपतया भावितासु तादात्म्येन च देहे परमेश्वरसमाविष्टे शरीरादिविभागवृत्तेः चैतन्यस्यापि परमेश्वरसमावेशप्राप्तिः, कस्यापि तु स्नानवस्त्रादितुष्टिजनकत्वात् परमेशोपायतामेतीति, उक्तं च ३९.३
श्रीमदानन्दादौ—धृतिः आप्यायो वीर्यं मलदाहो व्याप्तिः सृष्टिसामर्थ्यं स्थितिसामर्थ्यम् अभेदश्च इत्येतानि तेषु मुख्यफलानि—तेषु तेषु उपाहितस्य मन्त्रस्य तत्तद्रूपधारित्वात् ।

और वह आठ प्रकार का है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, चन्द्र, सूर्य और आत्मा — इन आठ मूर्तियों में, जो मन्त्रन्यास की महिमा से परमेश्वर का रूप बना ली गई हैं, और उनसे तादात्म्य द्वारा देह के परमेश्वर से आविष्ट होने पर शरीर आदि के विभागों में फैली चेतना को भी परमेश्वर में समावेश मिल जाता है। और जो केवल स्नान, वस्त्र आदि से प्रसन्न होता है, उसके लिए भी वह परमेश्वर का उपाय बन जाता है। श्रीमद् आनन्द आदि में कहा है: धृति, आप्यायन, वीर्य, मल का दाह, व्याप्ति, सृष्टि की सामर्थ्य, स्थिति की सामर्थ्य और अभेद — ये उन आठों के मुख्य फल हैं, क्योंकि उनमें रखा हुआ मन्त्र उसी-उसी रूप को धारण करता है।

पदपाठ सः च अष्टधा — और वह आठ प्रकार का है · क्षिति-जल-पवन-हुताशन-आकाश-सोम-सूर्य-आत्म-रूपासु अष्टासु मूर्तिषु — पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, चन्द्र, सूर्य और आत्मा — इन आठ मूर्तियों में · मन्त्र-न्यास-महिम्ना परमेश्वर-रूपतया भावितासु — जो मन्त्रन्यास की महिमा से परमेश्वर का रूप बना ली गई हैं · तादात्म्येन च देहे परमेश्वर-समाविष्टे — और उनसे तादात्म्य द्वारा देह के परमेश्वर से आविष्ट होने पर · शरीर-आदि-विभाग-वृत्तेः चैतन्यस्य अपि — शरीर आदि के विभागों में फैली चेतना को भी · परमेश्वर-समावेश-प्राप्तिः — परमेश्वर में समावेश मिल जाता है · कस्य अपि तु — और किसी के लिए भी · स्नान-वस्त्र-आदि-तुष्टि-जनकत्वात् — क्योंकि स्नान, वस्त्र आदि से प्रसन्नता होती है · परमेश-उपायताम् एति इति — वह परमेश्वर का उपाय बन जाता है · उक्तं च श्रीमत्-आनन्द-आदौ — और श्रीमद् आनन्द आदि में कहा है · धृतिः आप्यायः वीर्यं मल-दाहः — धृति, आप्यायन, वीर्य, मल का दाह · व्याप्तिः

सृष्टि-सामर्थ्यं स्थिति-सामर्थ्यम् अभेदः च — व्याप्ति, सृष्टि की सामर्थ्य, स्थिति की सामर्थ्य और अभेद · **इति एतानि तेषु मुख्य-फलानि** — ये उन आठों के मुख्य फल हैं · **तेषु तेषु उपाहितस्य मन्त्रस्य** — क्योंकि उनमें रखा हुआ मन्त्र · **तत्-तत्-रूप-धारित्वात्** — उसी-उसी रूप को धारण करता है

वीरोद्देशेन तु विशेषः, तद्यथा—रणरेणुः वीराम्भः महामरुत् वीरभस्म श्मशाननभः तदुपहितौ चन्द्रार्कौ आत्मा निर्विकल्पकः । पुनरपि बाह्याभ्यन्तरतया द्वित्वम्, बहिरुपास्यमन्त्रतादात्म्येन तन्मयीकृते तत्र तत्र निमज्जनम् इत्युक्तम् ।

विशेषस्तु आनन्दद्रव्यं वीराधारगतं निरीक्षणेन शिवमयीकृत्य तत्रैव ३९.४ **मन्त्रचक्रपूजनम्, ततः तेनैव देहप्राणोभयाश्रितदेवताचक्रतर्पणम् इति मुख्यं स्नानम् ।**

आभ्यन्तरं यथा—तत्तद्भरादिरूपधारणया तत्र तत्र पार्थिवादौ चक्रे तन्मयीभावः ।

वीर के लिए विशेष रूप है, जैसे: रण की धूल, वीर-जल, महावायु, वीर-भस्म, श्मशान का आकाश, उनमें रखे चन्द्र और सूर्य, और निर्विकल्प आत्मा। फिर बाह्य और आभ्यन्तर भेद से वह दो प्रकार का है। बाहर, उपास्य मन्त्र से तादात्म्य द्वारा तन्मय किए हुए उस-उस तत्त्व में डूबना — यह कहा जा चुका। विशेष यह है: वीर के पात्र में रखे आनन्द-द्रव्य को दृष्टि से शिवमय करके उसी में मन्त्र-चक्र की पूजा, फिर उसी से देह और प्राण दोनों पर टिके देवता-चक्र का तर्पण — यह मुख्य स्नान है। आभ्यन्तर इस प्रकार है: पृथ्वी आदि के उस-उस रूप को धारण करके पार्थिव आदि उस-उस चक्र से तन्मय होना।

पदपाठ वीर-उद्देशेन तु विशेषः — वीर के लिए विशेष रूप है · तत् यथा — जैसे · रण-रेणुः वीर-अम्भः महा-मरुत् वीर-भस्म श्मशान-नभः — रण की धूल, वीर-जल, महावायु, वीर-भस्म, श्मशान का आकाश · तत्-उपहितौ चन्द्र-अर्कौ — उनमें रखे चन्द्र और सूर्य · आत्मा निर्विकल्पकः — और निर्विकल्प आत्मा · पुनः अपि बाह्य-आभ्यन्तरतया द्वित्वम् — फिर बाह्य और आभ्यन्तर भेद से वह दो प्रकार का है · बहिः उपास्य-मन्त्र-तादात्म्येन तन्मयी-कृते — बाहर, उपास्य मन्त्र से तादात्म्य द्वारा तन्मय किए हुए · तत्र तत्र निमज्जनम् इति उक्तम् — उस-उस में डूबना — यह कहा जा चुका · विशेषः तु — विशेष

यह है · आनन्द-द्रव्यं वीर-आधार-गतं — वीर के पात्र में रखे आनन्द-द्रव्य को · निरीक्षणेन शिवमयी-कृत्य — दृष्टि से शिवमय करके · तत्र एव मन्त्र-चक्र-पूजनम् — उसी में मन्त्र-चक्र की पूजा · ततः तेन एव — फिर उसी से · देह-प्राण-उभय-आश्रित-देवता-चक्र-तर्पणम् — देह और प्राण दोनों पर टिके देवता-चक्र का तर्पण · इति मुख्यं स्नानम् — यह मुख्य स्नान है · आभ्यन्तरं यथा — आभ्यन्तर इस प्रकार है · तत्-तत्-धरा-आदि-रूप-धारणया — पृथ्वी आदि के उस-उस रूप को धारण करके · तत्र तत्र पार्थिव-आदौ चक्रे तन्मयी-भावः — पार्थिव आदि उस-उस चक्र से तन्मय होना

परभैरवसंमज्जन-
माहुः स्नानं यथा तु तद्भवति ।
तदपि बाह्यं स्नानं
न मुख्यमुपचारतः किं तु ॥ ३९

परभैरव में निमज्जन, जिस तरह भी वह हो, उसी को स्नान कहते हैं। बाहरी स्नान भी स्नान है — मुख्य रूप से नहीं, बल्कि उपचार से।

पदपाठ पर-भैरव-संमज्जनम् — परभैरव में निमज्जन को · आहुः — कहते हैं · स्नानम् — स्नान · यथा — जिस तरह · तु — ही · तत् — वह · भवति — होता है · तत् — वह · अपि — भी · बाह्यम् — बाहरी · स्नानम् — स्नान · न — नहीं · मुख्यम् — मुख्य · उपचारतः — उपचार से · किं तु — बल्कि

परमानन्दनिमज्जणु
इउपरमत्थिण ह्माणु ।
तहिं आविट्टतरत्ति
दिणु जाणइ पर अप्पाणु ॥ ३९.५

परमानन्द में निमज्जन — यही परमार्थ से स्नान है। उसमें रात-दिन डूबा हुआ परम आत्मा को जान लेता है।

पदपाठ परमानन्दनिमज्जणु — परमानन्द में निमज्जन · इउपरमत्थिण ह्माणु — यही परमार्थ से स्नान है · तहिं आविट्टतरत्ति दिणु — उसमें रात-दिन डूबा हुआ · जाणइ पर अप्पाणु — परम आत्मा को जान लेता है

इति श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तविरचिते श्रीतन्त्रसारे स्नानप्रकाशनं नाम द्वादशमाह्निकम् ॥ १२ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में स्नानप्रकाशन नामक बारहवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

त्रयोदशमाह्निकम्

समयिदीक्षाप्रकाशनम्

यह आह्निक बाहरी विधि को पूरे क्रम से रखता है और हर पद पर उसे अब तक कहे हुए भीतरी तत्त्व के रूप में पढ़ता है। पूजा का स्थान वही है जहाँ हृदय प्रसन्न हो, क्योंकि और कुछ उसे परमेश्वर-समावेश के योग्य नहीं बनाता; पीठ और पर्वत-शिखर केवल इसलिए कहे गए हैं कि वे इस प्रसन्नता में सहायक हैं। यागगृह के सामने हाथों और देह पर मालिनी और शब्दराशि के दो मन्त्रों से सामान्य न्यास किया जाता है — पहले शक्ति, फिर शक्तिमान् — और भगवती मालिनी का पूरा अर्थ खोला जाता है: रुद्रशक्तियों की माला से युक्त, फलों में पुष्पित, संसार-शीत के संहार का नाद गुनगुनाती हुई, सिद्धि और मोक्ष दोनों धारण करने वाली, ताकि टूटी हुई विधि वाला या सांसारिक मन्त्र भी उससे पूर्ण हो जाए। अर्घपात्र पर वही न्यास पूरी प्रक्रिया का उद्देश्य दिखाता है: क्रिया का हर कारक — स्थान, पात्र, पूजक, पूज्य — परमेश्वर बना दिया जाता है, जिससे जो इसी दृष्टि से विधि करता है वह बिना और ज्ञान या योग के परमेश्वर ही हो जाता है। फिर यागगृह में प्रवेश, और दिशाओं पर लम्बा चिन्तन: मध्य चित्-प्रकाश ही है, ऊपर वह जो प्रकाश अपना बनाता है, नीचे वह जो नहीं, पूर्व वह जो प्रकाश के सम्मुख है, और यों चारों दिशाएँ जिनमें भैरव के मुख हैं — दिशाएँ अलग तत्त्व नहीं, संवित् की महिमा का मूर्ति धारण है, और दिशाएँ बाँटने वाला सूर्य परमेश्वर की ज्ञानशक्ति ही है; आत्मा, सूर्य और परमेश्वर एक रूप में भावित होते हैं। उत्तर की ओर मुख करके बैठकर देह और पुर्यष्टक में अहंभाव को जलाया जाता है, निस्तरंग धाम पर आरूढ़ होकर आद्या स्पन्दकला पर, जो भगवान् की मूर्ति है, षोढा न्यास किया जाता है, और शक्तियाँ ही मुख्य पूज्य हैं। फिर शरीर, प्राण और बुद्धि में शूलाब्ज-न्यास: आधारशक्ति के मूल से तत्त्वों के दण्ड से होते हुए शुद्धविद्या-पद्म तक, जहाँ सदाशिव महाप्रेत रूप में हैं, और उनके तीन मूर्धरन्ध्रों से निकला शक्ति, व्यापिनी, समना का त्रिशूल द्वादशान्त तक; इस विश्वमय आसन पर देवता को रखकर सब भावों का अर्पण ही पूजन है, तन्मय होना ध्यान, उस भीतरी परामर्श में झूलना जप, उस परामर्श के तेज से विश्व को अपना बना लेना होम। दो श्लोक इसे बाँधते हैं: मूल से द्वादशान्त तक त्रिशूल स्मरण करके खेचरी

दशा में पहुँचता है, जो आकाश में संचार और स्थिति से और उसका अमृत पीने से आकाश को भर देने वाली है। भीतरी याग से ही वास्तव में कृतकृत्यता है, फिर भी बाहरी याग भी करना चाहिए — अवच्छेद हटाने के लिए और जिसे समावेश नहीं हुआ उसे अभ्यास से दिलाने के लिए।

फिर अधिवासन की विधि: भूमि-परिग्रह, गणेश-पूजा, कुम्भ और कलश की पूजा, स्थण्डिल-पूजा और हवन; शिष्य का अधिवासन दाँतों को तेज करने जैसा है, देवता का कार्य की ओर उन्मुख होना, गुरु का उसे ग्रहण करना। अस्त्र से अभिमन्त्रित सरसों, धान्य, अक्षत और लाजा बिखेरकर ईशान की ओर बटोरने से भूमि ली जाती है; कुम्भ आनन्द-द्रव्य से भरकर एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित होता है; शिष्य अस्त्रकलश लेकर घर के चारों ओर धारा गिराता है और गुरु कुम्भ लिए इन्द्र आदि लोकपालों के लिए श्लोक पढ़ता हुआ पीछे चलता है। अग्नि जलाकर हृदय की बोधाग्नि से एक की जाती है, मन्त्र घी और तिल से तृप्त किए जाते हैं, और स्रुक्-स्रुव को शक्ति-शिव रूप में जोड़कर खड़े होकर द्वादशान्त के आकाश में उगे शिव-पूर्णचन्द्र से गिरती अमृतधारा की भावना करते हुए पूर्णाहुति दी जाती है; चरु बाँटा जाता है, दन्तकाष्ठ फेंका जाता है, और आँखों पर पट्टी बाँधे शिष्य को लाकर पुष्पांजलि डलवाई जाती है — पट्टी हटते ही वह उस स्थान में उपस्थित मन्त्र को साक्षात् देखकर तन्मय हो जाता है।

गुरु का दाहिना हाथ, जो देवताचक्र-रूप है, मूर्धा, हृदय और नाभि में शिष्य के पाश जलाता है; बायाँ, जो सौम्य है, शुद्ध तत्त्व से उसे पुष्ट करता है; शिष्य गुरु के पास सोता है और बुरा स्वप्न उसे समझाया नहीं जाता, केवल अस्त्र से उसका निष्कृति की जाती है। अगले दिन गुरु शिष्य के प्राण के क्रम से उसमें प्रवेश करके हृदय, कण्ठ, तालु, ललाट, रन्ध्र और द्वादशान्त में छह कारणों का स्पर्श करता है, हर जगह आठ संस्कारों का चिन्तन करता है, और अड़तालीस संस्कारों के बाद शिष्य रुद्रांश को पाकर समयी हो जाता है। फिर समय कहे जाते हैं: गुरु, शास्त्र और देव में भक्ति, उनके विरोधियों से विमुखता, गुरु के कुल और पूर्व-दीक्षितों का आदर, पूजा के समय के बाहर देवता, गुरु और मन्त्र का नाम न लेना, गुरु के सामने खेल नहीं, नीचे मार्ग वालों से संगति नहीं, चक्र में जन्म-भेद का संकल्प नहीं, शरीर से बढ़कर कोई आयतन या तीर्थ नहीं, और मन्त्र-हृदय का निरन्तर स्मरण। यह सुनकर और स्वीकार करके शिष्य धन, स्त्री और शरीर तक की दक्षिणा से गुरु को और पूर्व-दीक्षितों और दीन-अनाथों को तृप्त करता है; अब वह मन्त्राभ्यास, नित्यपूजा, श्रवण और अध्ययन का अधिकारी है, और हर नैमित्तिक में गुरु

से ही प्रार्थना करे। समापक श्लोक: पूरे अध्वा को देखकर और अपने आत्मा को पूर्ण देखकर शिष्य गुरु की अनुग्रह-बुद्धि से उसे द्वादशान्त तक देखे — यों बालक समयी होता है।

अथ प्रसन्नहृदयो यागस्थानं यायात्, तच्च यत्रैव हृदयं प्रसादयुक्तं परमेश्वरसमावेशयोग्यं भवति तदेव, न तु अस्य अन्यल्लक्षणम्, उक्तावपि ध्येयतादात्म्यमेव कारणम्, तदपि भावप्रसादादेव इति नान्यत् स्थानम् । पीठपर्वताग्रम् इत्यादिस्तु शास्त्रे स्थानोद्देश एतत्पर एव बोद्धव्यः—तेषु तेषु १०.१ **पीठादिस्थानेषु परमेशनियत्या परमेश्वराविष्टानां शक्तीनां देहग्रहणात्, आर्यदेशा इव धार्मिकाणां, म्लेच्छदेशा इव अधार्मिकाणाम्, पर्वताग्रादेशश्चैकान्तत्वेन विक्षेपपरिहारात् ऐकाग्र्यपदत्वम् इति ।**

अब प्रसन्न हृदय से पूजा के स्थान पर जाए। और वह स्थान वही है जहाँ हृदय प्रसन्न होकर परमेश्वर-समावेश के योग्य होता है; उसका और कोई लक्षण नहीं। जहाँ कोई स्थान कहा भी गया है, वहाँ भी कारण ध्येय से तादात्म्य ही है, और वह भी भाव की प्रसन्नता से ही होता है। इसलिए और कोई स्थान नहीं। शास्त्र में "पीठ, पर्वत-शिखर" आदि जो स्थानों का निर्देश है, उसे इसी के लिए समझना चाहिए: उन-उन पीठ आदि स्थानों में परमेश्वर की नियति से परमेश्वर से आविष्ट शक्तियाँ देह धारण करती हैं, जैसे आर्य देश धार्मिकों के लिए और म्लेच्छ देश अधार्मिकों के लिए; और पर्वत-शिखर आदि एकान्त होने से विक्षेप दूर रखते हैं, इसलिए वे एकाग्रता के स्थान हैं।

पदपाठ अथ प्रसन्न-हृदयः याग-स्थानं यायात् — अब प्रसन्न हृदय से पूजा के स्थान पर जाए · तत् च यत्र एव हृदयं प्रसाद-युक्तं परमेश्वर-समावेश-योग्यं भवति तत् एव — और वह स्थान वही है जहाँ हृदय प्रसन्न होकर परमेश्वर-समावेश के योग्य होता है · न तु अस्य अन्यत् लक्षणम् — उसका और कोई लक्षण नहीं · उक्तौ अपि ध्येय-तादात्म्यम् एव कारणम् — जहाँ कोई कहा भी गया है, वहाँ भी कारण ध्येय से तादात्म्य ही है · तत् अपि भाव-प्रसादात् एव — और वह भी भाव की प्रसन्नता से ही होता है · इति न अन्यत् स्थानम् — इसलिए और कोई स्थान नहीं · पीठ-पर्वत-अग्रम् इति-आदिः तु शास्त्रे स्थान-उद्देशः — शास्त्र में "पीठ, पर्वत-शिखर" आदि जो स्थानों का निर्देश है · एतत्-परः एव बोद्धव्यः — उसे इसी के लिए

समझना चाहिए · तेषु तेषु पीठ-आदि-स्थानेषु — उन-उन पीठ आदि स्थानों में · परमेश-नियत्या परमेश्वर-आविष्टानां शक्तीनां देह-ग्रहणात् — क्योंकि परमेश्वर की नियति से परमेश्वर से आविष्ट शक्तियाँ वहाँ देह धारण करती हैं · आर्य-देशाः इव धार्मिकाणाम् — जैसे आर्य देश धार्मिकों के लिए · म्लेच्छ-देशाः इव अधार्मिकाणाम् — और म्लेच्छ देश अधार्मिकों के लिए · पर्वत-अग्र-आदेः च एकान्तत्वेन विक्षेप-परिहारात् — और पर्वत-शिखर आदि एकान्त होने से विक्षेप दूर रखते हैं · ऐकाग्र्य-पदत्वम् इति — इसलिए वे एकाग्रता के स्थान हैं

तत्र याग॰गृहाग्रे बहिरेव सामान्यन्यासं कुर्यात्, करयोः पूर्वं, ततो देहे ।
ह्रीं-न-फ-ह्रीं, ह्रीं-आ-क्ष-ह्रीं इत्याभ्यां शक्तिशक्तिमद्वाचकाभ्यां
मालिनीशब्दराशिमन्त्राभ्याम्, एकेनैव आदौ शक्तिः ततः शक्तिमानिति, ४०.२
मुक्तौ पादाग्राच्छिरोऽन्तम्, भुक्तौ तु सर्वो विपर्ययः ।

वहाँ याग॰गृह के सामने, बाहर ही, सामान्य न्यास करे — पहले हाथों पर, फिर देह पर — ह्रीं न फ ह्रीं और ह्रीं आ क्ष ह्रीं इन दो मन्त्रों से, जो मालिनी और शब्दराशि के मन्त्र हैं और शक्ति तथा शक्तिमान् को कहते हैं; एक-एक से, पहले शक्ति, फिर शक्तिमान्। मुक्ति के लिए पैर के अग्र भाग से सिर तक; भोग के लिए सब कुछ उल्टा।

पदपाठ तत्र याग-गृह-अग्रे बहिः एव सामान्य-न्यासं कुर्यात् — वहाँ याग॰गृह के सामने, बाहर ही, सामान्य न्यास करे · करयोः पूर्वं ततः देहे — पहले हाथों पर, फिर देह पर · ह्रीं-न-फ-ह्रीं ह्रीं-आ-क्ष-ह्रीं इति आभ्याम् — इन दो से — ह्रीं न फ ह्रीं और ह्रीं आ क्ष ह्रीं · शक्ति-शक्तिमत्-वाचकाभ्यां मालिनी-शब्दराशि-मन्त्राभ्याम् — मालिनी और शब्दराशि के मन्त्रों से, जो शक्ति और शक्तिमान् को कहते हैं · एकेन एव आदौ शक्तिः ततः शक्तिमान् इति — एक-एक से — पहले शक्ति, फिर शक्तिमान् · मुक्तौ पाद-अग्रात् शिरः-अन्तम् — मुक्ति के लिए पैर के अग्र भाग से सिर तक · भुक्तौ तु सर्वः विपर्ययः — भोग के लिए सब कुछ उल्टा

मालिनी हि भगवती मुख्यं शाक्तं रूपं बीजयोनिसंघट्टेन समस्तकामदुघम् । अन्वर्थं चैतन्नाम रुद्रशक्तिमालाभिर्युक्ता फलेषु पुष्पिता संसारशिशिरसंहारनादभ्रमरी सिद्धिमोक्षधारिणी दानादानशक्तियुक्ता इति र-ल-योरेकत्वस्मृतेः । ४०.३

अत एव हि भ्रष्टविधिरपि मन्त्र एतन्न्यासात् पूर्णो भवति, साञ्जनोऽपि गारुडवैष्णवादिर्निरञ्जनताम् एत्य मोक्षप्रदो भवति । देहन्यासानन्तरम् अर्घपात्रे अयमेव न्यासः ।

क्योंकि भगवती मालिनी शक्ति का मुख्य रूप है, बीज और योनि के संघट्ट से सब कामनाएँ देने वाली। और यह नाम अर्थ के अनुरूप है: वह रुद्रशक्तियों की मालाओं से युक्त है, फलों में पुष्पित है, संसार-रूपी शीत का संहार करने वाले नाद की भ्रमरी है, सिद्धि और मोक्ष धारण करने वाली है, देने और लेने की शक्ति से युक्त है — क्योंकि र और ल एक माने गए हैं। इसीलिए जिसकी विधि टूट गई हो ऐसा मन्त्र भी इस न्यास से पूर्ण हो जाता है, और गारुड, वैष्णव आदि सांजन मन्त्र भी निरंजन होकर मोक्ष देने वाला हो जाता है। देह-न्यास के बाद अर्घपात्र पर यही न्यास होता है।

पदपाठ मालिनी हि भगवती मुख्यं शाक्तं रूपम् — क्योंकि भगवती मालिनी शक्ति का मुख्य रूप है · बीज-योनि-संघट्टेन समस्त-काम-दुघम् — बीज और योनि के संघट्ट से सब कामनाएँ देने वाली · अन्वर्थं च एतत् नाम — और यह नाम अर्थ के अनुरूप है · रुद्र-शक्ति-मालाभिः युक्ता — रुद्रशक्तियों की मालाओं से युक्त · फलेषु पुष्पिता — फलों में पुष्पित · संसार-शिशिर-संहार-नाद-भ्रमरी — संसार-रूपी शीत का संहार करने वाले नाद की भ्रमरी · सिद्धि-मोक्ष-धारिणी — सिद्धि और मोक्ष धारण करने वाली · दान-आदान-शक्ति-युक्ता इति — देने और लेने की शक्ति से युक्त · र-ल-योः एकत्व-स्मृतेः — क्योंकि र और ल एक माने गए हैं · अतः एव हि भ्रष्ट-विधिः अपि मन्त्रः — इसीलिए जिसकी विधि टूट गई हो ऐसा मन्त्र भी · एतत्-न्यासात् पूर्णः भवति — इस न्यास से पूर्ण हो जाता है · स-अञ्जनः अपि गारुड-वैष्णव-आदिः — और गारुड, वैष्णव आदि सांजन मन्त्र भी · निरञ्जनताम् एत्य मोक्ष-प्रदः भवति — निरंजन होकर मोक्ष देने वाला हो जाता है · देह-न्यास-अनन्तरम् अर्घ-पात्रे अयम् एव न्यासः — देह-न्यास के बाद अर्घपात्र पर यही न्यास होता है

इह हि क्रियाकारकाणां परमेश्वराभेदप्रतिपत्तिदार्ढ्यसिद्धये पूजाक्रिया उदाहरणीकृता, तत्र च सर्वकारकाणाम् इत्थं परमेश्वरीभावः, तत्र यष्ट्राधारस्य स्थानशुद्ध्यापादानकरणयोरर्घपात्रशुद्धिन्यासाभ्याम् यष्टुर्देहन्यासात्, याज्यस्य स्थण्डिलादिन्यासात् ।

४०.४

एवं क्रियाक्रमेणापि परमेश्वरीकृतसमस्तकारकः तयैव दृशा सर्वक्रियाः पश्यन् विनापि प्रमुखज्ञानयोगाभ्यां परमेश्वर एव भवति ।

एवम् अर्घपात्रे न्यस्य पुष्पधूपाद्यैः पूजयित्वा तद्बिप्रुड्भिः यागसारं पुष्पादि च प्रोक्षयेत् ।

क्योंकि यहाँ क्रिया के कारकों का परमेश्वर से अभेद दृढ़ करने के लिए पूजा की क्रिया को उदाहरण बनाया गया है। उसमें सब कारक इस प्रकार परमेश्वर-रूप हो जाते हैं: पूजक का आधार स्थान की शुद्धि से; अपादान और करण अर्घपात्र की शुद्धि और न्यास से; पूजक देह-न्यास से; पूज्य स्थण्डिल आदि पर न्यास से। यों क्रिया के क्रम से भी जिसने सब कारकों को परमेश्वर बना लिया, वह उसी दृष्टि से सब क्रियाओं को देखता हुआ मुख्य ज्ञान और योग के बिना भी परमेश्वर ही हो जाता है। यों अर्घपात्र पर न्यास करके और पुष्प, धूप आदि से उसकी पूजा करके उसकी बूँदों से याग-सामग्री और पुष्प आदि को छिड़के।

पदपाठ इह हि क्रिया-कारकाणां परमेश्वर-अभेद-प्रतिपत्ति-दार्ढ्य-सिद्धये — क्योंकि यहाँ क्रिया के कारकों का परमेश्वर से अभेद दृढ़ करने के लिए · पूजा-क्रिया उदाहरणीकृता — पूजा की क्रिया को उदाहरण बनाया गया है · तत्र च सर्व-कारकाणाम् इत्थं परमेश्वरी-भावः — और उसमें सब कारक इस प्रकार परमेश्वर-रूप हो जाते हैं · तत्र यष्टृ-आधारस्य स्थान-शुद्ध्या — पूजक का आधार स्थान की शुद्धि से · अपादान-करणयोः अर्घ-पात्र-शुद्धि-न्यासाभ्याम् — अपादान और करण अर्घपात्र की शुद्धि और न्यास से · यष्टुः देह-न्यासात् — पूजक देह-न्यास से · याज्यस्य स्थण्डिल-आदि-न्यासात् — पूज्य स्थण्डिल आदि पर न्यास से · एवं क्रिया-क्रमेण अपि परमेश्वरी-कृत-समस्त-कारकः — यों क्रिया के क्रम से भी जिसने

सब कारकों को परमेश्वर बना लिया · **तया एव दृशा सर्व-क्रियाः पश्यन्** — उसी दृष्टि से सब क्रियाओं को देखता हुआ · **विना अपि प्रमुख-ज्ञान-योगाभ्याम्** — मुख्य ज्ञान और योग के बिना भी · **परमेश्वरः एव भवति** — परमेश्वर ही हो जाता है · **एवम् अर्घ-पात्रे न्यस्य पुष्प-धूप-आद्यैः पूजयित्वा** — यों अर्घपात्र पर न्यास करके और पुष्प, धूप आदि से उसकी पूजा करके · **तत्-विप्रुड्भिः याग-सारं पुष्प-आदि च प्रोक्षयेत्** — उसकी बूँदों से याग-सामग्री और पुष्प आदि को छिड़के

ततः प्रभामण्डले भूमौ खे वा ओं-बाह्यपरिवाराय नम इति पूजयेत् ।
ततो द्वारस्थाने ओं-द्वारदेवताचक्राय नम इति पूजयेत् ।
अगुप्ते तु बहिःस्थाने सति प्रविश्य मण्डलस्थण्डिलाग्र एव
बाह्यपरिवारद्वारदेवताचक्रपूजां पूर्वोक्तं च न्यासादि कुर्यात्, न बहिः ।
ततोऽपि फट् फट् फट् इति अस्त्रजप्तपुष्पं प्रक्षिप्य विघ्नानपसारितान् ध्यात्वा ४०.५
अन्तः प्रविश्य परमेश्वरकिरणेद्धया दृष्ट्या अभितो यागगृहं पश्येत् ।
तत्र मुमुक्षुरुत्तराभिमुखस्तिष्ठेत्, यथा भगवदघोरतेजसा झटित्येव प्लुष्टपाशो भवेत् ।

फिर प्रभामण्डल में, भूमि पर या आकाश में, "ओं बाह्यपरिवाराय नमः" कहकर पूजा करे। फिर द्वार-स्थान पर "ओं द्वारदेवताचक्राय नमः" कहकर पूजा करे। पर यदि बाहर का स्थान गुप्त न हो, तो भीतर जाकर मण्डल या स्थण्डिल के सामने ही बाह्यपरिवार और द्वारदेवताचक्र की पूजा और पहले कहा हुआ न्यास आदि करे — बाहर नहीं। फिर "फट् फट् फट्" अस्त्र-मन्त्र से जपा हुआ पुष्प फेंककर, विघ्नों को दूर हुआ ध्यान करके, भीतर प्रवेश करके परमेश्वर की किरणों से प्रज्वलित दृष्टि से यागगृह को चारों ओर देखे। वहाँ मुमुक्षु उत्तर की ओर मुख करके खड़ा हो, जिससे भगवान् के अघोर तेज से उसके पाश तुरन्त जल जाएँ।

पदपाठ ततः प्रभा-मण्डले भूमौ खे वा — फिर प्रभामण्डल में, भूमि पर या आकाश में · ओं बाह्य-परिवाराय नमः इति पूजयेत् — "ओं बाह्यपरिवाराय नमः" कहकर पूजा करे · ततः द्वार-स्थाने ओं द्वार-देवता-चक्राय नमः इति पूजयेत् — फिर द्वार-स्थान पर "ओं द्वारदेवताचक्राय नमः" कहकर पूजा करे · अगुप्ते तु बहिः-स्थाने सति — पर यदि बाहर का स्थान गुप्त न हो · प्रविश्य मण्डल-स्थण्डिल-अग्रे एव — भीतर जाकर मण्डल या स्थण्डिल के सामने ही · बाह्य-परिवार-द्वार-देवता-चक्र-पूजां पूर्व-उक्तं च न्यास-आदि कुर्यात् — बाह्यपरिवार और द्वारदेवताचक्र की पूजा और पहले कहा हुआ न्यास आदि करे · न बहिः — बाहर नहीं · ततः अपि फट् फट् फट् इति अस्त्र-जप्त-पुष्पं प्रक्षिप्य — फिर "फट् फट् फट्"

अस्त्र-मन्त्र से जपा हुआ पुष्प फेंककर · **विघ्नान् अपसारितान् ध्यात्वा** — विघ्नों को दूर हुआ ध्यान करके · **अन्तः प्रविश्य** — भीतर प्रवेश करके · **परमेश्वर-किरण-इद्धया दृष्ट्या अभितः याग-गृहं पश्येत्** — परमेश्वर की किरणों से प्रज्वलित दृष्टि से यागगृह को चारों ओर देखे · **तत्र मुमुक्षुः उत्तर-अभिमुखः तिष्ठेत्** — वहाँ मुमुक्षु उत्तर की ओर मुख करके खड़ा हो · **यथा भगवत्-अघोर-तेजसा झटिति एव प्लुष्ट-पाशः भवेत्** — जिससे भगवान् के अघोर तेज से उसके पाश तुरन्त जल जाएँ

तत्र परमेश्वरस्वातन्त्र्यमेव मूर्त्याभासनया दिक्तत्त्वम् अवभासयति । तत्र चित्प्रकाश एव मध्यं, तत इतरप्रविभागप्रवृत्तेः, प्रकाशस्वीकार्यम् ऊर्ध्वम्, अतथाभूतम् अधः, प्रकाशनसंमुखीनं पूर्वम्, इतरत् अपरम्, संमुखीभूतप्रकाशत्वात् अनन्तरं तत्प्रकाशधारारोहस्थानं दक्षिणम् आनुकूल्यात्, तत्संमुखं तु अवभास्यत्वात् उत्तरम्, इति दिक्चतुष्कम् ।४०.६ तत्र मध्ये भगवान्, ऊर्ध्वेऽस्य ऐशानं वक्त्रम्, अधः पातालवक्त्रम्, पूर्वादिदिक्चतुष्के श्रीतत्पुरुषाघोरसद्योवामाख्यम्, दिक्चतुष्कमध्ये अन्याश्चतस्रः—इत्येवं संविन्महिमैव मूर्तिकृतं दिग्भेदं भासयति, इति दिक् न तत्त्वान्तरम् ।

वहाँ परमेश्वर की स्वतन्त्रता ही मूर्ति के आभास से दिशा-तत्त्व को प्रकाशित करती है। उसमें चित्-प्रकाश ही मध्य है, क्योंकि उसी से अन्य विभाग चलते हैं। जिसे प्रकाश अपना बनाता है वह ऊपर है; जो वैसा नहीं वह नीचे; जो प्रकाशन के सम्मुख है वह पूर्व; दूसरा पश्चिम; फिर, प्रकाश के सम्मुख हो जाने से, जहाँ उस प्रकाश की धारा चढ़ती है वह अनुकूल होने से दक्षिण; और उसके सामने का, प्रकाश्य होने से, उत्तर। ये चार दिशाएँ हैं। उसमें मध्य में भगवान् हैं; ऊपर उनका ईशान मुख, नीचे पाताल मुख; पूर्व आदि चार दिशाओं में तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात और वाम नामक मुख, और चार दिशाओं के बीच अन्य चार। यों संवित् की महिमा ही मूर्ति से बने दिशा-भेद को प्रकाशित करती है; इसलिए दिशा कोई अलग तत्त्व नहीं।

पदपाठ तत्र परमेश्वर-स्वातन्त्र्यम् एव — वहाँ परमेश्वर की स्वतन्त्रता ही · मूर्ति-आभासनया दिक्-तत्त्वम् अवभासयति — मूर्ति के आभास से दिशा-तत्त्व को प्रकाशित करती है · तत्र चित्-प्रकाशः एव मध्यम् — उसमें चित्-प्रकाश ही मध्य है · ततः इतर-प्रविभाग-प्रवृत्तेः — क्योंकि उसी से अन्य विभाग चलते हैं · प्रकाश-स्वीकार्यम् ऊर्ध्वम् — जिसे प्रकाश अपना बनाता है वह ऊपर है · अतथाभूतम् अधः — जो

वैसा नहीं वह नीचे · **प्रकाशन-संमुखीनं पूर्वम्** — जो प्रकाशन के सम्मुख है वह पूर्व · **इतरत् अपरम्** — दूसरा पश्चिम · **संमुखीभूत-प्रकाशत्वात् अनन्तरं तत्-प्रकाश-धारा-आरोह-स्थानं दक्षिणम् आनुकूल्यात्** — फिर, प्रकाश के सम्मुख हो जाने से, जहाँ उस प्रकाश की धारा चढ़ती है वह अनुकूल होने से दक्षिण · **तत्-संमुखं तु अवभास्यत्वात् उत्तरम्** — और उसके सामने का, प्रकाश्य होने से, उत्तर · **इति दिक्-चतुष्कम्** — ये चार दिशाएँ हैं · **तत्र मध्ये भगवान्** — उसमें मध्य में भगवान् · **ऊर्ध्वे अस्य ऐशानं वक्त्रम् अधः पाताल-वक्त्रम्** — ऊपर उनका ईशान मुख, नीचे पाताल मुख · **पूर्व-आदि-दिक्-चतुष्के श्री-तत्पुरुष-अघोर-सद्यः-वाम-आख्यम्** — पूर्व आदि चार दिशाओं में तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात और वाम नामक मुख · **दिक्-चतुष्क-मध्ये अन्याः चतस्रः** — चार दिशाओं के बीच अन्य चार · **इति एवं संवित्-महिमा एव मूर्ति-कृतं दिक्-भेदं भासयति** — यों संवित् की महिमा ही मूर्ति से बने दिशा-भेद को प्रकाशित करती है · **इति दिक् न तत्त्व-अन्तरम्** — इसलिए दिशा कोई अलग तत्त्व नहीं

यथा यथा च स्वच्छाया लङ्घयितुम् इष्टा सती पुरः पुरो भवति तथा परमेश्वरमध्यतामेति सर्वाधिष्ठातृतैव माध्यस्थ्यम् इत्युक्तम् । एवं यथा भगवान् दिग्विभागकारी तथा सूर्योऽपि, स हि पारमेश्वर्येव ज्ञानशक्तिरित्युक्तं तत्र तत्र, तत्र पूर्वं व्यक्तेः पूर्वा यत्रैव च तथा तत्रैव, एवं ४०.७ **स्वात्माधीनापि स्वसंमुखीनस्य देशस्य पुरस्तात्त्वात् । एवं स्वात्मसूर्यपरमेशत्रितयैकीभावनया दिक्चर्चा इति अभिनवगुप्तगुरवः ।**

और जैसे अपनी छाया, उसे लाँघने की इच्छा करने पर भी, आगे-आगे ही रहती है, वैसे ही परमेश्वर की मध्यता को पाता है; कहा गया है कि सबका अधिष्ठाता होना ही मध्यस्थता है। यों जैसे भगवान् दिशाओं का विभाग करते हैं, वैसे सूर्य भी, क्योंकि जगह-जगह कहा गया है कि वह परमेश्वर की ज्ञानशक्ति ही है। वहाँ पूर्व वह है जहाँ वह पहले व्यक्त होता है, और जहाँ वैसा हो वहीं। यों वह अपने आत्मा के अधीन भी है, क्योंकि जो देश अपने सामने है वही "आगे" है। यों आत्मा, सूर्य और परमेश्वर — इन तीनों की एकता की भावना से दिशा का विचार है — ऐसा गुरु अभिनवगुप्त कहते हैं।

पदपाठ यथा यथा च स्व-छाया लङ्घयितुम् इष्टा सती पुरः पुरः भवति — और जैसे अपनी छाया, उसे लाँघने की इच्छा करने पर भी, आगे-आगे ही रहती है · तथा परमेश्वर-मध्यताम् एति — वैसे ही परमेश्वर की मध्यता को पाता है · सर्व-अधिष्ठातृता एव माध्यस्थ्यम् इति उक्तम् — कहा गया है कि सबका अधिष्ठाता होना ही मध्यस्थता है · एवं यथा भगवान् दिक्-विभाग-कारी तथा सूर्यः अपि — यों जैसे भगवान् दिशाओं का विभाग करते हैं, वैसे सूर्य भी · सः हि पारमेश्वरी एव ज्ञान-शक्तिः इति उक्तं तत्र तत्र — क्योंकि जगह-जगह कहा गया है कि वह परमेश्वर की ज्ञानशक्ति ही है · तत्र पूर्वं व्यक्तेः पूर्वा — वहाँ पूर्व वह है जहाँ वह पहले व्यक्त होता है · यत्र एव च तथा तत्र एव — और जहाँ वैसा हो वहीं · एवं स्व-आत्म-अधीना अपि — यों वह अपने आत्मा के अधीन भी है · स्व-संमुखीनस्य देशस्य पुरस्तात्त्वात् — क्योंकि जो देश अपने सामने है वही "आगे" है · एवं स्व-आत्म-सूर्य-परमेश-त्रितय-एकी-भावनया दिक्-चर्चा — यों आत्मा, सूर्य और परमेश्वर — इन तीनों की एकता की भावना से दिशा का विचार है · इति अभिनवगुप्त-गुरवः — ऐसा गुरु अभिनवगुप्त कहते हैं

एवं स्थिते उत्तराभिमुखम् उपविश्य देहपुर्यष्टकादौ अहंभावत्यागेन देहतां दहेत् संनिधावपि परदेहवत्—अदेहत्वात्, ततो निस्तरङ्गध्रुवधामरूढस्य दृष्टिस्वाभाव्यात् या किल आद्या स्पन्दकला सैव मूर्तिः, तदुपरि यथोपदिष्टयाज्यदेवताचक्रन्यासः, प्राधान्येन च इह शक्तयो याज्याः— ४०.८

तदासनत्वात् भगवन्नवात्मादीनां शक्तेरेव च पूज्यत्वात्, इति गुरवः । तत्र च पञ्च अवस्था जाग्रदाद्याः, षष्ठी च अनुत्तरा नाम स्वभावदशा अनुसंधेया,—इति षोढा न्यासो भवति ।

ऐसा होने पर उत्तर की ओर मुख करके बैठकर देह, पुर्यष्टक आदि में अहंभाव छोड़कर देहभाव को जला दे — क्योंकि पास होने पर भी वह दूसरे की देह की तरह अपनी देह नहीं। फिर निस्तरंग ध्रुव धाम पर आरूढ़ हुए के लिए दृष्टि के स्वभाव से जो पहली स्पन्द-कला है वही मूर्ति है; उस पर यथोपदिष्ट पूज्य देवताचक्र का न्यास होता है। और यहाँ मुख्य रूप से शक्तियाँ पूज्य हैं, क्योंकि वे उसका आसन हैं, और क्योंकि भगवान् नवात्मा आदि के लिए शक्ति ही पूज्य है — ऐसा गुरु कहते हैं। और वहाँ जाग्रत् आदि पाँच अवस्थाएँ और छठी, अनुत्तर नामक स्वभाव-दशा, का अनुसंधान करना चाहिए; यों न्यास छह प्रकार का होता है।

पदपाठ एवं स्थिते उत्तर-अभिमुखम् उपविश्य — ऐसा होने पर उत्तर की ओर मुख करके बैठकर · देह-पुर्यष्टक-आदौ अहंभाव-त्यागेन देहतां दहेत् — देह, पुर्यष्टक आदि में अहंभाव छोड़कर देहभाव को जला दे · संनिधौ अपि पर-देहवत् अदेहत्वात् — क्योंकि पास होने पर भी वह दूसरे की देह की तरह अपनी देह नहीं · ततः निस्तरङ्ग-ध्रुव-धाम-रूढस्य — फिर निस्तरंग ध्रुव धाम पर आरूढ़ हुए के लिए · दृष्टि-स्वाभाव्यात् या किल आद्या स्पन्द-कला सा एव मूर्तिः — दृष्टि के स्वभाव से जो पहली स्पन्द-कला है वही मूर्ति है · तत्-उपरि यथा-उपदिष्ट-याज्य-देवता-चक्र-न्यासः — उस पर यथोपदिष्ट पूज्य देवताचक्र का न्यास होता है · प्राधान्येन च इह शक्तयः याज्याः — और यहाँ मुख्य रूप से शक्तियाँ पूज्य हैं · तत्-आसनत्वात् — क्योंकि वे उसका आसन हैं · भगवत्-नवात्म-आदीनां शक्तेः एव च पूज्यत्वात् — और क्योंकि भगवान् नवात्मा आदि के लिए शक्ति ही पूज्य है · इति गुरवः — ऐसा गुरु कहते हैं · तत्र च पञ्च अवस्थाः जाग्रत्-

आद्याः — और वहाँ जाग्रत् आदि पाँच अवस्थाएँ · **षष्ठी च अनुत्तरा नाम स्वभाव-दशा अनुसंधेया** — और छठी, अनुत्तर नामक स्वभाव-दशा, का अनुसंधान करना चाहिए · **इति षोढा न्यासः भवति** — यों न्यास छह प्रकार का होता है

तत्र कारणानां ब्रह्मविष्णुरुद्रेशसदाशिवशक्तिरूपाणां प्रत्येकम् अधिष्ठानात् षट्त्रिंशत्तत्त्वकलापस्य लौकिकतत्त्वोत्तीर्णस्य भैरवभट्टारकाभेदवृत्ते न्यासे पूर्णत्वात् भैरवीभावः तेन एतत् अनवकाशम् ।

यदाहुः 'अतरङ्गरूढौ लब्धायां पुनः किं तत्त्वसृष्टिर्न्यासादिना' इति ।

तावत् हि तदतरङ्गं भैरववपुः यत् स्वात्मनि अवभासितसृष्टिसंहारावैचित्र्यकोटि । ४०.९

एवम् अन्योन्यमेलकयोगेन परमेश्वरीभूतं प्राणदेहबुद्ध्यादि भावयित्वा बहिरन्तः पुष्पधूपतर्पणाद्यैर्यथासंभवं पूजयेत् ।

वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश, सदाशिव और शक्ति रूप कारणों के, लौकिक तत्त्वों से परे छत्तीस तत्त्वों के समूह पर, एक-एक करके अधिष्ठान से, भगवान् भैरव से अभेद रूप में किए गए न्यास में पूर्णता होने से भैरव-भाव होता है। इसलिए उस आक्षेप का अवकाश नहीं जो लोग करते हैं: "निस्तरंग आरोहण मिल जाने पर फिर न्यास आदि से तत्त्वों की सृष्टि क्यों?" क्योंकि निस्तरंग भैरव-शरीर वही है जिसमें अपने भीतर सृष्टि और संहार की अनन्त विचित्रता प्रकाशित है। यों परस्पर मेल के योग से प्राण, देह, बुद्धि आदि को परमेश्वर-रूप भावित करके बाहर और भीतर पुष्प, धूप, तर्पण आदि से यथासंभव पूजा करे।

पदपाठ तत्र कारणानां ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ईश-सदाशिव-शक्ति-रूपाणां प्रत्येकम् अधिष्ठानात् — वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश, सदाशिव और शक्ति रूप कारणों के एक-एक करके अधिष्ठान से · षट्त्रिंशत्-तत्त्व-कलापस्य लौकिक-तत्त्व-उत्तीर्णस्य — लौकिक तत्त्वों से परे छत्तीस तत्त्वों के समूह पर · भैरव-भट्टारक-अभेद-वृत्ते न्यासे पूर्णत्वात् — भगवान् भैरव से अभेद रूप में किए गए न्यास में पूर्णता होने से · भैरवी-भावः — भैरव-भाव होता है · तेन एतत् अनवकाशम् — इसलिए इस आक्षेप का अवकाश नहीं · यत् आहुः — जो लोग कहते हैं · अतरङ्ग-रूढौ लब्धायां पुनः किं तत्त्व-सृष्टिः न्यास-आदिना इति — "निस्तरंग आरोहण मिल जाने पर फिर न्यास आदि से तत्त्वों की सृष्टि क्यों?" · तावत् हि तत् अतरङ्गं भैरव-वपुः —

क्योंकि वह निस्तरंग भैरव-शरीर वही है · यत् स्व-आत्मनि अवभासित-सृष्टि-संहार-आवैचित्र्य-कोटि — जिसमें अपने भीतर सृष्टि और संहार की अनन्त विचित्रता प्रकाशित है · एवम् अन्योन्य-मेलक-योगेन — यों परस्पर मेल के योग से · परमेश्वरी-भूतं प्राण-देह-बुद्धि-आदि भावयित्वा — प्राण, देह, बुद्धि आदि को परमेश्वर-रूप भावित करके · बहिः अन्तः पुष्प-धूप-तर्पण-आद्यैः यथासंभवं पूजयेत् — बाहर और भीतर पुष्प, धूप, तर्पण आदि से यथासंभव पूजा करे

तत्र शरीरे प्राणे धियि च तदनुसारेण शूलाब्जन्यासं कुर्यात्, तद्यथा— आधारशक्तिमूले मूलं, कन्द आमूलसारकं लम्बिकान्ते, कलातत्त्वान्तो दण्डः, मायात्मको ग्रन्थिः, चतुष्किकात्मा शुद्धविद्यापद्मं, तत्रैव सदाशिवभट्टारकस्स एव महाप्रेतः—प्रकर्षेण लीनत्वात् बोधात् प्राधान्येन वेद्यात्मकदेहक्षयात् नादामर्शात्मकत्वाच्च, इति ।

वहाँ शरीर, प्राण और बुद्धि में उसी के अनुसार शूलाब्ज-न्यास करे। वह इस प्रकार: आधारशक्ति के मूल में मूल; कन्द, मूल तक का सार, लम्बिका के अन्त तक; कला-तत्त्व तक दण्ड; माया-रूप ग्रन्थि; चार से बना शुद्धविद्या-पद्म; वहीं भगवान् सदाशिव, और वही महाप्रेत हैं — क्योंकि वे प्रकर्ष से लीन हैं, क्योंकि बोध से वेद्य-रूप देह मुख्य रूप से क्षीण हो गई है, और क्योंकि वे नाद-रूप विमर्श से बने हैं।

पदपाठ तत्र शरीरे प्राणे धियि च तत्-अनुसारेण शूल-अब्ज-न्यासं कुर्यात् — वहाँ शरीर, प्राण और बुद्धि में उसी के अनुसार शूलाब्ज-न्यास करे · तत् यथा — वह इस प्रकार · आधार-शक्ति-मूले मूलम् — आधारशक्ति के मूल में मूल · कन्दः आमूल-सारकं लम्बिका-अन्ते — कन्द, मूल तक का सार, लम्बिका के अन्त तक · कला-तत्त्व-अन्तः दण्डः — कला-तत्त्व तक दण्ड · माया-आत्मकः ग्रन्थिः — माया-रूप ग्रन्थि · चतुष्किका-आत्मा शुद्ध-विद्या-पद्मम् — चार से बना शुद्धविद्या-पद्म · तत्र एव सदाशिव-भट्टारकः सः एव महा-प्रेतः — वहीं भगवान् सदाशिव, और वही महाप्रेत हैं · प्रकर्षेण लीनत्वात् — क्योंकि वे प्रकर्ष से लीन हैं · बोधात् प्राधान्येन वेद्य-आत्मक-देह-क्षयात् — क्योंकि बोध से वेद्य-रूप देह मुख्य रूप से क्षीण हो गई है · नाद-आमर्श-आत्मकत्वात् च इति — और क्योंकि वे नाद-रूप विमर्श से बने हैं

तन्नाभ्युत्थितं तन्मूर्धरन्ध्रत्रयनिर्गतं नादान्तवर्तिशक्तिव्यापिनीसमनारूपमरात्रयं द्विषट्कान्तं, तदुपरि शुद्धपद्मत्रयम् औन्मनसम्, एतस्मिन् विश्वमये भेदे आसनीकृते अधिष्ठातृतया व्यापकभावेन आधेयभूतां यथाभिमतां देवतां कल्पयित्वा यत् तत्रैव समस्वभावनिर्भरात्मनि विश्वभावार्पणं तदेव पूजनं, तदेव तन्मयीभवनं तद्ध्यानं, यत् तथाविधान्तःपरामर्शसद्भावनादान्दोलनं स जपः, यत् तथाविधपरामर्शक्रमप्रबुद्धमहातेजसा तथाबलादेव विश्वात्मीकरणं स होमः, तदेवं कृत्वा परिवारं तत एव वह्निराशेर्विस्फुलिङ्गवत् ध्यात्वा तथैव पूजयेत् ।

उनकी नाभि से उठा हुआ और उनके सिर के तीन रन्ध्रों से निकला हुआ, नादान्त से ऊपर की शक्ति, व्यापिनी और समना रूप तीन अरों वाला त्रिशूल द्वादशान्त तक है; उनके ऊपर उन्मना के तीन शुद्ध पद्म। इस विश्वमय भेद को आसन बना लेने पर, उस पर अभीष्ट देवता को अधिष्ठाता और व्यापक रूप में स्थापित करके, उसी सम-स्वभाव से भरे आत्मा में सब भावों का अर्पण — वही पूजन है; उसमें तन्मय हो जाना — वह ध्यान है; उस प्रकार के भीतरी परामर्श की सद्भावना में झूलना — वह जप है; उस प्रकार के परामर्श-क्रम से जगे हुए महातेज से, उसी बल से विश्व को अपना आत्मा बना लेना — वह होम है। यों करके परिवार को उसी अग्नि-राशि की चिनगारियों की तरह ध्यान करके उसी प्रकार पूजा करे।

पदपाठ तत्-नाभि-उत्थितं तत्-मूर्ध-रन्ध्र-त्रय-निर्गतम् — उनकी नाभि से उठा हुआ और उनके सिर के तीन रन्ध्रों से निकला हुआ · नादान्त-वर्ति-शक्ति-व्यापिनी-समना-रूप-अर-त्रयं द्विषट्क-अन्तम् — नादान्त से ऊपर की शक्ति, व्यापिनी और समना रूप तीन अर, द्वादशान्त तक · तत्-उपरि शुद्ध-पद्म-त्रयम् औन्मनसम् — उनके ऊपर उन्मना के तीन शुद्ध पद्म · एतस्मिन् विश्व-मये भेदे आसनी-कृते — इस विश्वमय भेद को आसन बना लेने पर · अधिष्ठातृतया व्यापक-भावेन आधेय-भूतां यथा-अभिमतां देवतां कल्पयित्वा — उस पर अभीष्ट देवता को अधिष्ठाता और व्यापक रूप में स्थापित करके · यत् तत्र एव सम-स्वभाव-निर्भर-आत्मनि विश्व-भाव-अर्पणं तत् एव पूजनम् — उसी सम-स्वभाव से भरे आत्मा में सब भावों

का अर्पण — वही पूजन है · यत् एव तन्मयी-भवनं तत् ध्यानम् — उसमें तन्मय हो जाना — वह ध्यान है · यत् तथाविध-अन्तः-परामर्श-सद्भावना-आन्दोलनं सः जपः — उस प्रकार के भीतरी परामर्श की सद्भावना में झूलना — वह जप है · यत् तथाविध-परामर्श-क्रम-प्रबुद्ध-महा-तेजसा — उस प्रकार के परामर्श-क्रम से जगे हुए महातेज से · तथा-बलात् एव विश्व-आत्मी-करणं सः होमः — उसी बल से विश्व को अपना आत्मा बना लेना — वह होम है · तत् एवं कृत्वा — यों करके · परिवारं ततः एव वह्नि-राशेः विस्फुलिङ्गवत् ध्यात्वा तथा एव पूजयेत् — परिवार को उसी अग्नि-राशि की चिनगारियों की तरह ध्यान करके उसी प्रकार पूजा करे

द्वादशान्तमिदं प्राग्रं त्रिशूलं मूलतः स्मरन् ।
देवीचक्राग्रगं त्यक्तक्रमः खचरतां व्रजेत् ॥ ४०

मूल से इस त्रिशूल का स्मरण करता हुआ — जिसका अग्र आगे है, जो द्वादशान्त तक पहुँचा है और जिसके अग्र पर देवी-चक्र है — क्रम छोड़कर खेचरी दशा को पहुँचता है।

पदपाठ द्वादशान्तम् — द्वादशान्त तक पहुँचा हुआ · इदम् — यह · प्राग्रम् — जिसका अग्र आगे है · त्रिशूलम् — त्रिशूल · मूलतः — मूल से · स्मरन् — स्मरण करता हुआ · देवी-चक्र-अग्र-गम् — जिसके अग्र पर देवी-चक्र है · त्यक्त-क्रमः — क्रम छोड़ा हुआ · खचरताम् — खेचरी दशा को · व्रजेत् — पहुँचता है

मूलाधाराद्द्विषट्कान्तव्योमाग्रापूरणात्मिका ।
खेचरीयं खसंचारस्थितिभ्यां खामृताशनात् ॥ ४१

यह खेचरी है: मूलाधार से द्वादशान्त के आकाश के अग्र तक भर देने वाली, आकाश में संचार और स्थिति से और आकाश का अमृत पीने से।

पदपाठ मूल-आधारात् — मूलाधार से · द्विषट्क-अन्त-व्योम-अग्र-आपूरण-आत्मिका — द्वादशान्त के आकाश के अग्र तक भर देने वाली · खेचरी — खेचरी · इयम् — यह · ख-संचार-स्थितिभ्याम् — आकाश में संचार और स्थिति से · ख-अमृत-अशनात् — और आकाश का अमृत पीने से

एवम् अन्तर्यागमात्रादेव वस्तुतः कृतकृत्यता ।
सत्यतः तदाविष्टस्य तथापि बहिरपि कार्यो यागोऽवच्छेदहानय एव, योऽपि तथा समावेशभाक् न भवति तस्य मुख्यो बहिर्यागः, तदभ्यासात् समावेशलाभो—यतस्तस्यापि तु पशुतातिरोधानायान्तर्यागः—तदरूढावपि तत्संकल्पबलस्य ४२.१
शुद्धिप्रदत्वात् ।
अथ यदा दीक्षां चिकीर्षेत् तदाधिवासनार्थं भूमिपरिग्रहं, गणेशार्चनं, कुम्भकलशयोः पूजां, स्थण्डिलार्चनं, हवनं च कुर्यात् ।
नित्यनैमित्तिकयोस्तु स्थण्डिलाद्यर्चनहवने एव ।

यों भीतरी याग मात्र से ही वास्तव में कृतकृत्यता है। फिर भी जो सचमुच उसमें आविष्ट है उसे बाहरी याग भी करना चाहिए, केवल अवच्छेद हटाने के लिए; और जिसे वैसा समावेश नहीं हुआ उसके लिए बाहरी याग ही मुख्य है — उसके अभ्यास से समावेश मिलता है, क्योंकि उसके लिए भी पशुभाव ढकने के लिए भीतरी याग है, क्योंकि उस पर आरूढ़ न होने पर भी उसके संकल्प का बल शुद्धि देता है। अब जब दीक्षा करना चाहे, तब अधिवासन के लिए भूमि-परिग्रह, गणेश-पूजा, कुम्भ और कलश की पूजा, स्थण्डिल-पूजा और हवन करे। नित्य और नैमित्तिक में केवल स्थण्डिल आदि की पूजा और हवन होते हैं।

पदपाठ एवम् अन्तर्-याग-मात्रात् एव वस्तुतः कृतकृत्यता — यों भीतरी याग मात्र से ही वास्तव में कृतकृत्यता है · सत्यतः तत्-आविष्टस्य तथापि बहिः अपि कार्यः यागः — फिर भी जो सचमुच उसमें आविष्ट है उसे बाहरी याग भी करना चाहिए · अवच्छेद-हानये एव — केवल अवच्छेद हटाने के लिए · यः अपि तथा समावेश-भाक् न भवति तस्य मुख्यः बहिः-यागः — और जिसे वैसा समावेश नहीं हुआ उसके लिए बाहरी याग ही मुख्य है · तत्-अभ्यासात् समावेश-लाभः — उसके अभ्यास से समावेश मिलता है · यतः तस्य अपि तु पशुता-तिरोधानाय अन्तर्-यागः — क्योंकि उसके लिए भी पशुभाव ढकने के लिए भीतरी याग है · तत्-अरूढौ अपि तत्-संकल्प-बलस्य शुद्धि-प्रदत्वात् — क्योंकि उस पर आरूढ़ न होने पर

भी उसके संकल्प का बल शुद्धि देता है · **अथ यदा दीक्षां चिकीर्षेत्** — अब जब दीक्षा करना चाहे · **तदा अधिवासन-अर्थं भूमि-परिग्रहं गणेश-अर्चनं कुम्भ-कलशयोः पूजां स्थण्डिल-अर्चनं हवनं च कुर्यात्** — तब अधिवासन के लिए भूमि-परिग्रह, गणेश-पूजा, कुम्भ और कलश की पूजा, स्थण्डिल-पूजा और हवन करे · **नित्य-नैमित्तिकयोः तु स्थण्डिल-आदि-अर्चन-हवने एव** — नित्य और नैमित्तिक में केवल स्थण्डिल आदि की पूजा और हवन

तत्र अधिवासनं शिष्यस्य संस्कृतयोग्यताधानम् अम्लीकरणमिव दन्तानां, देवस्य कर्तव्योन्मुखत्वग्राहणम्, गुरोस्तद्ग्रहणम् । उपकरणद्रव्याणां यागगृहान्तर्वर्तितया परमेशतेजोबृंहणेन पूजोपकरणयोग्यतार्पणमिति ।

४२.२

तत्र सर्वोपकरणपूर्णं यागगृहं विधाय भगवतीं मालिनीं मातृकां वा स्मृत्वा तद्वर्णतेजःपुञ्जभरितं गृहीतं भावयन् पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । तत उक्तास्त्रजप्तानि यथासंभवं सिद्धार्थधान्याक्षतलाजादीनि तेजोरूपाणि विकीर्य ऐशान्यां दिशि क्रमेण संघट्टयेत्, इति भूपरिग्रहः ।

वहाँ शिष्य के लिए अधिवासन संस्कृत योग्यता का आधान है, जैसे दाँतों को खट्टा करके तेज करना; देवता के लिए कर्तव्य की ओर उन्मुख होना; गुरु के लिए उसे ग्रहण करना; उपकरण-द्रव्यों के लिए, यागगृह के भीतर रहने से परमेश्वर के तेज से बढ़कर, पूजा के उपकरण होने की योग्यता का अर्पण। वहाँ यागगृह को सब उपकरणों से भरकर, भगवती मालिनी या मातृका का स्मरण करके, उसे उसके वर्णों के तेज-पुंज से भरा और गृहीत भावित करता हुआ पुष्पांजलि डाले। फिर कहे हुए अस्त्र-मन्त्र से जपे हुए, यथासंभव सरसों, धान्य, अक्षत, लाजा आदि को तेज-रूप में बिखेरकर ईशान दिशा की ओर क्रम से बटोर ले। यह भूमि-परिग्रह है।

पदपाठ तत्र अधिवासनं शिष्यस्य संस्कृत-योग्यता-आधानम् — वहाँ शिष्य के लिए अधिवासन संस्कृत योग्यता का आधान है · अम्ली-करणम् इव दन्तानाम् — जैसे दाँतों को खट्टा करके तेज करना · देवस्य कर्तव्य-उन्मुखत्व-ग्राहणम् — देवता के लिए कर्तव्य की ओर उन्मुख होना · गुरोः तत्-ग्रहणम् — गुरु के लिए उसे ग्रहण करना · उपकरण-द्रव्याणां याग-गृह-अन्तर्-वर्तितया परमेश-तेजः-बृंहणेन — उपकरण-द्रव्यों के लिए, यागगृह के भीतर रहने से परमेश्वर के तेज से बढ़कर · पूजा-उपकरण-योग्यता-अर्पणम् इति — पूजा के उपकरण होने की योग्यता का अर्पण · तत्र सर्व-उपकरण-पूर्णं याग-गृहं विधाय — वहाँ यागगृह को सब उपकरणों से भरकर · भगवतीं मालिनीं मातृकां वा स्मृत्वा — भगवती मालिनी या मातृका

का स्मरण करके · **तत्-वर्ण-तेजः-पुञ्ज-भरितं गृहीतं भावयन् पुष्प-अञ्जलिं क्षिपेत्** — उसके वर्णों के तेज-पुंज से भरा और गृहीत भावित करता हुआ पुष्पांजलि डाले · **ततः उक्त-अस्त्र-जप्तानि यथासंभवं सिद्धार्थ-धान्य-अक्षत-लाज-आदीनि तेजः-रूपाणि विकीर्य** — फिर कहे हुए अस्त्र-मन्त्र से जपे हुए, यथासंभव सरसों, धान्य, अक्षत, लाजा आदि को तेज-रूप में बिखेरकर · **ऐशान्यां दिशि क्रमेण संघट्टयेत्** — ईशान दिशा की ओर क्रम से बटोर ले · **इति भू-परिग्रहः** — यह भूमि-परिग्रह है

ततः शुद्धविद्यान्तमासनं दत्त्वा गणपतेः पूजा, ततः कुम्भम् आनन्दद्रव्यपूरितम् अलंकृतं पूजयेत्, ततो याज्यमनु पूगं न्यस्य तत्र मुख्यं मन्त्रं सर्वाधिष्ठातृतया विधिपूर्वकत्वेन स्मरन् अष्टोत्तरशतमन्त्रितं तेन तं कुम्भं कुर्यात् ।
द्वितीयकलशे विघ्नशमनाय अस्त्रं यजेत् ।
ततः स्वस्वदिक्षु लोकपालान् सास्त्रान् पूजयेत् । ४२.३
ततः शिष्यस्य प्राक् दीक्षितस्य हस्ते अस्त्रकलशं दद्यात् ।
स्वयं च गुरुः कुम्भम् आददीत ।
ततः शिष्यं गृहपर्यन्तेषु विघ्नशमनाय धारां पातयन्तं सकुम्भोऽनुगच्छेत् इमं मन्त्रं पठन्—

फिर शुद्धविद्या तक का आसन देकर गणपति की पूजा। फिर आनन्द-द्रव्य से भरे, सजाए हुए कुम्भ की पूजा करे; फिर पूज्य के बाद सुपारी रखकर, वहाँ मुख्य मन्त्र को विधिपूर्वक सबका अधिष्ठाता स्मरण करता हुआ, उससे उस कुम्भ को एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करे। दूसरे कलश में विघ्न शान्त करने के लिए अस्त्र की पूजा करे। फिर अपनी-अपनी दिशाओं में अस्त्र सहित लोकपालों की पूजा करे। फिर पहले से दीक्षित शिष्य के हाथ में अस्त्रकलश दे, और गुरु स्वयं कुम्भ ले। फिर घर की सीमाओं पर विघ्न शान्त करने के लिए धारा गिराते हुए शिष्य के पीछे कुम्भ लिए यह मन्त्र पढ़ता हुआ चले:

पदपाठ ततः शुद्धविद्या-अन्तम् आसनं दत्त्वा गणपतेः पूजा — फिर शुद्धविद्या तक का आसन देकर गणपति की पूजा · ततः कुम्भम् आनन्द-द्रव्य-पूरितम् अलंकृतं पूजयेत् — फिर आनन्द-द्रव्य से भरे, सजाए हुए कुम्भ की पूजा करे · ततः याज्यम् अनु पूगं न्यस्य — फिर पूज्य के बाद सुपारी रखकर · तत्र मुख्यं मन्त्रं सर्व-अधिष्ठातृतया विधि-पूर्वकत्वेन स्मरन् — वहाँ मुख्य मन्त्र को विधिपूर्वक सबका अधिष्ठाता स्मरण करता हुआ · अष्टोत्तर-शत-मन्त्रितं तेन तं कुम्भं कुर्यात् — उससे उस कुम्भ को एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करे · द्वितीय-कलशे विघ्न-शमनाय अस्त्रं यजेत् — दूसरे कलश में विघ्न शान्त करने के लिए

अस्त्र की पूजा करे · ततः स्व-स्व-दिक्षु लोक-पालान् स-अस्त्रान् पूजयेत् — फिर अपनी-अपनी दिशाओं में अस्त्र सहित लोकपालों की पूजा करे · ततः शिष्यस्य प्राक् दीक्षितस्य हस्ते अस्त्र-कलशं दद्यात् — फिर पहले से दीक्षित शिष्य के हाथ में अस्त्रकलश दे · स्वयं च गुरुः कुम्भम् आददीत — और गुरु स्वयं कुम्भ ले · ततः शिष्यं गृह-पर्यन्तेषु विघ्न-शमनाय धारां पातयन्तम् — फिर घर की सीमाओं पर विघ्न शान्त करने के लिए धारा गिराते हुए शिष्य के · स-कुम्भः अनुगच्छेत् इमं मन्त्रं पठन् — पीछे कुम्भ लिए यह मन्त्र पढ़ता हुआ चले

भो भोः शक्र त्वया स्वस्यां दिशि विघ्नप्रशान्तये ।
सावधानेन कर्मान्तं भवितव्यं शिवाज्ञया ॥ ४२

हे, हे इन्द्र! शिव की आज्ञा से तुम्हें विघ्नों की शान्ति के लिए अपनी दिशा में कर्म के अन्त तक सावधान रहना है।

पदपाठ भो भोः — हे, हे · शक्र — इन्द्र · त्वया — तुम्हें · स्वस्याम् — अपनी · दिशि — दिशा में · विघ्न-प्रशान्तये — विघ्नों की शान्ति के लिए · सावधानेन — सावधान · कर्म-अन्तम् — कर्म के अन्त तक · भवितव्यम् — रहना है · शिव-आज्ञया — शिव की आज्ञा से

त्र्यक्षरे नाम्नि—भो इत्येकमेव ।
तत ऐशान्यां दिशि कुम्भं स्थापयेत् ।
विकिरोपरि अस्त्रकलशम् ।
तत उभयपूजनम् ।
ततः स्थण्डिलमध्ये परमेशपूजनम् । ४३.१
ततः अग्निकुण्डं परमेश्वरशक्तिरूपतया भावयित्वा तत्र अग्निं प्रज्वाल्य हृदयान्तर्बोधाग्निना सह एकीकृत्य मन्त्रपरामर्शसाहित्येन ज्वलन्तं शिवाग्निं भावयित्वा, तत्र न्यस्य अभ्यर्च्य मन्त्रान् तर्पयेत् आज्येन तिलैश्च ।

तीन अक्षरों के नाम में केवल एक "भो"। फिर ईशान दिशा में कुम्भ स्थापित करे, और बिखेरे हुए धान्य पर अस्त्रकलश। फिर दोनों की पूजा। फिर स्थण्डिल के मध्य में परमेश्वर की पूजा। फिर अग्निकुण्ड को परमेश्वर की शक्ति के रूप में भावित करके, उसमें अग्नि प्रज्वलित करके, उसे हृदय के भीतर की बोधाग्नि से एक करके, मन्त्र-परामर्श के साथ जलती हुई शिवाग्नि का भावन करके, वहाँ न्यास करके, पूजा करके, घी और तिल से मन्त्रों को तृप्त करे।

पदपाठ त्रि-अक्षरे नाम्नि भो इति एकम् एव — तीन अक्षरों के नाम में केवल एक "भो" · ततः ऐशान्यां दिशि कुम्भं स्थापयेत् — फिर ईशान दिशा में कुम्भ स्थापित करे · विकिर-उपरि अस्त्र-कलशम् — बिखेरे हुए धान्य पर अस्त्रकलश · ततः उभय-पूजनम् — फिर दोनों की पूजा · ततः स्थण्डिल-मध्ये परमेश-पूजनम् — फिर स्थण्डिल के मध्य में परमेश्वर की पूजा · ततः अग्नि-कुण्डं परमेश्वर-शक्ति-रूपतया भावयित्वा — फिर अग्निकुण्ड को परमेश्वर की शक्ति के रूप में भावित करके · तत्र अग्निं प्रज्वाल्य — उसमें अग्नि प्रज्वलित करके · हृदय-अन्तर्-बोध-अग्निना सह एकी-कृत्य — हृदय के भीतर की बोधाग्नि से एक करके · मन्त्र-परामर्श-साहित्येन ज्वलन्तं शिव-अग्निं भावयित्वा — मन्त्र-परामर्श के साथ जलती हुई शिवाग्नि का भावन करके · तत्र न्यस्य अभ्यर्च्य मन्त्रान् तर्पयेत् आज्येन तिलैः च — वहाँ न्यास करके, पूजा करके, घी और तिल से मन्त्रों को तृप्त करे

अर्घपात्रेण च प्रोक्षणमेव तिलाज्यादीनां संस्कारः ।
स्रुक्स्रुवयोश्च परमेशाभेददृष्टिरेव हि संस्कारः ।
ततो यथाशक्ति हुत्वा स्रुक्स्रुवौ ऊर्ध्वाधोमुखतया शक्तिशिवरूपौ
परस्परोन्मुखौ विधाय समपादोत्थितो
द्वादशान्तगगनोदितशिवपूर्णचन्द्रनिःसृतपतत्परामृतधाराभावनां कुर्वन् वौषडन्तं ४३.२
मन्त्रम् उच्चारयन् च आज्यक्षयान्तं तिष्ठेत्, इति पूर्णाहुतिः मन्त्रचक्रसंतर्पणी ।
ततश्चरुं प्रोक्षितमानीय स्थण्डिलकलशकुम्भवह्निषु भागं भागं निवेद्य,
एकभागम् अवशेष्य, शिष्याय भागं दद्यात् ।

और अर्घपात्र से छिड़कना ही तिल, घी आदि का संस्कार है; और स्रुक् और स्रुव का संस्कार परमेश्वर से अभेद की दृष्टि ही है। फिर यथाशक्ति हवन करके, स्रुक् और स्रुव को ऊपर और नीचे मुख करके शक्ति-शिव रूप में परस्पर उन्मुख रखकर, दोनों पैर मिलाकर खड़ा हुआ, द्वादशान्त के आकाश में उगे शिव-रूपी पूर्णचन्द्र से निकलकर गिरती परम अमृतधारा की भावना करता हुआ और वौषट् से समाप्त होने वाला मन्त्र उच्चारण करता हुआ, घी समाप्त होने तक खड़ा रहे। यह पूर्णाहुति है, जो मन्त्रचक्र को तृप्त करती है। फिर छिड़का हुआ चरु लाकर, स्थण्डिल, कलश, कुम्भ और अग्नि में एक-एक भाग निवेदित करके, एक भाग बचाकर शिष्य को एक भाग दे।

पदपाठ अर्घ-पात्रेण च प्रोक्षणम् एव तिल-आज्य-आदीनां संस्कारः — और अर्घपात्र से छिड़कना ही तिल, घी आदि का संस्कार है · स्रुक्-स्रुवयोः च परमेश-अभेद-दृष्टिः एव हि संस्कारः — और स्रुक् और स्रुव का संस्कार परमेश्वर से अभेद की दृष्टि ही है · ततः यथाशक्ति हुत्वा — फिर यथाशक्ति हवन करके · स्रुक्-स्रुवौ ऊर्ध्व-अधः-मुखतया शक्ति-शिव-रूपौ परस्पर-उन्मुखौ विधाय — स्रुक् और स्रुव को ऊपर और नीचे मुख करके शक्ति-शिव रूप में परस्पर उन्मुख रखकर · सम-पाद-उत्थितः — दोनों पैर मिलाकर खड़ा हुआ · द्वादशान्त-गगन-उदित-शिव-पूर्ण-चन्द्र-निःसृत-पतत्-पर-अमृत-धारा-भावनां कुर्वन् — द्वादशान्त के

आकाश में उगे शिव-रूपी पूर्णचन्द्र से निकलकर गिरती परम अमृतधारा की भावना करता हुआ · **वौषट्-अन्तं मन्त्रम् उच्चारयन् च** — और वौषट् से समाप्त होने वाला मन्त्र उच्चारण करता हुआ · **आज्य-क्षय-अन्तं तिष्ठेत्** — घी समाप्त होने तक खड़ा रहे · **इति पूर्ण-आहुतिः मन्त्र-चक्र-संतर्पणी** — यह पूर्णाहुति है, जो मन्त्रचक्र को तृप्त करती है · **ततः चरुं प्रोक्षितम् आनीय** — फिर छिड़का हुआ चरु लाकर · **स्थण्डिल-कलश-कुम्भ-वह्निषु भागं भागं निवेद्य** — स्थण्डिल, कलश, कुम्भ और अग्नि में एक-एक भाग निवेदित करके · **एक-भागम् अवशेष्य शिष्याय भागं दद्यात्** — एक भाग बचाकर शिष्य को एक भाग दे

ततो दन्तकाष्ठम् ।
तत्पातोऽग्नि-यम-निर्ऋतिदिक्षु अधश्च न शुभ इति ।
तत्र होमोऽस्त्रमन्त्रेण कार्यः ।
ततो विक्षेपपरिहारेण भाविमन्त्रदर्शनयोग्यतायै बद्धनेत्रं शिष्यं प्रवेश्य ४३.३
जानुस्थितं तं कृत्वा पुष्पाञ्जलिं क्षेपयेत् ।
ततः सहसा अपासितनेत्रबन्धोऽसौ शक्तिपातानुगृहीतकरणत्वात्
संनिहितमन्त्रं तत्स्थानं साक्षात्कारेण पश्यन् तन्मयो भवति,
अनुगृहीतकरणानां मन्त्रसंनिधिः प्रत्यक्षः यतस्त्रस्यताम् इव भूतानाम् ।

फिर दन्तकाष्ठ। उसका अग्नि, यम, निर्ऋति की दिशाओं में या नीचे गिरना शुभ नहीं; तब अस्त्र-मन्त्र से होम करना चाहिए। फिर विक्षेप हटाकर आने वाले मन्त्र-दर्शन की योग्यता के लिए, आँखों पर पट्टी बाँधे शिष्य को भीतर लाकर, उसे घुटनों पर बिठाकर उससे पुष्पांजलि डलवाए। फिर उसकी आँखों की पट्टी सहसा हटा दिए जाने पर वह, क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ शक्तिपात से अनुगृहीत हैं, उस स्थान को, जिसमें मन्त्र उपस्थित है, साक्षात् देखता हुआ तन्मय हो जाता है — जिनकी इन्द्रियाँ अनुगृहीत हैं उनके लिए मन्त्र की उपस्थिति प्रत्यक्ष है, जैसे डरे हुए लोगों को भूतों की उपस्थिति।

पदपाठ ततः दन्त-काष्ठम् — फिर दन्तकाष्ठ · तत्-पातः अग्नि-यम-निर्ऋति-दिक्षु अधः च न शुभः इति — उसका अग्नि, यम, निर्ऋति की दिशाओं में या नीचे गिरना शुभ नहीं · तत्र होमः अस्त्र-मन्त्रेण कार्यः — तब अस्त्र-मन्त्र से होम करना चाहिए · ततः विक्षेप-परिहारेण भावि-मन्त्र-दर्शन-योग्यतायै — फिर विक्षेप हटाकर आने वाले मन्त्र-दर्शन की योग्यता के लिए · बद्ध-नेत्रं शिष्यं प्रवेश्य — आँखों पर पट्टी बाँधे शिष्य को भीतर लाकर · जानु-स्थितं तं कृत्वा पुष्प-अञ्जलिं क्षेपयेत् — उसे घुटनों पर बिठाकर उससे पुष्पांजलि डलवाए · ततः सहसा अपासित-नेत्र-बन्धः असौ — फिर उसकी आँखों की पट्टी सहसा हटा दिए जाने पर वह · शक्तिपात-अनुगृहीत-करणत्वात् — क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ शक्तिपात से अनुगृहीत हैं · संनिहित-

मन्त्रं तत्-स्थानं साक्षात्कारेण पश्यन् तन्मयः भवति — उस स्थान को, जिसमें मन्त्र उपस्थित है, साक्षात् देखता हुआ तन्मय हो जाता है · **अनुगृहीत-करणानां मन्त्र-संनिधिः प्रत्यक्षः** — जिनकी इन्द्रियाँ अनुगृहीत हैं उनके लिए मन्त्र की उपस्थिति प्रत्यक्ष है · **यतः त्रस्यताम् इव भूतानाम्** — जैसे डरे हुए लोगों को भूतों की उपस्थिति

ततः स्वदक्षिणहस्ते दीप्यतया देवताचक्रं पूजयित्वा तं हस्तं मूर्धहृन्नाभिषु शिष्यस्य पाशान् दहन्तं निक्षिपेत् ।

ततो वामे सोम्यतया पूजयित्वा शुद्धतत्त्वाप्यायिनं, ततः प्रणामं कुर्यात् ।

ततो भूतदेवतादिग्बलिं मद्यमांसजलादिपूर्णं बहिर्दद्यात्, आचामेत । ४३.४

ततः स्वयं चरुभोजनं कृत्वा शिष्यात्मना सह ऐक्यमापन्नः प्रबुद्धवृत्तिः तिष्ठेत् ।

स्वपन् अपि प्रभाते शिष्यः चेत् अशुभं स्वप्नं वदेत् तत् अस्मै न व्याकुर्यात्— शङ्कातङ्कौ हि तथास्य स्याताम्, केवलम् अस्त्रेण तन्निष्कृतिं कुर्यात् ।

फिर अपने दाहिने हाथ में देवताचक्र की दीप्त रूप में पूजा करके उस हाथ को शिष्य के मूर्धा, हृदय और नाभि पर उसके पाश जलाते हुए रखे। फिर बाएँ हाथ में सौम्य रूप में, शुद्ध तत्त्व से पुष्ट करने वाले की पूजा करके प्रणाम करे। फिर भूतों, देवताओं और दिशाओं की बलि, मद्य, मांस, जल आदि से भरी, बाहर दे और आचमन करे। फिर स्वयं चरु खाकर शिष्य के आत्मा से एक होकर जागी हुई वृत्ति में रहे। सोया हुआ शिष्य भी यदि सुबह बुरा स्वप्न बताए तो उसे वह न समझाए — क्योंकि इससे उसे शंका और भय होंगे; केवल अस्त्र-मन्त्र से उसका निवारण करे।

पदपाठ ततः स्व-दक्षिण-हस्ते दीप्यतया देवता-चक्रं पूजयित्वा — फिर अपने दाहिने हाथ में देवताचक्र की दीप्त रूप में पूजा करके · तं हस्तं मूर्ध-हृत्-नाभिषु शिष्यस्य पाशान् दहन्तं निक्षिपेत् — उस हाथ को शिष्य के मूर्धा, हृदय और नाभि पर उसके पाश जलाते हुए रखे · ततः वामे सोम्यतया पूजयित्वा शुद्ध-तत्त्व-आप्यायिनम् — फिर बाएँ हाथ में सौम्य रूप में, शुद्ध तत्त्व से पुष्ट करने वाले की पूजा करके · ततः प्रणामं कुर्यात् — फिर प्रणाम करे · ततः भूत-देवता-दिक्-बलिं मद्य-मांस-जल-आदि-पूर्णं बहिः दद्यात् — फिर भूतों, देवताओं और दिशाओं की बलि, मद्य, मांस, जल आदि से भरी, बाहर दे · आचामेत — और आचमन करे · ततः स्वयं चरु-भोजनं कृत्वा — फिर स्वयं चरु खाकर · शिष्य-आत्मना सह ऐक्यम् आपन्नः प्रबुद्ध-वृत्तिः तिष्ठेत् — शिष्य के आत्मा से एक होकर जागी हुई वृत्ति में रहे · स्वपन् अपि प्रभाते शिष्यः चेत् अशुभं स्वप्नं वदेत् — सोया हुआ शिष्य भी यदि सुबह बुरा स्वप्न बताए · तत् अस्मै न व्याकुर्यात् — तो उसे वह न समझाए · शङ्का-आतङ्कौ हि तथा अस्य स्याताम् — क्योंकि इससे उसे शंका और भय होंगे · केवलम् अस्त्रेण तत्-निष्कृतिं कुर्यात् — केवल अस्त्र-मन्त्र से उसका निवारण करे

ततस्तथैव परमेश्वरं पूजयित्वा तदग्रे शिष्यस्य प्राणक्रमेण प्रविश्य हृत्कण्ठतालुललाटरन्ध्रद्वादशान्तेषु षट्सु कारणषट्कस्पर्शं कुर्वन् प्रत्येकमष्टौ संस्कारान् चिन्तयन् कंचित्कालं शिष्यप्राणं तत्रैव विश्रमय्य पुनरवरोहेत् ।
४३.५
इत्येवापादिताष्टाचत्वारिंशत्संस्कारोपरिकृतरुद्रांशापत्तिः समयीभवति ।
ततः अस्मै पूज्यं मन्त्रं पुष्पाद्यैः सह अर्पयेत् ।
ततः समयान् अस्मै निरूपयेत् ।

फिर उसी प्रकार परमेश्वर की पूजा करके, उनके सामने शिष्य में प्राण के क्रम से प्रवेश करके, हृदय, कण्ठ, तालु, ललाट, रन्ध्र और द्वादशान्त — इन छह स्थानों में छह कारणों का स्पर्श करता हुआ, हर एक में आठ संस्कारों का चिन्तन करता हुआ, कुछ समय शिष्य के प्राण को वहीं विश्राम देकर फिर नीचे उतरे। यों अड़तालीस संस्कार पाकर और उनके ऊपर रुद्रांश को प्राप्त होकर वह समयी हो जाता है। फिर उसे पूज्य मन्त्र पुष्प आदि के साथ अर्पित करे। फिर उसे समय बताए।

पदपाठ ततः तथा एव परमेश्वरं पूजयित्वा — फिर उसी प्रकार परमेश्वर की पूजा करके · तत्-अग्रे शिष्यस्य प्राण-क्रमेण प्रविश्य — उनके सामने शिष्य में प्राण के क्रम से प्रवेश करके · हृत्-कण्ठ-तालु-ललाट-रन्ध्र-द्वादशान्तेषु षट्सु कारण-षट्क-स्पर्शं कुर्वन् — हृदय, कण्ठ, तालु, ललाट, रन्ध्र और द्वादशान्त — इन छह स्थानों में छह कारणों का स्पर्श करता हुआ · प्रत्येकम् अष्टौ संस्कारान् चिन्तयन् — हर एक में आठ संस्कारों का चिन्तन करता हुआ · कंचित् कालं शिष्य-प्राणं तत्र एव विश्रमय्य पुनः अवरोहेत् — कुछ समय शिष्य के प्राण को वहीं विश्राम देकर फिर नीचे उतरे · इति एव आपादित-अष्टाचत्वारिंशत्-संस्कार-उपरि-कृत-रुद्र-अंश-आपत्तिः — यों अड़तालीस संस्कार पाकर और उनके ऊपर रुद्रांश को प्राप्त होकर · समयी भवति — वह समयी हो जाता है · ततः अस्मै पूज्यं मन्त्रं पुष्प-आद्यैः सह अर्पयेत् — फिर उसे पूज्य मन्त्र पुष्प आदि के साथ अर्पित करे · ततः समयान् अस्मै निरूपयेत् — फिर उसे समय बताए

गुरौ सर्वात्मना भक्तिः, तथा शास्त्रे देवे, तत्प्रतिद्वन्द्विनि पराङ्मुखता, गुरुवत् गुरुपुत्रादेः विद्यासंबन्धकृतस्य तत्पूर्वदीक्षितादेः संदर्शनम्, यौनसंबन्धस्य तदाराधनार्थम्, न तु स्वत इति मन्तव्यम् ।
स्त्रियो वन्ध्यायास्तज्जुगुप्साहेतुं न कुर्यात् ।
देवतानाम गुरुनाम तथा मन्त्रं पूजाकालात् ऋते न उच्चारयेत् । ४३.६
गुरूपभुक्तं शय्यादि न भुञ्जीत ।
यत् किंचित् लौकिकं क्रीडादि तत् गुरुसंनिधौ न कुर्यात् ।
तद्व्यतिरेकेण न अन्यत्र उत्कर्षबुद्धिं कुर्यात् ।
सर्वत्र श्राद्धादौ गुरुमेव पूजयेत् ।
सर्वेषु च नैमित्तिकेषु शाकिनीत्यादिशब्दान् न वदेत् ।

गुरु में पूरे मन से भक्ति, वैसे ही शास्त्र और देव में; उनके विरोधी से विमुखता; गुरु के समान गुरुपुत्र आदि को, जो विद्या के सम्बन्ध से जुड़े हैं, और उनके पहले दीक्षित शिष्यों को देखना — विवाह-सम्बन्धी का आदर गुरु की आराधना के लिए है, अपने आप नहीं, ऐसा समझना चाहिए। बाँझ स्त्री की निन्दा का कोई कारण न करे। देवता का नाम, गुरु का नाम और मन्त्र पूजा के समय के बाहर न बोले। गुरु की उपयोग की हुई शय्या आदि का उपयोग न करे। जो कुछ लौकिक है, खेल आदि, वह गुरु के सामने न करे। उनसे अलग किसी और को श्रेष्ठ न समझे। सब जगह, श्राद्ध आदि में, गुरु की ही पूजा करे। और सब नैमित्तिक कर्मों में "शाकिनी" आदि शब्द न बोले।

पदपाठ गुरौ सर्व-आत्मना भक्तिः तथा शास्त्रे देवे — गुरु में पूरे मन से भक्ति, वैसे ही शास्त्र और देव में · तत्-प्रतिद्वन्द्विनि पराङ्मुखता — उनके विरोधी से विमुखता · गुरुवत् गुरु-पुत्र-आदेः विद्या-संबन्ध-कृतस्य तत्-पूर्व-दीक्षित-आदेः संदर्शनम् — गुरु के समान गुरुपुत्र आदि को, जो विद्या के सम्बन्ध से जुड़े हैं, और उनके पहले दीक्षित शिष्यों को देखना · यौन-संबन्धस्य तत्-आराधन-अर्थम् — विवाह-सम्बन्धी का

आदर गुरु की आराधना के लिए है · **न तु स्वतः इति मन्तव्यम्** — अपने आप नहीं — ऐसा समझना चाहिए · **स्त्रियः वन्ध्यायाः तत्-जुगुप्सा-हेतुं न कुर्यात्** — बाँझ स्त्री की निन्दा का कोई कारण न करे · **देवता-नाम गुरु-नाम तथा मन्त्रं पूजा-कालात् ऋते न उच्चारयेत्** — देवता का नाम, गुरु का नाम और मन्त्र पूजा के समय के बाहर न बोले · **गुरु-उपभुक्तं शय्या-आदि न भुञ्जीत** — गुरु की उपयोग की हुई शय्या आदि का उपयोग न करे · **यत् किंचित् लौकिकं क्रीडा-आदि तत् गुरु-संनिधौ न कुर्यात्** — जो कुछ लौकिक है, खेल आदि, वह गुरु के सामने न करे · **तत्-व्यतिरेकेण न अन्यत्र उत्कर्ष-बुद्धिं कुर्यात्** — उनसे अलग किसी और को श्रेष्ठ न समझे · **सर्वत्र श्राद्ध-आदौ गुरुम् एव पूजयेत्** — सब जगह, श्राद्ध आदि में, गुरु की ही पूजा करे · **सर्वेषु च नैमित्तिकेषु शाकिनी-इति-आदि-शब्दान् न वदेत्** — और सब नैमित्तिक कर्मों में "शाकिनी" आदि शब्द न बोले

पर्वदिनानि पूजयेत् ।
वैष्णवाद्यैरधोदृष्टिभिः सह संगतिं न कुर्यात् ।
एतच्छासनस्थान् पूर्वजातिबुद्ध्या न पश्येत् ।
गुरुवर्गे गृहागते यथाशक्ति यागं कुर्यात् ।
अधोमार्गस्थितं कंचित् वैष्णवाद्यं तच्छास्त्रकुतूहलात् गुरूकृत्यापि त्यजेत् ।
तदापि न उत्कर्षबुद्ध्या पश्येत् ।
लिङ्गिभिः सह समाचारमेलनं न कुर्यात्, तान् केवलं यथाशक्ति पूजयेत्४३.७
शङ्कास्त्यजेत् ।
चक्रे स्थितश्चरमाग्र्यादिविभागं जन्मकृतं न संकल्पयेत् ।
शरीरात् ऋते न अन्यत् आयतनतीर्थादिकं बहुमानेन पश्येत् ।
मन्त्रहृदयम् अनवरतं स्मरेत्, इत्येवं शिष्यः श्रुत्वा प्रणम्य अभ्युपगम्य गुरुं
धनदारशरीरपर्यन्तया दक्षिणया परितोष्य पूर्वदीक्षितांश्च दीनानाथादिकान्
तर्पयेत् ।

पर्व के दिनों की पूजा करे। नीची दृष्टि वाले वैष्णव आदि के साथ संगति न करे। इस शासन में स्थित लोगों को पहले की जाति की बुद्धि से न देखे। गुरु-वर्ग के घर आने पर यथाशक्ति याग करे। नीचे मार्ग में स्थित किसी वैष्णव आदि को, उसके शास्त्र के कुतूहल से गुरु बना लेने पर भी, छोड़ दे; तब भी उसे श्रेष्ठ-बुद्धि से न देखे। लिंगधारियों के साथ आचार का मेल न करे; उनका केवल यथाशक्ति सम्मान करे। शंकाएँ छोड़ दे। चक्र में स्थित होकर जन्म से बने नीच-उच्च आदि भेद का संकल्प न करे। शरीर के सिवा किसी और आयतन, तीर्थ आदि को बहुत आदर से न देखे। मन्त्र के हृदय का निरन्तर स्मरण करे। यह सुनकर, प्रणाम करके, स्वीकार करके शिष्य

धन, स्त्री और शरीर तक की दक्षिणा से गुरु को सन्तुष्ट करके पूर्व-दीक्षितों और दीन-अनाथ आदि को तृप्त करे।

पदपाठ पर्व-दिनानि पूजयेत् — पर्व के दिनों की पूजा करे · वैष्णव-आद्यैः अधः-दृष्टिभिः सह संगतिं न कुर्यात् — नीची दृष्टि वाले वैष्णव आदि के साथ संगति न करे · एतत्-शासन-स्थान् पूर्व-जाति-बुद्ध्या न पश्येत् — इस शासन में स्थित लोगों को पहले की जाति की बुद्धि से न देखे · गुरु-वर्गे गृह-आगते यथाशक्ति यागं कुर्यात् — गुरु-वर्ग के घर आने पर यथाशक्ति याग करे · अधः-मार्ग-स्थितं कंचित् वैष्णव-आद्यं तत्-शास्त्र-कुतूहलात् गुरू-कृत्य अपि त्यजेत् — नीचे मार्ग में स्थित किसी वैष्णव आदि को, उसके शास्त्र के कुतूहल से गुरु बना लेने पर भी, छोड़ दे · तदा अपि न उत्कर्ष-बुद्ध्या पश्येत् — तब भी उसे श्रेष्ठ-बुद्धि से न देखे · लिङ्गिभिः सह समाचार-मेलनं न कुर्यात् — लिंगधारियों के साथ आचार का मेल न करे · तान् केवलं यथाशक्ति पूजयेत् — उनका केवल यथाशक्ति सम्मान करे · शङ्काः त्यजेत् — शंकाएँ छोड़ दे · चक्रे स्थितः चरम-अग्र्य-आदि-विभागं जन्म-कृतं न संकल्पयेत् — चक्र में स्थित होकर जन्म से बने नीच-उच्च आदि भेद का संकल्प न करे · शरीरात् ऋते न अन्यत् आयतन-तीर्थ-आदिकं बहुमानेन पश्येत् — शरीर के सिवा किसी और आयतन, तीर्थ आदि को बहुत आदर से न देखे · मन्त्र-हृदयम् अनवरतं स्मरेत् — मन्त्र के हृदय का निरन्तर स्मरण करे · इति एवं शिष्यः श्रुत्वा प्रणम्य अभ्युपगम्य — यह सुनकर, प्रणाम करके, स्वीकार करके शिष्य · गुरुं धन-दार-शरीर-पर्यन्तया दक्षिणया परितोष्य — धन, स्त्री और शरीर तक की दक्षिणा से गुरु को सन्तुष्ट करके · पूर्व-दीक्षितान् च दीन-अनाथ-आदिकान् तर्पयेत् — पूर्व-दीक्षितों और दीन-अनाथ आदि को तृप्त करे

भावीविधिना च मूर्तिचक्रं तर्पयेत् ।

इत्थं समयीभवति ।

मन्त्राभ्यासे नित्यपूजायां श्रवणेऽध्ययने अधिकारी, नैमित्तिके तु सर्वत्र गुरुमेव अभ्यर्थयेत्, इति सामयिको विधिः । ४३.८

और आगे कही जाने वाली विधि से मूर्तिचक्र को तृप्त करे। इस प्रकार वह समयी होता है। वह मन्त्राभ्यास, नित्यपूजा, श्रवण और अध्ययन का अधिकारी है; पर नैमित्तिक में सब जगह गुरु से ही प्रार्थना करे। यह समयी की विधि है।

पदपाठ भावि-विधिना च मूर्ति-चक्रं तर्पयेत् — और आगे कही जाने वाली विधि से मूर्तिचक्र को तृप्त करे · इत्थं समयी भवति — इस प्रकार वह समयी होता है · मन्त्र-अभ्यासे नित्य-पूजायां श्रवणे अध्ययने अधिकारी — वह मन्त्राभ्यास, नित्यपूजा, श्रवण और अध्ययन का अधिकारी है · नैमित्तिके तु सर्वत्र गुरुम् एव अभ्यर्थयेत् — पर नैमित्तिक में सब जगह गुरु से ही प्रार्थना करे · इति सामयिकः विधिः — यह समयी की विधि है

अध्वानमालोच्य समस्तमन्तः

पूर्णं स्वमात्मानमथावलोक्य ।

पश्येदनुग्राहधिया द्विषट्क-

पर्यन्तमेवं समयी शिशुः स्यात् ॥ ४३

भीतर समूचे अध्वा को देखकर और फिर अपने आत्मा को पूर्ण देखकर, अनुग्रह-बुद्धि से उसे द्वादशान्त तक देखे। इस प्रकार बालक समयी होता है।

पदपाठ अध्वानम् — अध्वा को · आलोच्य — देखकर · समस्तम् — समूचे · अन्तः — भीतर · पूर्णम् — पूर्ण · स्वम् — अपने · आत्मानम् — आत्मा को · अथ — फिर · अवलोक्य — देखकर · पश्येत् — देखे · अनुग्राह-धिया — अनुग्रह-बुद्धि से · द्विषट्क-पर्यन्तम् — द्वादशान्त तक · एवम् — इस प्रकार · समयी — समयी · शिशुः — बालक · स्यात् — होता है

सअलभा अपरि उण्णउ परभैरउ अत्ताणु
जाइवि अग्गणि सण्णउ जोअभिमी सत्ताणु ।
एहस समयदिक्ख परभइरव जलणि हि मज्जणिण ४३.९
इत्थति लज्जहवन बहुपरिभवहोइउवाउजिण ॥

परभैरव-रूप आत्मा सब भावों से ऊपर उठा हुआ है; योगभूमि के सत्त्वों के आगे जाकर वहाँ स्थित होकर, यह समय-दीक्षा परभैरव की ज्वाला में मज्जन है। इसे पाकर मनुष्य बहुत परिभवों को जीतने वाला होता है।

पदपाठ सअलभा अपरि उण्णउ — सब भावों से ऊपर उठा हुआ · परभैरउ अत्ताणु — परभैरव-रूप आत्मा · जाइवि अग्गणि सण्णउ — आगे जाकर वहाँ स्थित होकर · जोअभिमी सत्ताणु — योगभूमि के सत्त्वों का · एहस समयदिक्ख — यह समय-दीक्षा · परभइरव जलणि हि मज्जणिण — परभैरव की ज्वाला में मज्जन है · इत्थति लज्जहवन — इसे पाकर · बहुपरिभवहोइउवाउजिण — बहुत परिभवों को जीतने वाला होता है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे समयिदीक्षाप्रकाशनं नाम त्रयोदशमाह्निकम् ॥ १३ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में समयिदीक्षाप्रकाशन नामक तेरहवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

चतुर्दशमाह्निकम्

पुत्रकदीक्षाप्रकाशनम्

यह आह्निक संक्षेप में वह विधि बताता है जिससे शिष्य पुत्रक बनता है। समयी विधि के बाद तीसरे दिन गुरु त्रिशूल और कमल वाले मण्डल में सब देवताओं के समूह की पूजा करता है: बाहर बाहरी परिवार और द्वार-देवताओं की, फिर पूर्व भाग में एक पंक्ति में गणपति, गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी, पूर्व आचार्यों, योगिनीचक्र, वागीश्वरी और क्षेत्रपाल की। आज्ञा लेकर वह शूल के मूल से लेकर श्वेत कमल तक पूरे अध्वा का न्यास करके पूजा करता है। बीच के त्रिशूल पर परा देवी भैरवनाथ के साथ, बाएँ और दाएँ अरों पर अपरा और परापरा, और दोनों ओर के त्रिशूलों पर वही देवियाँ बैठती हैं। क्योंकि देवी हर स्थान की अधिष्ठात्री है, उसके अधिष्ठान से सब पूर्ण हो जाता है, और उससे अभिन्न रूप में पूजा गया पूरा देवताचक्र हर जगह पूजा हुआ हो जाता है। फिर गुरु कुम्भ, कलश, मण्डल, अग्नि और अपने आप को अभेद-भावना से एक करता है, और परमेश्वर के अद्वैत-रस से भरे फूलों आदि से विशेष पूजा करता है। विधि तर्पण और नैवेद्य से पूर्ण हो, धन की कंजूसी न हो; धन न हो तो महामण्डल-याग करना ही नहीं चाहिए। जीवित पशु अर्पित किए जाते हैं, और इसमें हिचकना नहीं चाहिए, क्योंकि वे भी अनुग्रह पाते हैं। अग्नि में परमेश्वर को तृप्त करके और दूसरे पशु की वपा का होम करके गुरु अपने को पूरे छह अध्वाओं से भरा हुआ, सबसे अभिन्न देखता है, और शिष्य को सामने बिठाता है — शिष्य अनुपस्थित या मृत हो तो दर्भ और गोबर की उसकी प्रतिकृति रखता है। शिष्य को सींचकर और पूजकर वह पूरे अध्वा को उसके शरीर में रखता है और फिर विचार करता है: भोग चाहने वाले का केवल अशुभ शोधता है; मोक्ष चाहने वाले का शुभ और अशुभ दोनों; निर्बीज दीक्षा में समय-पाश भी, क्योंकि यह मरणासन्न मूर्ख के लिए भी करनी है, जो केवल गुरु, देवता और अग्नि की भक्ति से सिद्ध होता है। हर जगह भेद केवल वासना का ग्रहण करता है, क्योंकि मन्त्र वासना के अनुसार काम करते हैं। इसे ध्यान में रखकर वह शिष्य के शरीर में पैर के अँगूठे से द्वादशान्त तक पूरे अध्वा को शिव-अद्वय भावना से शोधता है, और शिष्य के शरीर और चैतन्य को अपने से एक करके अनन्त आनन्द के सरोवर में, जो इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियों से भरा है और जिसमें केवल चित् शेष

रह जाती है, शिष्य के साथ विश्राम पाता है। इस तरह शिष्य परमेश्वर से अभिन्न हो जाता है। भोग चाहे तो उसे इच्छित तत्त्व में जोड़ा जाता है; फिर शेष जीवन के लिए शुद्ध तत्त्वों का शरीर उसके लिए सोचा जाता है। यही सब पाश खोलने वाली दीक्षा है। शिष्य दक्षिणा से गुरु की पूजा करता है, और अग्नि की विधि होती है: परा मन्त्र से हर तत्त्व के लिए तीन आहुतियाँ, "अमुक का अमुक तत्त्व शोधता हूँ, स्वाहा," अन्त में वौषट् वाली पूर्णाहुति, शिव तत्त्व तक, फिर योजना की पूर्णाहुति, और भोग चाहने वाले के लिए दो और। भूत और भविष्य कर्म शुद्ध हो जाते हैं; केवल वर्तमान कर्म रहता है। अन्त के श्लोक यही कहते हैं: प्रबुद्ध गुरु भीतर और बाहर अपनी सत्ता को पूरे अध्वा से जोड़कर शिष्य की बुद्धि, प्राण और शरीर को अपनी बुद्धि, प्राण और शरीर से एक करता है, और जैसे ही शिष्य उस महान आनन्द और बोध में विश्राम पाता है, पशु शिव-भाव को पा लेता है।

अथ पुत्रकदीक्षाविधिः ।

स च विस्तीर्णः तन्त्रालोकात् अवधार्यः ।

संक्षिप्तस्तु उच्यते ।

समय्यन्तं विधिं कृत्वा तृतीयेऽह्नि त्रिशूलाब्जे मण्डले सामुदायिकं यागं पूजयेत्; तत्र बाह्यपरिवारं द्वारदेवताचक्रं च बहिः पूजयेत्, ततो मण्डलपूर्वभागे ऐशकोणात् आरभ्य आग्नेयान्तं पङ्क्तिक्रमेण गणपतिं गुरुं परमगुरुं परमेष्ठिनं पूर्वाचार्यान् योगिनीचक्रं वागीश्वरीं क्षेत्रपालं च पूजयेत् ।

अब पुत्रक-दीक्षा की विधि। विस्तार से वह तन्त्रालोक से जाननी चाहिए; यहाँ संक्षेप में कही जाती है। समयी तक की विधि करके तीसरे दिन त्रिशूल और कमल वाले मण्डल में सब देवताओं के समूह की पूजा करे। वहाँ बाहरी परिवार और द्वार-देवताओं के चक्र की पूजा बाहर करे। फिर मण्डल के पूर्व भाग में ईशान कोण से आग्नेय कोण तक एक पंक्ति में गणपति, गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी, पूर्व आचार्यों, योगिनीचक्र, वागीश्वरी और क्षेत्रपाल की पूजा करे।

पदपाठ अथ पुत्रक-दीक्षा-विधिः — अब पुत्रक-दीक्षा की विधि · स च विस्तीर्णः — वह विस्तार से · तन्त्रालोकात् अवधार्यः — तन्त्रालोक से जाननी चाहिए · संक्षिप्तः तु उच्यते — यहाँ संक्षेप में कही जाती है · समयि-अन्तं विधिं कृत्वा — समयी तक की विधि करके · तृतीये अह्नि — तीसरे दिन · त्रिशूल-अब्जे मण्डले — त्रिशूल और कमल वाले मण्डल में · सामुदायिकं यागं पूजयेत् — सब देवताओं के समूह की पूजा करे · तत्र बाह्य-परिवारं द्वार-देवता-चक्रं च — वहाँ बाहरी परिवार और द्वार-देवताओं के चक्र की · बहिः पूजयेत् — बाहर पूजा करे · ततः मण्डल-पूर्व-भागे — फिर मण्डल के पूर्व भाग में · ऐश-कोणात् आरभ्य आग्नेय-अन्तम् — ईशान कोण से आग्नेय कोण तक · पङ्क्ति-क्रमेण — एक पंक्ति में · गणपतिं गुरुं परम-गुरुं परमेष्ठिनम् — गणपति, गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी · पूर्व-आचार्यान् योगिनी-चक्रं वागीश्वरीं क्षेत्रपालं च — पूर्व आचार्यों, योगिनीचक्र, वागीश्वरी और क्षेत्रपाल की · पूजयेत् — पूजा करे

तत आज्ञां समुचिताम् आदाय शूलमूलात् प्रभृति सितकमलान्तं समस्तम् अध्वानं न्यस्य अर्चयेत्, ततो मध्यमे त्रिशूले मध्यारायां भगवती श्रीपराभट्टारिका भैरवनाथेन सह, वामारायां तथैव श्रीमदपरा, दक्षिणारायां श्रीपरापरा, दक्षिणे त्रिशूले मध्ये श्रीपरापरा, वामे त्रिशूले मध्ये श्रीमदपरा, द्वे तु यथास्वम् । ४४.२

एवं सर्वस्थानाधिष्ठातृत्वे भगवत्याः सर्वं पूर्णं तदधिष्ठानात् भवति इति ।

फिर उचित आज्ञा लेकर शूल के मूल से श्वेत कमल तक पूरे अध्वा का न्यास करके पूजा करे। फिर बीच के त्रिशूल के बीच वाले अरे पर भगवती श्रीपरा भट्टारिका भैरवनाथ के साथ, बाएँ अरे पर वैसे ही श्रीमती अपरा, दाएँ अरे पर श्रीपरापरा। दाएँ त्रिशूल के बीच में श्रीपरापरा, बाएँ त्रिशूल के बीच में श्रीमती अपरा, और दोनों अन्य अपने-अपने स्थान पर। इस तरह देवी हर स्थान की अधिष्ठात्री है, इसलिए उसके अधिष्ठान से सब पूर्ण हो जाता है।

पदपाठ ततः आज्ञां समुचिताम् आदाय — फिर उचित आज्ञा लेकर · शूल-मूलात् प्रभृति सित-कमल-अन्तम् — शूल के मूल से श्वेत कमल तक · समस्तम् अध्वानं न्यस्य अर्चयेत् — पूरे अध्वा का न्यास करके पूजा करे · ततः मध्यमे त्रिशूले मध्य-अरायाम् — फिर बीच के त्रिशूल के बीच वाले अरे पर · भगवती श्री-परा-भट्टारिका भैरवनाथेन सह — भगवती श्रीपरा भट्टारिका भैरवनाथ के साथ · वाम-अरायां तथा एव श्रीमत्-अपरा — बाएँ अरे पर वैसे ही श्रीमती अपरा · दक्षिण-अरायां श्री-परापरा — दाएँ अरे पर श्रीपरापरा · दक्षिणे त्रिशूले मध्ये श्री-परापरा — दाएँ त्रिशूल के बीच में श्रीपरापरा · वामे त्रिशूले मध्ये श्रीमत्-अपरा — बाएँ त्रिशूल के बीच में श्रीमती अपरा · द्वे तु यथास्वम् — और दोनों अन्य अपने-अपने स्थान पर · एवं सर्व-स्थान-अधिष्ठातृत्वे भगवत्याः — इस तरह देवी हर स्थान की अधिष्ठात्री है, इसलिए · सर्वं पूर्णं तत्-अधिष्ठानात् भवति इति — उसके अधिष्ठान से सब पूर्ण हो जाता है

ततो मध्यशूलमध्यारायां समस्तं देवताचक्रं लोकपालास्त्रपर्यन्तम् अभिन्नतयैव पूजयेत् तदधिष्ठानात् सर्वत्र पूजितम् ।

ततः कुम्भे कलशे मण्डले अग्नौ स्वात्मनि च अभेदभावनया पञ्चाधिकरणम् अनुसन्धिं कुर्यात्, ततः परमेश्वराद्वयरसबृंहितेन पुष्पादिना विशेषपूजां कुर्यात् । ४४.३

फिर बीच के शूल के बीच वाले अरे पर लोकपालों और उनके अस्त्रों तक पूरे देवताचक्र की पूजा उससे अभिन्न रूप में ही करे; उसके अधिष्ठान से वह हर जगह पूजा हुआ हो जाता है। फिर कुम्भ, कलश, मण्डल, अग्नि और अपने आप में अभेद-भावना से पाँच अधिकरणों को एक करे। फिर परमेश्वर के अद्वैत-रस से भरे फूलों आदि से विशेष पूजा करे।

पदपाठ ततः मध्य-शूल-मध्य-अरायाम् — फिर बीच के शूल के बीच वाले अरे पर · समस्तं देवता-चक्रं लोकपाल-अस्त्र-पर्यन्तम् — लोकपालों और उनके अस्त्रों तक पूरे देवताचक्र की · अभिन्नतया एव पूजयेत् — उससे अभिन्न रूप में ही पूजा करे · तत्-अधिष्ठानात् सर्वत्र पूजितम् — उसके अधिष्ठान से वह हर जगह पूजा हुआ हो जाता है · ततः कुम्भे कलशे मण्डले अग्नौ स्व-आत्मनि च — फिर कुम्भ, कलश, मण्डल, अग्नि और अपने आप में · अभेद-भावनया — अभेद-भावना से · पञ्च-अधिकरणम् अनुसन्धिं कुर्यात् — पाँच अधिकरणों को एक करे · ततः परमेश्वर-अद्वय-रस-बृंहितेन पुष्प-आदिना — फिर परमेश्वर के अद्वैत-रस से भरे फूलों आदि से · विशेष-पूजां कुर्यात् — विशेष पूजा करे

किं बहुना—तर्पणनैवेद्यपरिपूर्णं वित्तशाठ्यविरहितो यागस्थानं कुर्यात् ।
असति वित्ते तु महामण्डलयागो न कर्तव्य एव ।
पशूंश्च जीवतो निवेदयेत् । ४४.४
तेऽपि हि एवम् अनुगृहीता भवन्ति, इति कारुणिकतया पशुविधौ न विचिकित्सेत् ।

अधिक क्या कहें — धन की कंजूसी छोड़कर यागस्थान को तर्पण और नैवेद्य से भरपूर करे। पर धन न हो तो महामण्डल-याग करना ही नहीं चाहिए। और जीवित पशु अर्पित करे। क्योंकि वे भी इस तरह अनुग्रह पाते हैं; इसलिए करुणा के कारण पशु-विधि में हिचके नहीं।

पदपाठ किं बहुना — अधिक क्या कहें · तर्पण-नैवेद्य-परिपूर्णं यागस्थानं कुर्यात् — यागस्थान को तर्पण और नैवेद्य से भरपूर करे · वित्त-शाठ्य-विरहितः — धन की कंजूसी छोड़कर · असति वित्ते तु — पर धन न हो तो · महा-मण्डल-यागः न कर्तव्यः एव — महामण्डल-याग करना ही नहीं चाहिए · पशून् च जीवतः निवेदयेत् — और जीवित पशु अर्पित करे · ते अपि हि एवम् अनुगृहीताः भवन्ति — क्योंकि वे भी इस तरह अनुग्रह पाते हैं · इति कारुणिकतया — इसलिए करुणा के कारण · पशु-विधौ न विचिकित्सेत् — पशु-विधि में हिचके नहीं

ततोऽग्नौ परमेश्वरं तिलाज्यादिभिः संतर्प्य तदग्रेऽन्यं पशुं वपाहोमार्थं कुर्यात्, देवताचक्रं तद्वपया तर्पयेत्, पुनर्मण्डलं पूजयेत्, ततः परमेश्वरं विज्ञप्य सर्वाभिन्नसमस्तषडध्वपरिपूर्णम् आत्मानं भावयित्वा शिष्यं पुरोऽवस्थितं कुर्यात् ।

परोक्षदीक्षायां जीवन्मृतरूपायाम् अग्रे तं ध्यायेत्, तदीयां वा प्रतिकृतिं दर्भगोमयादिमयीम् अग्रे स्थापयेत् । ४४.५

तथाविधं शिष्यम् अर्घपात्रविप्रुट्प्रोक्षितं पुष्पादिभिश्च पूजितं कृत्वा समस्तमध्वानं तद्देहे न्यसेत् ।

फिर अग्नि में तिल, घी आदि से परमेश्वर को तृप्त करके उसके सामने वपा के होम के लिए दूसरा पशु दे; उसकी वपा से देवताचक्र को तृप्त करे, और फिर से मण्डल की पूजा करे। फिर परमेश्वर से विनती करके, अपने को सबसे अभिन्न, पूरे छह अध्वाओं से भरा हुआ देखकर, शिष्य को सामने बिठाए। जीवित या मृत, अनुपस्थित शिष्य की दीक्षा में उसे सामने ध्यान में लाए, या दर्भ, गोबर आदि की उसकी प्रतिकृति सामने रखे। ऐसे शिष्य को अर्घपात्र की बूँदों से सींचकर और फूलों आदि से पूजकर पूरे अध्वा को उसके शरीर में रखे।

पदपाठ ततः अग्नौ परमेश्वरं तिल-आज्य-आदिभिः संतर्प्य — फिर अग्नि में तिल, घी आदि से परमेश्वर को तृप्त करके · तत्-अग्रे अन्यं पशुं वपा-होम-अर्थं कुर्यात् — उसके सामने वपा के होम के लिए दूसरा पशु दे · देवता-चक्रं तत्-वपया तर्पयेत् — उसकी वपा से देवताचक्र को तृप्त करे · पुनः मण्डलं पूजयेत् — फिर से मण्डल की पूजा करे · ततः परमेश्वरं विज्ञप्य — फिर परमेश्वर से विनती करके · सर्व-अभिन्न-समस्त-षट्-अध्व-परिपूर्णम् आत्मानं भावयित्वा — अपने को सबसे अभिन्न, पूरे छह अध्वाओं से भरा हुआ देखकर · शिष्यं पुरः-अवस्थितं कुर्यात् — शिष्य को सामने बिठाए · परोक्ष-दीक्षायां जीवत्-मृत-रूपायाम् — जीवित या मृत, अनुपस्थित शिष्य की दीक्षा में · अग्रे तं ध्यायेत् — उसे सामने ध्यान में लाए · तदीयां वा प्रतिकृतिं दर्भ-गोमय-आदि-मयीम् अग्रे स्थापयेत् — या दर्भ, गोबर आदि की उसकी प्रतिकृति सामने रखे · तथाविधं शिष्यम् — ऐसे शिष्य को · अर्घ-पात्र-विप्रुट्-प्रोक्षितं पुष्प-आदिभिः च पूजितं कृत्वा —

अर्घपात्र की बूँदों से सींचकर और फूलों आदि से पूजकर · समस्तम् अध्वानं तत्-देहे न्यसेत् — पूरे अध्वा को उसके शरीर में रखे

तत इत्थं विचारयेत्, भोगेच्छोः शुभं न शोधयेत् ।
मुमुक्षोस्तु शुभाशुभम् उभयमपि ।
निर्बीजायां तु समयपाशान् अपि शोधयेत्, सा च आसन्नमरणस्य
अत्यन्तमूर्खस्यापि कर्तव्या इति परमेश्वराज्ञा, तस्यापि तु ४४.६
गुरुदेवताग्निभक्तिनिष्ठत्वमात्रात् सिद्धिः ।
अत्र च सर्वत्र वासनाग्रहणमेव भेदकम्—मन्त्राणां वासनानुगुण्येन
तत्तत्कार्यकारित्वात् ।

फिर इस तरह विचार करे: भोग चाहने वाले का शुभ न शोधे; पर मोक्ष चाहने वाले का शुभ और अशुभ दोनों। निर्बीज दीक्षा में समय के पाश भी शोधे। और वह मरणासन्न, अत्यन्त मूर्ख के लिए भी करनी चाहिए — यह परमेश्वर की आज्ञा है — और उसकी भी केवल गुरु, देवता और अग्नि की भक्ति में निष्ठा से सिद्धि होती है। और यहाँ हर जगह केवल वासना का ग्रहण ही भेद करता है, क्योंकि मन्त्र वासना के अनुसार वह-वह कार्य करते हैं।

पदपाठ ततः इत्थं विचारयेत् — फिर इस तरह विचार करे · भोग-इच्छोः शुभं न शोधयेत् — भोग चाहने वाले का शुभ न शोधे · मुमुक्षोः तु शुभ-अशुभम् उभयम् अपि — पर मोक्ष चाहने वाले का शुभ और अशुभ दोनों · निर्बीजायां तु समय-पाशान् अपि शोधयेत् — निर्बीज दीक्षा में समय के पाश भी शोधे · सा च आसन्न-मरणस्य अत्यन्त-मूर्खस्य अपि कर्तव्या — और वह मरणासन्न, अत्यन्त मूर्ख के लिए भी करनी चाहिए · इति परमेश्वर-आज्ञा — यह परमेश्वर की आज्ञा है · तस्य अपि तु — और उसकी भी · गुरु-देवता-अग्नि-भक्ति-निष्ठत्व-मात्रात् सिद्धिः — केवल गुरु, देवता और अग्नि की भक्ति में निष्ठा से सिद्धि होती है · अत्र च सर्वत्र — और यहाँ हर जगह · वासना-ग्रहणम् एव भेदकम् — केवल वासना का ग्रहण ही भेद करता है · मन्त्राणां वासना-आनुगुण्येन तत्-तत्-कार्य-कारित्वात् — क्योंकि मन्त्र वासना के अनुसार वह-वह कार्य करते हैं

एवं वासनाभेदमनुसंधाय मुख्यमन्त्रपरामर्शविशेषेण समस्तमध्वानं स्वदेहगतं शिवाद्वयभावनया शोधयेत् ।

एवं क्रमेण पादाङ्गुष्ठात् प्रभृति द्वादशान्तपर्यन्तं स्वात्मदेहस्वात्मचैतन्याभिन्नीकृतदेहचैतन्यस्य शिष्यस्य आसाद्य तत्रैव ४४.७
अनन्तानन्दसरसि स्वातन्त्र्यैश्वर्यसारे समस्तेच्छाज्ञानक्रियाशक्तिनिर्भरसमस्तदेवताचक्रेश्वरे समस्ताध्वभरिते चिन्मात्रावशेषविश्वभावमण्डले तथाविधरूपैकीकारेण शिष्यात्मना सह एकीभूतो विश्रान्तिमासादयेत्, इत्येवं परमेश्वराभिन्नोऽसौ भवति ।

इस तरह वासना के भेद को ध्यान में रखकर, मुख्य मन्त्र के विशेष परामर्श से, अपने शरीर में स्थित पूरे अध्वा को शिव से अद्वैत की भावना से शोधे। इस तरह क्रम से पैर के अँगूठे से द्वादशान्त तक उस शिष्य तक पहुँचकर, जिसके शरीर और चैतन्य को अपने शरीर और चैतन्य से एक कर लिया है, वहीं अनन्त आनन्द के सरोवर में — जिसका सार स्वतन्त्रता का ऐश्वर्य है, जो इच्छा, ज्ञान और क्रिया की सब शक्तियों से भरा पूरे देवताचक्र का ईश्वर है, पूरे अध्वा से भरा है, सब भावों का वह मण्डल है जिसमें केवल चित् शेष रहती है — उसी रूप में एक होकर, शिष्य की आत्मा के साथ एक हुआ विश्राम पाए। इस तरह वह परमेश्वर से अभिन्न हो जाता है।

पदपाठ एवं वासना-भेदम् अनुसंधाय — इस तरह वासना के भेद को ध्यान में रखकर · मुख्य-मन्त्र-परामर्श-विशेषेण — मुख्य मन्त्र के विशेष परामर्श से · समस्तम् अध्वानं स्व-देह-गतम् — अपने शरीर में स्थित पूरे अध्वा को · शिव-अद्वय-भावनया शोधयेत् — शिव से अद्वैत की भावना से शोधे · एवं क्रमेण — इस तरह क्रम से · पाद-अङ्गुष्ठात् प्रभृति द्वादश-अन्त-पर्यन्तम् — पैर के अँगूठे से द्वादशान्त तक · स्व-आत्म-देह-स्व-आत्म-चैतन्य-अभिन्नीकृत-देह-चैतन्यस्य शिष्यस्य — उस शिष्य के, जिसके शरीर और चैतन्य को अपने शरीर और चैतन्य से एक कर लिया है · आसाद्य — पहुँचकर · तत्र एव अनन्त-आनन्द-सरसि — वहीं अनन्त आनन्द के सरोवर में · स्वातन्त्र्य-ऐश्वर्य-सारे — जिसका सार स्वतन्त्रता का ऐश्वर्य

है · समस्त-इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शक्ति-निर्भर-समस्त-देवता-चक्र-ईश्वरे — जो इच्छा, ज्ञान और क्रिया की सब शक्तियों से भरा पूरे देवताचक्र का ईश्वर है · समस्त-अध्व-भरिते — पूरे अध्वा से भरे · चित्-मात्र-अवशेष-विश्व-भाव-मण्डले — सब भावों के उस मण्डल में जिसमें केवल चित् शेष रहती है · तथाविध-रूप-एकीकारेण — उसी रूप में एक होकर · शिष्य-आत्मना सह एकीभूतः — शिष्य की आत्मा के साथ एक हुआ · विश्रान्तिम् आसादयेत् — विश्राम पाए · इति एवं परमेश्वर-अभिन्नः असौ भवति — इस तरह वह परमेश्वर से अभिन्न हो जाता है

ततो यदि भोगेच्छुः स्यात् ततो यत्रैव तत्त्वे भोगेच्छा अस्य भवति तत्रैव समस्तव्यस्ततया योजयेत् ।

तदनन्तरं शेषवृत्तये परमेश्वरस्वभावात् झटिति प्रसृतं शुद्धतत्त्वमयं देहम् अस्मै चिन्तयेत्,—इत्येषा समस्तपाशवियोजिका दीक्षा ।

ततः शिष्यो गुरुं दक्षिणाभिः पूर्ववत् पूजयेत् ।

फिर यदि वह भोग चाहता हो, तो जिस तत्त्व में उसकी भोग की इच्छा हो, वहीं उसे सब में या किसी एक में जोड़े। उसके बाद शेष जीवन चलाने के लिए उसके लिए परमेश्वर के स्वभाव से क्षण भर में निकला हुआ शुद्ध तत्त्वों का शरीर सोचे। यह सब पाश खोलने वाली दीक्षा है। फिर शिष्य पहले की तरह दक्षिणा से गुरु की पूजा करे।

पदपाठ ततः यदि भोग-इच्छुः स्यात् — फिर यदि वह भोग चाहता हो · ततः यत्र एव तत्त्वे भोग-इच्छा अस्य भवति — तो जिस तत्त्व में उसकी भोग की इच्छा हो · तत्र एव समस्त-व्यस्ततया योजयेत् — वहीं उसे सब में या किसी एक में जोड़े · तत्-अनन्तरं शेष-वृत्तये — उसके बाद शेष जीवन चलाने के लिए · परमेश्वर-स्वभावात् झटिति प्रसृतम् — परमेश्वर के स्वभाव से क्षण भर में निकला हुआ · शुद्ध-तत्त्व-मयं देहम् अस्मै चिन्तयेत् — उसके लिए शुद्ध तत्त्वों का शरीर सोचे · इति एषा समस्त-पाश-वियोजिका दीक्षा — यह सब पाश खोलने वाली दीक्षा है · ततः शिष्यः गुरुं दक्षिणाभिः पूर्ववत् पूजयेत् — फिर शिष्य पहले की तरह दक्षिणा से गुरु की पूजा करे

ततोऽग्नौ शिष्यस्य विधिं कुर्यात्, श्रीपरामन्त्रः अमुकस्यामुकं तत्त्वं शोधयामि,
इति स्वाहान्तं प्रतितत्त्वं तिस्र आहुतयः, अन्ते पूर्णा वौषडन्ता ।
एवं शिवान्ततत्त्वशुद्धिः, ततो योजनिकोक्तक्रमेण पूर्णाहुतिः ।
भोगेच्छोः भोगस्थाने योजनिकार्थमपरा, शुद्धतत्त्वसृष्ट्यर्थमन्या । ४४.९
ततो गुरोः दक्षिणाभिः पूजनम्, इत्येषा पुत्रकदीक्षा ।
यत्र वर्तमानमेकं वर्जयित्वा भूतं भविष्यच्च कर्म शुध्यति ॥

फिर अग्नि में शिष्य की विधि करे: श्रीपरा के मन्त्र से, "अमुक का अमुक तत्त्व शोधता हूँ", इस तरह स्वाहा तक, हर तत्त्व के लिए तीन आहुतियाँ, और अन्त में वौषट् वाली पूर्णाहुति। इस तरह शिव तक के तत्त्वों की शुद्धि होती है; फिर योजना के लिए कहे क्रम से पूर्णाहुति। भोग चाहने वाले के लिए भोग के स्थान में जोड़ने के लिए दूसरी, और शुद्ध तत्त्वों की सृष्टि के लिए एक और। फिर दक्षिणा से गुरु की पूजा। यह पुत्रक-दीक्षा है, जिसमें केवल वर्तमान कर्म को छोड़कर भूत और भविष्य कर्म शुद्ध हो जाता है।

पदपाठ ततः अग्नौ शिष्यस्य विधिं कुर्यात् — फिर अग्नि में शिष्य की विधि करे · श्री-परा-मन्त्रः — श्रीपरा का मन्त्र · अमुकस्य अमुकं तत्त्वं शोधयामि इति स्वाहा-अन्तम् — "अमुक का अमुक तत्त्व शोधता हूँ", इस तरह स्वाहा तक · प्रति-तत्त्वं तिस्रः आहुतयः — हर तत्त्व के लिए तीन आहुतियाँ · अन्ते पूर्णा वौषट्-अन्ता — अन्त में वौषट् वाली पूर्णाहुति · एवं शिव-अन्त-तत्त्व-शुद्धिः — इस तरह शिव तक के तत्त्वों की शुद्धि · ततः योजनिका-उक्त-क्रमेण पूर्ण-आहुतिः — फिर योजना के लिए कहे क्रम से पूर्णाहुति · भोग-इच्छोः भोग-स्थाने योजनिका-अर्थम् अपरा — भोग चाहने वाले के लिए भोग के स्थान में जोड़ने के लिए दूसरी · शुद्ध-तत्त्व-सृष्टि-अर्थम् अन्या — और शुद्ध तत्त्वों की सृष्टि के लिए एक और · ततः गुरोः दक्षिणाभिः पूजनम् — फिर दक्षिणा से गुरु की पूजा · इति एषा पुत्रक-दीक्षा — यह पुत्रक-दीक्षा है · यत्र वर्तमानम् एकं वर्जयित्वा — जिसमें केवल वर्तमान कर्म को छोड़कर · भूतं भविष्यत् च कर्म शुध्यति — भूत और भविष्य कर्म शुद्ध हो जाता है

अन्तः समस्ताध्वमयीं स्वसत्तां
बहिश्च संधाय विभेदशून्यः ।
शिष्यस्य धीप्राणतनूर्निजासु
तास्वेकतां संगमयेत्प्रबुद्धः ॥ ४४

पूरे अध्वा से बनी अपनी सत्ता को भीतर और बाहर जोड़कर, भेद से रहित प्रबुद्ध गुरु शिष्य की बुद्धि, प्राण और शरीर को अपनी बुद्धि, प्राण और शरीर के साथ एकता में ले आए।

पदपाठ अन्तः — भीतर · समस्त-अध्व-मयीम् — पूरे अध्वा से बनी · स्व-सत्ताम् — अपनी सत्ता को · बहिः — बाहर · च — और · संधाय — जोड़कर · विभेद-शून्यः — भेद से रहित · शिष्यस्य — शिष्य की · धी-प्राण-तनूः — बुद्धि, प्राण और शरीर को · निजासु — अपने · तासु — उनके साथ · एकताम् — एकता में · संगमयेत् — ले आए · प्रबुद्धः — प्रबुद्ध गुरु

शिष्यैकभावं झटिति प्रपद्य
तस्मिन्महानन्दविबोधपूर्णे ।
यावत्स विश्राम्यति तावदेव
शिवात्मभावं पशुरभ्युपैति ॥ ४५

क्षण भर में शिष्य के साथ एकता पाकर, जैसे ही वह महान आनन्द और बोध से पूर्ण उस अवस्था में विश्राम पाता है, उसी क्षण पशु शिव-भाव को पा लेता है।

पदपाठ शिष्य-एक-भावम् — शिष्य के साथ एकता को · झटिति — क्षण भर में · प्रपद्य — पाकर · तस्मिन् — उसमें · महा-आनन्द-विबोध-पूर्णे — महान आनन्द और बोध से पूर्ण · यावत् — जैसे ही · सः — वह · विश्राम्यति — विश्राम पाता है · तावत् एव — उसी क्षण · शिव-आत्म-भावम् — शिव-भाव को · पशुः — पशु · अभ्युपैति — पा लेता है

जे सहु एकीभाउलये
विणु अच्छइ एहु विबोह समुद्द ।
सो पशु भइरउ हो इलये विणु
अन्तर्नावजिउ अस असमुद्दु ॥

४५.१

जो सबके साथ एक होने की अवस्था में बिना भेद के रहता है — यह बोध का समुद्र है — वह पशु बिना किसी डगमगाहट के भैरव हो जाता है, भीतर से न हारा हुआ, अविचल रहता है।

पदपाठ **जे सहु एकीभाउलये** — जो सबके साथ एक होने की अवस्था में · **विणु अच्छइ** — बिना भेद के रहता है · **एहु विबोह समुद्द** — यह बोध का समुद्र है · **सो पशु भइरउ हो** — वह पशु भैरव हो जाता है · **इलये विणु** — बिना किसी डगमगाहट के · **अन्तर्नावजिउ** — भीतर से न हारा हुआ · **अस असमुद्दु** — वह अविचल रहता है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे पुत्रकदीक्षाप्रकाशनं नाम चतुर्दशमाह्निकम् ॥ १४ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में पुत्रकदीक्षाप्रकाशन नामक चौदहवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

पञ्चदशमाह्निकम्

सप्रत्ययदीक्षाप्रकाशनम्

यह छोटा आह्निक उस दीक्षा को बताता है जो तब दी जाती है जब कोई व्यक्ति मृत्यु के निकट हो और उस पर शक्तिपात हो — अपने आप या किसी बन्धु के द्वारा कहलवाने से। तब गुरु उसे तुरन्त वह दीक्षा देता है जिससे जीव शरीर से ऊपर की ओर निकल जाता है। वह पूरे अध्वा को शिष्य में रखता है, क्रम से उसे शोधता है, फिर मर्म काटने वाली भगवती कालरात्री का न्यास करता है और उससे एक-एक करके मर्म-पाशों को काटता है, यहाँ तक कि शिष्य का चैतन्य ब्रह्मरन्ध्र में जा ठहरता है। फिर पहले कहे क्रम से योजना की पूर्णाहुति देता है, जिससे उसके अन्त में जीव निकलकर परमशिव से अभिन्न हो जाता है। जो अब भी भोग चाहता हो, उसके लिए दूसरी पूर्णाहुति है, भोग के स्थान में जोड़ने के लिए; उसी समय उसके जीव का लय हो जाता है, और कुछ भी शेष नहीं रहता। या गुरु उसके कान में ब्रह्मविद्या पढ़े, क्योंकि उसका स्वभाव परामर्श है और वह जगे हुए पशु के चैतन्य में तुरन्त जगा हुआ विमर्श कर देती है; समयी भी उसे पढ़ सकता है। फिर प्रत्यय वाली निर्बीज दीक्षा, जो मूढ़ को या शक्तिपात पाए हुए को दिखाई जाती है: शिवहस्त देने के समय गुरु अपने दाएँ हाथ में एक त्रिकोण आग्नेय मण्डल सोचता है, ज्वालाओं से भयंकर, रेफ की चिनगारियों वाला, बाहर बवंडर से धौंका जाता हुआ; उस हाथ में वह कोई बीज डालता है और ऊपर-नीचे के रेफ से जगाए हुए फट्कारों की परम्परा से उसकी उगने की शक्ति जला देता है; ऐसा करते हुए वह हाथ शिष्य के सिर पर रखता है। दोनों के लिए यह निर्बीज दीक्षा बीज की अपना कार्य करने की सामर्थ्य नष्ट कर देती है — क्योंकि स्थावर भी दीक्षा के योग्य कहे गए हैं। फिर वह शिष्य को वायुपुर के भीतर रखा हुआ और हिलाया जाता हुआ, हल्का हुआ सोचता है, जिससे वह तराजू पर हल्का दिखता है। अन्त का श्लोक कहता है कि जब मन्त्र उचित मार्ग से लगाया जाए — मर्म काटने में, हल्का करने में, बीज के विलय में — तो परमेश्वर उसे तुरन्त कर देता है, और देशभाषा का पद जोड़ता है कि इच्छाशक्ति जिसका प्राण है, वह मन्त्र जो-जो विशेष बात मन में लेकर उच्चारा जाए, उसे स्पष्ट रूप से कर देता है।

यदा पुनरासन्नमरणस्य स्वयं वा बन्धुमुखेन शक्तिपात उपजायते, तदा अस्मै सद्यः समुत्क्रमणदीक्षां कुर्यात् ।

समस्तमध्वानं शिष्ये न्यस्य तं च क्रमेण शोधयित्वा, भगवतीं कालरात्रीम् मर्मकर्तनीं न्यस्य, तया क्रमात्क्रमं मर्मपाशान् विभिद्य, ब्रह्मरन्ध्रवर्ति शिष्यचैतन्यं कुर्यात् ।

ततः पूर्वोक्तक्रमेण योजनिकार्थं पूर्णाहुतिं दद्यात्, यथा पूर्णाहुत्यन्ते जीवो निष्क्रान्तः परमशिवाभिन्नो भवति ।

पर जब मृत्यु के निकट व्यक्ति पर अपने आप या किसी बन्धु के द्वारा शक्तिपात होता है, तब उसे तुरन्त उत्क्रमण की दीक्षा दे। पूरे अध्वा को शिष्य में रखकर और उसे क्रम से शोधकर, मर्म काटने वाली भगवती कालरात्री का न्यास करके, उससे एक-एक करके मर्म-पाशों को काटकर, शिष्य के चैतन्य को ब्रह्मरन्ध्र में स्थित करे। फिर पहले कहे क्रम से योजना के लिए पूर्णाहुति दे, जिससे पूर्णाहुति के अन्त में जीव निकलकर परमशिव से अभिन्न हो जाता है।

पदपाठ यदा पुनः आसन्न-मरणस्य — पर जब मृत्यु के निकट व्यक्ति पर · स्वयं वा बन्धु-मुखेन — अपने आप या किसी बन्धु के द्वारा · शक्तिपातः उपजायते — शक्तिपात होता है · तदा अस्मै सद्यः समुत्क्रमण-दीक्षां कुर्यात् — तब उसे तुरन्त उत्क्रमण की दीक्षा दे · समस्तम् अध्वानं शिष्ये न्यस्य — पूरे अध्वा को शिष्य में रखकर · तं च क्रमेण शोधयित्वा — और उसे क्रम से शोधकर · भगवतीं कालरात्रीम् मर्म-कर्तनीं न्यस्य — मर्म काटने वाली भगवती कालरात्री का न्यास करके · तया क्रमात्-क्रमं मर्म-पाशान् विभिद्य — उससे एक-एक करके मर्म-पाशों को काटकर · ब्रह्मरन्ध्र-वर्ति शिष्य-चैतन्यं कुर्यात् — शिष्य के चैतन्य को ब्रह्मरन्ध्र में स्थित करे · ततः पूर्व-उक्त-क्रमेण — फिर पहले कहे क्रम से · योजनिका-अर्थं पूर्ण-आहुतिं दद्यात् — योजना के लिए पूर्णाहुति दे · यथा पूर्ण-आहुति-अन्ते — जिससे पूर्णाहुति के अन्त में · जीवः निष्क्रान्तः परमशिव-अभिन्नः भवति — जीव निकलकर परमशिव से अभिन्न हो जाता है

बुभुक्षोस्तु द्वितीया पूर्णाहुतिः—भोगस्थाने योजनाय, तत्काले च तस्य जीवलयः, नात्र शेषवर्तनम्, ब्रह्मविद्यां वा कर्णे पठेत्, सा हि परामर्शस्वभावा ४६.२
सद्यः प्रबुद्धपशुचैतन्ये प्रबुद्धविमर्शं करोति ।
समय्यादेरपि च एतत्पाठेऽधिकारः ।

पर भोग चाहने वाले के लिए दूसरी पूर्णाहुति है, भोग के स्थान में जोड़ने के लिए; और उसी समय उसके जीव का लय हो जाता है — यहाँ कुछ शेष जीना नहीं रहता। या उसके कान में ब्रह्मविद्या पढ़े, क्योंकि उसका स्वभाव परामर्श है, और वह जगे हुए पशु के चैतन्य में तुरन्त जगा हुआ विमर्श कर देती है। और समयी आदि को भी इसे पढ़ने का अधिकार है।

पदपाठ बुभुक्षोः तु द्वितीया पूर्ण-आहुतिः — पर भोग चाहने वाले के लिए दूसरी पूर्णाहुति है · भोग-स्थाने योजनाय — भोग के स्थान में जोड़ने के लिए · तत्-काले च तस्य जीव-लयः — और उसी समय उसके जीव का लय हो जाता है · न अत्र शेष-वर्तनम् — यहाँ कुछ शेष जीना नहीं रहता · ब्रह्मविद्यां वा कर्णे पठेत् — या उसके कान में ब्रह्मविद्या पढ़े · सा हि परामर्श-स्वभावा — क्योंकि उसका स्वभाव परामर्श है · सद्यः प्रबुद्ध-पशु-चैतन्ये — तुरन्त, जगे हुए पशु के चैतन्य में · प्रबुद्ध-विमर्शं करोति — जगा हुआ विमर्श कर देती है · समयि-आदेः अपि च एतत्-पाठे अधिकारः — और समयी आदि को भी इसे पढ़ने का अधिकार है

सप्रत्ययां निर्बीजां तु यदि दीक्षां मूढाय आयातशक्तिपाताय च दर्शयेत्, तदा हि शिवहस्तदानकाले अयं विधिः—त्रिकोणमाग्नेयं ज्वालाकरालं रेफविस्फुलिङ्गं बहिर्वात्याचक्रध्मायमानं मण्डलं दक्षिणहस्ते चिन्तयित्वा तत्रैव हस्ते बीजं किंचित् निक्षिप्य ऊर्ध्वाधोरेफविबोधितफट्कारपरम्पराभिः अस्य तां जननशक्तिं दहेत्, एवं कुर्वन् तं हस्तं शिष्यस्य मूर्धनि क्षिपेत्, इति द्वयोरपि ४६.३ **एषा दीक्षा निर्बीजा स्वकार्यकरणसामर्थ्यविध्वंसिनी भवति—स्थावराणामपि दीक्ष्यत्वेन उक्तत्वात्, वायुपुरान्तर्व्यवस्थितं दोधूयमानं शिष्यं लघूभूतं चिन्तयेत् —येन तुलया लघुः दृश्यते इति ।**

पर यदि प्रत्यय वाली निर्बीज दीक्षा मूढ़ को या शक्तिपात पाए हुए को दिखाए, तो शिवहस्त देने के समय यह विधि है। दाएँ हाथ में त्रिकोण आग्नेय मण्डल सोचकर — ज्वालाओं से भयंकर, रेफ की चिनगारियों वाला, बाहर बवंडर से धौंका जाता हुआ — और उसी हाथ में कोई बीज डालकर, ऊपर-नीचे के रेफ से जगाए हुए फट्कारों की परम्परा से उसकी उगने की शक्ति जला दे; ऐसा करते हुए वह हाथ शिष्य के सिर पर रखे। इस तरह दोनों के लिए यह निर्बीज दीक्षा अपना कार्य करने की सामर्थ्य नष्ट कर देती है — क्योंकि स्थावर भी दीक्षा के योग्य कहे गए हैं। वायुपुर के भीतर रखे हुए, हिलाए जाते हुए शिष्य को हल्का हुआ सोचे, जिससे वह तराजू पर हल्का दिखता है।

पदपाठ सप्रत्ययां निर्बीजां तु दीक्षाम् — पर प्रत्यय वाली निर्बीज दीक्षा · यदि मूढाय आयात-शक्तिपाताय च दर्शयेत् — यदि मूढ़ को या शक्तिपात पाए हुए को दिखाए · तदा हि शिव-हस्त-दान-काले अयं विधिः — तो शिवहस्त देने के समय यह विधि है · त्रिकोणम् आग्नेयं ज्वाला-करालं रेफ-विस्फुलिङ्गम् — त्रिकोण आग्नेय मण्डल, ज्वालाओं से भयंकर, रेफ की चिनगारियों वाला · बहिः-वात्या-चक्र-ध्मायमानं मण्डलम् — बाहर बवंडर से धौंका जाता हुआ · दक्षिण-हस्ते चिन्तयित्वा — दाएँ हाथ में सोचकर · तत्र एव हस्ते बीजं किंचित् निक्षिप्य — उसी हाथ में कोई बीज डालकर · ऊर्ध्व-अधः-रेफ-विबोधित-फट्कार-

परम्पराभिः — ऊपर-नीचे के रेफ से जगाए हुए फट्कारों की परम्परा से · **अस्य तां जनन-शक्तिं दहेत्** — उसकी उगने की शक्ति जला दे · **एवं कुर्वन् तं हस्तं शिष्यस्य मूर्धनि क्षिपेत्** — ऐसा करते हुए वह हाथ शिष्य के सिर पर रखे · **इति द्वयोः अपि एषा दीक्षा निर्बीजा** — इस तरह दोनों के लिए यह निर्बीज दीक्षा · **स्व-कार्य-करण-सामर्थ्य-विध्वंसिनी भवति** — अपना कार्य करने की सामर्थ्य नष्ट कर देती है · **स्थावराणाम् अपि दीक्ष्यत्वेन उक्तत्वात्** — क्योंकि स्थावर भी दीक्षा के योग्य कहे गए हैं · **वायु-पुर-अन्तः-व्यवस्थितं दोधूयमानं शिष्यम्** — वायुपुर के भीतर रखे हुए, हिलाए जाते हुए शिष्य को · **लघूभूतं चिन्तयेत्** — हल्का हुआ सोचे · **येन तुलया लघुः दृश्यते इति** — जिससे वह तराजू पर हल्का दिखता है

मर्मकर्तनविधौ लघुभावे
बीजभावविलये यदि मन्त्रः ।
तत्तथोचितपथेन नियुक्त-
स्तत्तदाशु कुरुते परमेशः ॥ ४६

यदि मन्त्र उस-उस के उचित मार्ग से लगाया जाए — मर्म काटने की विधि में, हल्का करने में, बीज के स्वभाव के विलय में — तो परमेश्वर वह-वह तुरन्त कर देता है।

पदपाठ **मर्म-कर्तन-विधौ** — मर्म काटने की विधि में · **लघु-भावे** — हल्का करने में · **बीज-भाव-विलये** — बीज के स्वभाव के विलय में · **यदि** — यदि · **मन्त्रः** — मन्त्र · **तत्-तथा-उचित-पथेन** — उस-उस के उचित मार्ग से · **नियुक्तः** — लगाया जाए · **तत्-तत्** — वह-वह · **आशु** — तुरन्त · **कुरुते** — कर देता है · **परमेशः** — परमेश्वर

जं अनु अन्धि विसेसं
घेतूण जडन्ति मन्तमुच्चरइ ।
इच्छासत्तिप्पाणो ४६.४
तं तं मन्तो करेइ फुडम् ॥

जो-जो विशेष बात मन में लेकर कोई ध्यानपूर्वक मन्त्र उच्चारता है, इच्छाशक्ति जिसका प्राण है वह मन्त्र वही-वही स्पष्ट रूप से कर देता है।

पदपाठ **जं अनु अन्धि विसेसं** — जो-जो विशेष बात · **घेतूण** — मन में लेकर · **जडन्ति मन्तम् उच्चरइ** — कोई ध्यानपूर्वक मन्त्र उच्चारता है · **इच्छासत्तिप्पाणो** — इच्छाशक्ति जिसका प्राण है · **तं तं मन्तो करेइ** — वह मन्त्र वही-वही कर देता है · **फुडम्** — स्पष्ट रूप से

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे सप्रत्ययदीक्षाप्रकाशनं नाम पञ्चदशमाह्निकम् ॥ १५ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में सप्रत्ययदीक्षाप्रकाशन नामक पन्द्रहवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

षोडशमाह्निकम्

परोक्षदीक्षाप्रकाशनम्

यह आह्निक उस व्यक्ति की दीक्षा सिखाता है जो सामने नहीं है, और वह दो तरह का है: मरा हुआ और जीवित। जिस मरे हुए की दीक्षा की जा सकती है वह है जो गुरु की सेवा करके मरा हो, या निकाला गया हो, या अभिचार या दंगे में मारा गया हो, या मृत्यु के क्षण में जिसमें इस मार्ग की रुचि जगी हो, या जिस पर किसी और द्वार से शक्तिपात हुआ हो — ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है। मृत की दीक्षा में अधिवास आदि की ज़रूरत नहीं। मण्डल में विशेष मन्त्र को सन्निहित करने वाले कारण चढ़ते क्रम में गिनाए गए हैं: जहाँ क्रिया बहुत हो, पुष्प आदि उत्तम सामग्री, पीठ आदि स्थान, त्रिशूलाब्ज आदि मण्डल, ध्येय-विशेष रूप आकृति, स्वयं दीप्त मन्त्र, और ध्यानपरायण योगी, एकनिष्ठ भक्ति में डूबे साधक और ज्ञानी से सम्बन्ध; जब सब मिल जाएँ तो कहना ही क्या। फिर गुरु देवता की पूजा करके सामने कुश आदि की बनी मृतक की आकृति रखता है और अपने गुरु से मिले ज्ञान के उपदेश के क्रम से उसे देखता है; और उसका वीर्य मूलाधार से उठकर अध्वदण्ड की अनन्त नाड़ियों को दबाकर, नासिका के आकाश में फैलकर, बाहर फेंकता हुआ सब में व्याप्त होना चाहता है। दो श्लोक महाजाल का वर्णन करते हैं: धुएँ-सी सघन लपटों के जाल से अध्वचक्र को ढककर इच्छित जीव को खींच लाना; खींचा जाने वाला जीव पहले विवश होकर सम्मुख होता है, फिर पूरा खींच लिया जाता है, या अध्वा के बीच से जैसा चाहे — यह जाल नामक योग है, जो शम्भुनाथ की परम्परा से मिला है। इस आपत्ति पर कि बाहर बिना अभ्यास के ऐसा क्यों नहीं होता, उत्तर है कि बाहर राग-द्वेष के वश प्रवृत्ति होती है इसलिए ऐश्वर्य का आवेश नहीं हो पाता, और नियति के बन्धन से अभ्यास की अपेक्षा रहती ही है; यहाँ अनुग्रह-रूप परमेश्वरता का आवेश है, क्योंकि परमेश्वर ही गुरु के शरीर में रहकर अनुग्रह के पात्रों पर अनुग्रह करता है, और उसकी महिमा अचिन्त्य है। यों खींचा हुआ जीव कुश या जायफल की आकृति में समा जाता है; मन-प्राण न होने से वह हिलता नहीं, पर गुरु के ध्यान के बल से हिल भी उठता है; और उस पर पहले जैसा प्रोक्षण आदि संस्कार पूर्णाहुति और योजना तक किया जाता है, जिससे आकृति परम तेज में लीन हो जाती है। यों उद्धृत जीव पूर्णाहुति से ही मुक्त हो

जाता है यदि वह स्वर्ग, नरक, प्रेत या तिर्यक् योनि में था; मनुष्य उसी समय ज्ञान, योग, दीक्षा या विवेक पा लेता है, क्योंकि उसका शरीर इनका अधिकारी है। जीवित परोक्ष पर शक्तिपात होने पर भी यही क्रम है, केवल कुश की आकृति और जीव का आकर्षण छोड़कर; ध्यान से ही उपस्थित किए हुए उस पर संस्कार होता है। दीक्षा भोग और मोक्ष दोनों देती है, क्योंकि अपनी वासना बलवान होती है और बहुतों से भोग-वासना का कटना सम्भव नहीं; और दीक्षा में ऊँचे शासन का संस्कार बलवान है, दूसरा केवल उसे सँवारने के लिए है। परोक्ष दीक्षित में भी ज्ञान आदि वैसे ही प्रकट होते हैं। समापक श्लोक: परमेश्वरता के आवेश की दृढ़ता से स्वातन्त्र्य का भागी गुरु परोक्ष को संकल्प मात्र से दीक्षित कर देता है — इसमें क्या आश्चर्य।

अथ परोक्षस्य दीक्षा, द्विविधश्च सः–मृतो जीवंश्च ।
तत्र कृतगुरुसेव एव मृत उद्वासितो वा अभिचारादिहतो डिम्बाहतो ४७.१
मृत्युक्षणोदिततथारुचिः मुखान्तरायातशक्तिपातो वा तथा दीक्ष्य इत्याज्ञा ।

अब परोक्ष की दीक्षा। वह दो तरह का है: मरा हुआ और जीवित। उनमें जो गुरु की सेवा करके मरा हो, या निकाला गया हो, या अभिचार आदि से या दंगे में मारा गया हो, या जिसमें मृत्यु के क्षण में ऐसी रुचि जगी हो, या जिस पर किसी और द्वार से शक्तिपात हुआ हो — उसे उस रीति से दीक्षित किया जाए। ऐसी आज्ञा है।

पदपाठ अथ परोक्षस्य दीक्षा — अब परोक्ष की दीक्षा · द्विविधः च सः — और वह दो तरह का है · मृतः जीवन् च — मरा हुआ और जीवित · तत्र कृत-गुरु-सेवः एव मृतः — उनमें, गुरु की सेवा करके मरा हुआ · उद्वासितः वा — या निकाला गया · अभिचार-आदि-हतः — अभिचार आदि से मारा गया · डिम्ब-आहतः — दंगे में मारा गया · मृत्यु-क्षण-उदित-तथा-रुचिः — जिसमें मृत्यु के क्षण में ऐसी रुचि जगी · मुख-अन्तर-आयात-शक्तिपातः वा — या जिस पर किसी और द्वार से शक्तिपात हुआ · तथा दीक्ष्यः — उस रीति से दीक्षित किया जाए · इति आज्ञा — ऐसी आज्ञा है

अत्र च मृतदीक्षायाम् अधिवासादि न उपयुज्यते ।
मण्डले मन्त्रविशेषसंनिधये यत्र बहुला क्रिया, उत्तममुपकरणं पुष्पादि, स्थानं पीठादि, मण्डलं त्रिशूलाब्जादि, आकृतिः ध्येयविशेषः, मन्त्रः स्वयं दीप्तश्च, ध्यानपरस्य योगिनः तदेकभक्तिसमावेशशालिनो ज्ञानिनश्च संबन्धः, इत्येते ४७.२
संनिधानहेतवो यथोत्तरम् उक्ताः ।
समुदितत्वे तु का कथा स्यात्–इति परमेश्वरेण उक्तम् ।

और यहाँ, मृत की दीक्षा में अधिवास आदि की ज़रूरत नहीं। मण्डल में विशेष मन्त्र को सन्निहित करने के लिए ये कारण चढ़ते क्रम में कहे गए हैं: जहाँ क्रिया बहुत हो, पुष्प आदि उत्तम सामग्री, पीठ आदि स्थान, त्रिशूलाब्ज आदि मण्डल, ध्येय-विशेष रूप आकृति, स्वयं दीप्त मन्त्र, और ध्यानपरायण योगी, उसमें एकनिष्ठ भक्ति में डूबे साधक और ज्ञानी से सम्बन्ध। पर जब सब मिल जाएँ तो कहना ही क्या — ऐसा परमेश्वर ने कहा है।

पदपाठ अत्र च मृत-दीक्षायाम् — और यहाँ, मृत की दीक्षा में · अधिवास-आदि न उपयुज्यते — अधिवास आदि की ज़रूरत नहीं · मण्डले मन्त्र-विशेष-संनिधये — मण्डल में विशेष मन्त्र को सन्निहित करने के लिए · यत्र बहुला क्रिया — जहाँ क्रिया बहुत हो · उत्तमम् उपकरणं पुष्प-आदि — उत्तम सामग्री, पुष्प आदि · स्थानं पीठ-आदि — पीठ आदि स्थान · मण्डलं त्रिशूल-अब्ज-आदि — त्रिशूलाब्ज आदि मण्डल · आकृतिः ध्येय-विशेषः — ध्येय-विशेष रूप आकृति · मन्त्रः स्वयं दीप्तः च — और स्वयं दीप्त मन्त्र · ध्यान-परस्य योगिनः — ध्यानपरायण योगी से · तत्-एक-भक्ति-समावेश-शालिनः — उसमें एकनिष्ठ भक्ति में डूबे साधक से · ज्ञानिनः च संबन्धः — और ज्ञानी से सम्बन्ध · इति एते संनिधान-हेतवः — ये सन्निधान के कारण हैं · यथोत्तरम् उक्ताः — चढ़ते क्रम में कहे गए · समुदितत्वे तु — पर जब सब मिल जाएँ · का कथा स्यात् — तो कहना ही क्या · इति परमेश्वरेण उक्तम् — ऐसा परमेश्वर ने कहा है

ततो देवं पूजयित्वा तदाकृतिं कुशादिमयीम् अग्रे स्थापयित्वा
गुर्वासादितज्ञानोपदेशक्रमेण तां पश्येत्, स च ४७.३

फिर देवता की पूजा करके कुश आदि की बनी उसकी आकृति सामने रखकर, गुरु से मिले ज्ञान के उपदेश के क्रम से उसे देखे। और वह —

पदपाठ ततः देवं पूजयित्वा — फिर देवता की पूजा करके · तत्-आकृतिं कुश-आदि-मयीम् — कुश आदि की बनी उसकी आकृति · अग्रे स्थापयित्वा — सामने रखकर · गुरु-आसादित-ज्ञान-उपदेश-क्रमेण — गुरु से मिले ज्ञान के उपदेश के क्रम से · तां पश्येत् — उसे देखे · सः च — और वह

मूलाधारादुदेत्य प्रसृतसुवितताननन्तनाड्यध्वदण्डं
वीर्येणाक्रम्य नासागगनपरिगतं विक्षिपन्व्याप्तुमीष्टे ।
यावद्धूमाभिरामप्रचिततरशिखाजालकेनाध्वचक्रं
संच्छाद्याभीष्टजीवानयनमिति महाञ्जालनामा प्रयोगः ॥ ४७

मूलाधार से उठकर, वीर्य से फैली हुई अनन्त नाड़ियों वाले अध्वदण्ड को दबाकर, नासिका के आकाश में फैला हुआ, बाहर फेंकता हुआ वह व्याप्त होना चाहता है — जब तक धुएँ से सुहावनी सघन लपटों के जाल से अध्वचक्र को ढककर इच्छित जीव को खींच न लाए। यह महाजाल नामक प्रयोग है।

पदपाठ मूल-आधारात् — मूलाधार से · उदेत्य — उठकर · प्रसृत-सुवितत-अनन्त-नाडी-अध्व-दण्डम् — फैली हुई अनन्त नाड़ियों वाले अध्वदण्ड को · वीर्येण — वीर्य से · आक्रम्य — दबाकर · नासा-गगन-परिगतम् — नासिका के आकाश में फैला हुआ · विक्षिपन् — बाहर फेंकता हुआ · व्याप्तुम् — व्याप्त होना · ईष्टे — चाहता है · यावत् — जब तक · धूम-अभिराम-प्रचिततर-शिखा-जालकेन — धुएँ से सुहावनी सघन लपटों के जाल से · अध्व-चक्रम् — अध्वचक्र को · संच्छाद्य — ढककर · अभीष्ट-जीव-आनयनम् — इच्छित जीव को खींच लाना · इति — यह · महाञ्जाल-नामा — महाजाल नामक · प्रयोगः — प्रयोग

एतेनाच्छादनीयं व्रजति परवशं संमुखीनत्वमादौ
पश्चादानीयते चेत्सकलमथ ततोऽप्यध्वमध्याद्यथेष्टम् ।
आकृष्टावुद्धृतौ वा मृतजनविषये कर्षणीयेऽथ जीवे
योगः श्रीशंभुनाथागमपरिगमितो जालनामा मयोक्तः ॥ ४८

इससे जो ढका जाने वाला है वह पहले विवश होकर सम्मुख हो जाता है; फिर यदि चाहे तो पूरा खींच लिया जाता है, या अध्वा के बीच से भी, जैसा चाहे। मृत व्यक्ति के विषय में खींचने या उद्धार में, खींचे जाने वाले जीव के लिए, श्रीशम्भुनाथ की परम्परा से प्राप्त जाल नामक यह योग मैंने कहा है।

पदपाठ एतेन — इससे · आच्छादनीयम् — जो ढका जाने वाला है · व्रजति — आता है · परवशम् — विवश होकर · संमुखीनत्वम् — सम्मुखता को · आदौ — पहले · पश्चात् — फिर · आनीयते — खींच लिया जाता है · चेत् — यदि · सकलम् — पूरा · अथ — या · ततः अपि — वहाँ से भी · अध्व-मध्यात् — अध्वा के बीच से · यथेष्टम् — जैसा चाहे · आकृष्टौ — खींचने में · उद्धृतौ — उद्धार में · वा — या · मृत-जन-विषये — मृत व्यक्ति के विषय में · कर्षणीये — खींचे जाने वाले · अथ — फिर · जीवे — जीव के लिए · योगः — योग · श्री-शंभुनाथ-आगम-परिगमितः — श्रीशम्भुनाथ की परम्परा से प्राप्त · जाल-नामा — जाल नामक · मया — मैंने · उक्तः — कहा है

बहिरपि इत्थं कथं न भवति, आकर्षणादौ विनाभ्यासात्? इति चेत्–
रागद्वेषादियोगवशेन तत्प्रवृत्तौ ऐश्वर्यावेशायोगात् ।
ततो नियतिनियन्त्रितत्वात् अभ्यासाद्यपेक्षा स्यादेव । ४९.१
इह तु अनुग्रहात्मकपरमेश्वरतावेशात् तथाभावः ।
परमेश्वर एव हि गुरुशरीराधिष्ठानद्वारेण अनुग्राह्यान् अनुगृह्णाति ।
स च अचिन्त्यमहिमा इति उक्तप्रायम् ।

यदि पूछो कि बाहर भी, आकर्षण आदि में, बिना अभ्यास के ऐसा क्यों नहीं होता — तो उत्तर है कि वहाँ राग-द्वेष आदि के वश प्रवृत्ति होती है, इसलिए ऐश्वर्य का आवेश नहीं हो पाता। इसलिए, नियति के बन्धन से, अभ्यास आदि की अपेक्षा रहती ही है। पर यहाँ अनुग्रह-रूप परमेश्वरता के आवेश से ऐसा होता है। क्योंकि परमेश्वर ही गुरु के शरीर में रहकर अनुग्रह के पात्रों पर अनुग्रह करता है; और उसकी महिमा अचिन्त्य है, यह पहले प्रायः कहा जा चुका है।

पदपाठ बहिः अपि इत्थं कथं न भवति – बाहर भी ऐसा क्यों नहीं होता · आकर्षण-आदौ विना अभ्यासात् – आकर्षण आदि में, बिना अभ्यास के · इति चेत् – यदि ऐसा पूछो · राग-द्वेष-आदि-योग-वशेन तत्-प्रवृत्तौ – क्योंकि वहाँ राग-द्वेष आदि के वश प्रवृत्ति होती है · ऐश्वर्य-आवेश-अयोगात् – इसलिए ऐश्वर्य का आवेश नहीं हो पाता · ततः नियति-नियन्त्रितत्वात् – इसलिए, नियति के बन्धन से · अभ्यास-आदि-अपेक्षा स्यात् एव – अभ्यास आदि की अपेक्षा रहती ही है · इह तु – पर यहाँ · अनुग्रह-आत्मक-परमेश्वरता-आवेशात् – अनुग्रह-रूप परमेश्वरता के आवेश से · तथा-भावः – ऐसा होता है · परमेश्वरः एव हि – क्योंकि परमेश्वर ही · गुरु-शरीर-अधिष्ठान-द्वारेण – गुरु के शरीर में रहकर · अनुग्राह्यान् अनुगृह्णाति – अनुग्रह के पात्रों पर अनुग्रह करता है · सः च अचिन्त्य-महिमा – और उसकी महिमा अचिन्त्य है · इति उक्त-प्रायम् – यह पहले प्रायः कहा जा चुका है

एवं जालप्रयोगाकृष्टो जीवो दार्भं जातीफलादि वा शरीरं समाविष्टो भवति, न च स्पन्दते–मनःप्राणादिसामग्र्यभावात्, तदनुध्यानबलात् तु स्पन्दतेऽपि तादृशेऽपि तस्मिन् पूर्ववत् प्रोक्षणादिसंस्कारः पूर्णाहुतियोजनिकान्तः । अत्र परं पूर्णाहुत्या तस्य दार्भाद्याकारस्य परतेजसि लयः कर्तव्यः । ४९.२ एवम् उद्धृतोऽसौ पूर्णाहुत्यैव अपवृज्यते–यदि स्वर्नरकप्रेततिर्यक्षु स्थितः । मनुष्यस्तु तदैव ज्ञानं योगं दीक्षां विवेकं वा लभते–अधिकारिशरीरत्वात्, इति मृतोद्धरणम् ।

यों जाल-प्रयोग से खींचा हुआ जीव कुश के या जायफल आदि के शरीर में समा जाता है। वह हिलता नहीं, क्योंकि मन-प्राण आदि की सामग्री नहीं है; पर उस पर ध्यान के बल से हिल भी उठता है। ऐसे भी उस पर पहले जैसा प्रोक्षण आदि संस्कार पूर्णाहुति और योजना तक किया जाता है। पर यहाँ पूर्णाहुति से उस कुश आदि की आकृति का परम तेज में लय करना चाहिए। यों उद्धृत वह पूर्णाहुति से ही मुक्त हो जाता है, यदि वह स्वर्ग, नरक, प्रेत या तिर्यक् योनि में था। पर मनुष्य उसी समय ज्ञान, योग, दीक्षा या विवेक पा लेता है, क्योंकि उसका शरीर इनका अधिकारी है। यह मृत का उद्धार है।

पदपाठ एवं जाल-प्रयोग-आकृष्टः जीवः — यों जाल-प्रयोग से खींचा हुआ जीव · दार्भं जातीफल-आदि वा शरीरम् — कुश का या जायफल आदि का शरीर · समाविष्टः भवति — में समा जाता है · न च स्पन्दते — और हिलता नहीं · मनः-प्राण-आदि-सामग्री-अभावात् — क्योंकि मन-प्राण आदि की सामग्री नहीं है · तत्-अनुध्यान-बलात् तु स्पन्दते अपि — पर उस पर ध्यान के बल से हिल भी उठता है · तादृशे अपि तस्मिन् — ऐसे भी उस पर · पूर्ववत् प्रोक्षण-आदि-संस्कारः — पहले जैसा प्रोक्षण आदि संस्कार · पूर्णाहुति-योजनिका-अन्तः — पूर्णाहुति और योजना तक · अत्र परम् — पर यहाँ · पूर्णाहुत्या — पूर्णाहुति से · तस्य दार्भ-आदि-आकारस्य — उस कुश आदि की आकृति का · पर-तेजसि लयः कर्तव्यः — परम तेज में लय करना चाहिए · एवम् उद्धृतः असौ — यों उद्धृत वह · पूर्णाहुत्या एव अपवृज्यते — पूर्णाहुति से ही मुक्त हो जाता है · यदि स्वः-नरक-प्रेत-तिर्यक्षु स्थितः — यदि वह स्वर्ग, नरक, प्रेत या तिर्यक् योनि में था · मनुष्यः

तु तदा एव — पर मनुष्य उसी समय · ज्ञानं योगं दीक्षां विवेकं वा लभते — ज्ञान, योग, दीक्षा या विवेक पा लेता है · अधिकारि-शरीरत्वात् — क्योंकि उसका शरीर इनका अधिकारी है · इति मृत-उद्धरणम् — यह मृत का उद्धार है

जीवतोऽपि परोक्षस्य उत्पन्ने शक्तिपातेऽयमेव क्रमः,
दार्भाकृतिकल्पनजीवाकृष्टिवर्जम् ।
ध्यानमात्रोपस्थापितस्यैव अस्य संस्कारः ।
दीक्षा च भोगमोक्षोभयदायिनी–स्ववासनाबलीयस्त्वात्, भोगवासनाविच्छेदस्य
च असंभाव्यमानत्वात् बहुभिः, दीक्षायाम् ऊर्ध्वशासनसंस्कारो बलवान्
अन्यस्तु तत्संस्काराय स्यात् ।
परोक्षस्यापि दीक्षितस्य तथैव ज्ञानाद्याविर्भावः इति ।

जीवित परोक्ष के लिए भी, शक्तिपात होने पर, यही क्रम है — कुश की आकृति बनाना और जीव का आकर्षण छोड़कर। ध्यान से ही उपस्थित किए हुए उस पर संस्कार होता है। और दीक्षा भोग और मोक्ष दोनों देती है — क्योंकि अपनी वासना बलवान होती है और भोग-वासना का कटना बहुतों से सम्भव नहीं; दीक्षा में ऊँचे शासन का संस्कार बलवान है, दूसरा केवल उसे सँवारने के लिए है। परोक्ष दीक्षित में भी ज्ञान आदि वैसे ही प्रकट होते हैं।

पदपाठ जीवतः अपि परोक्षस्य — जीवित परोक्ष के लिए भी · उत्पन्ने शक्तिपाते — शक्तिपात होने पर · अयम् एव क्रमः — यही क्रम है · दार्भ-आकृति-कल्पन-जीव-आकृष्टि-वर्जम् — कुश की आकृति बनाना और जीव का आकर्षण छोड़कर · ध्यान-मात्र-उपस्थापितस्य एव अस्य — ध्यान से ही उपस्थित किए हुए उस पर · संस्कारः — संस्कार होता है · दीक्षा च भोग-मोक्ष-उभय-दायिनी — और दीक्षा भोग और मोक्ष दोनों देती है · स्व-वासना-बलीयस्त्वात् — क्योंकि अपनी वासना बलवान होती है · भोग-वासना-विच्छेदस्य च — और भोग-वासना का कटना · असंभाव्यमानत्वात् बहुभिः — बहुतों से सम्भव नहीं · दीक्षायाम् ऊर्ध्व-शासन-संस्कारः बलवान् — दीक्षा में ऊँचे शासन का संस्कार बलवान है · अन्यः तु तत्-संस्काराय स्यात् — दूसरा केवल उसे सँवारने के लिए है · परोक्षस्य अपि दीक्षितस्य — परोक्ष दीक्षित में भी · तथा एव ज्ञान-आदि-आविर्भावः — ज्ञान आदि वैसे ही प्रकट होते हैं · इति — ऐसा

परमेश्वरतावेशदाढ्र्यात्स्वातन्त्र्यभाग्गुरुः ।
परोक्षमभिसंधाय दीक्षितेति किमद्भुतम् ॥ ४९

परमेश्वरता के आवेश की दृढ़ता से स्वातन्त्र्य का भागी गुरु परोक्ष को संकल्प करके दीक्षित कर देता है — इसमें क्या आश्चर्य?

पदपाठ परमेश्वरता-आवेश-दाढ्र्यात् — परमेश्वरता के आवेश की दृढ़ता से · स्वातन्त्र्य-भाक् — स्वातन्त्र्य का भागी · गुरुः — गुरु · परोक्षम् — परोक्ष को · अभिसंधाय — संकल्प करके · दीक्षिता — दीक्षा देने वाला है · इति — यह · किम् — क्या · अद्भुतम् — आश्चर्य

परम्म सिवतम्म अत्तण-
प्पडिअंसच्छन्दभान ।
परमत्थं जो आविसत्ताऽस-
दिक्खइ परोक्ख इवं पिसिस्सगणं ॥ ४९.४

जिसने अपने में परम शिवत्व पा लिया है, जिसका भाव स्वच्छन्द है, जो परमार्थ में आविष्ट है — वह इस प्रकार परोक्ष रहते हुए भी पशु-शिष्यों के समूह को दीक्षित कर देता है।

पदपाठ परम्म सिवतम्म — परम शिवत्व का · अत्तणप्पडिअं — अपने में पाया हुआ · सच्छन्दभान — जिसका भाव स्वच्छन्द है · परमत्थं जो आविसत्ता — जो परमार्थ में आविष्ट है · अस-दिक्खइ — वह दीक्षित करता है · परोक्ख इवं — परोक्ष को इस प्रकार · पिसिस्सगणं — पशु-शिष्यों के समूह को

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे परोक्षदीक्षाप्रकाशनं नाम षोडशमाह्निकम्

॥ १६ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में परोक्षदीक्षाप्रकाशन नामक सोलहवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

सप्तदशमाह्निकम्

लिङ्गोद्धरणम्

यह छोटा आह्निक उन लोगों के लिए विधि देता है जो दूसरे शासनों में — वैष्णव से लेकर दक्षिण तन्त्रों तक — स्थित थे या जिन्होंने उनके व्रत लिए थे, और उनके लिए भी जो उत्तम शासन में होते हुए भी ऐसे निचले शासन के गुरु की सेवा करते थे जिसका उन्हें अधिकार नहीं था। जब परमेश्वर का शक्तिपात ऐसे लोगों को इस मार्ग की ओर उन्मुख करता है, तब यह विधि है। साधक उपवास करता है; अगले दिन गुरु साधारण मन्त्र से देवता की पूजा करके उसे साधक का किया हुआ सुनाता है और उसे भगवान् के सामने ले जाता है। वहाँ साधक का व्रत लेकर जल में फेंक दिया जाता है; वह स्नान करता है, उस पर प्रोक्षण होता है, चरु और दन्तकाष्ठ से उसका संस्कार होता है, और आँखें बाँधकर उसे भीतर ले जाकर साधारण मन्त्र से परमेश्वर की पूजा करवाई जाती है। फिर उसी मन्त्र से शिवरूप बनाई हुई अग्नि में गुरु व्रत की शुद्धि करता है: साधक का नाम मन्त्र के बीच रखकर "प्रायश्चित्त शोधयामि" कहते हुए स्वाहा-अन्त वाली सौ आहुतियाँ देता है, फिर वौषट्-अन्त वाली पूर्णाहुति। वह व्रतेश्वर का आवाहन करके पूजा करता है, शिव की आज्ञा से उसे सुनाता है "तुम इसके लिए अकिंचित्कर हो जाओ"; उसे तृप्त करके विसर्जित करता है और अग्नि को विसर्जित करता है। यह लिङ्गोद्धार है। इसके बाद अधिवास आदि पहले जैसे, और दीक्षा इच्छानुसार। समापक श्लोक: निचले शासन में स्थित भी, जिसका मन ईश्वर की प्रबल शक्ति से प्रेरित है, संस्कार करके दीक्षित किया जाए — वह भी जो पहले असद्गुरु में निरत था।

— अथ लिङ्गोद्धारः —

वैष्णवादिदक्षिणतन्त्रान्तेषु शासनेषु ये स्थिताः तद्गृहीतव्रता वा, ये च उत्तमशासनस्था अपि अनधिकृताधरशासनगुरूपसेविनः, ते यदा शक्तिपातेन पारमेश्वरेण उन्मुखीक्रियन्ते तदा तेषामयं विधिः,–तत्र एनं कृतोपवासम् अन्यदिने साधारणमन्त्रपूजितस्य तदीयां चेष्टां श्रावितस्य भगवतोऽग्रे प्रवेशयेत्; तत्रास्य व्रतं गृहीत्वा अम्भसि क्षिपेत्, ततोऽसौ स्नायात्, ततः प्रोक्ष्य, चरुदन्तकाष्ठाभ्यां संस्कृत्य, बद्धनेत्रं प्रवेश्य साधारणेन मन्त्रेण परमेश्वरपूजां कारयेत् ।

जो वैष्णव से लेकर दक्षिण तन्त्रों तक के शासनों में स्थित थे या जिन्होंने उनके व्रत लिए, और जो उत्तम शासन में होते हुए भी बिना अधिकार के निचले शासन के गुरु की सेवा करते थे — वे जब परमेश्वर के शक्तिपात से इस मार्ग की ओर उन्मुख किए जाते हैं, तब उनके लिए यह विधि है। उपवास किए हुए इस व्यक्ति को अगले दिन उस भगवान् के सामने ले जाए, जिसकी साधारण मन्त्र से पूजा की गई है और जिसे इसका किया हुआ सुनाया गया है। वहाँ इसका व्रत लेकर जल में फेंक दे; फिर वह स्नान करे। फिर प्रोक्षण करके, चरु और दन्तकाष्ठ से संस्कार करके, आँखें बाँधकर भीतर ले जाकर साधारण मन्त्र से परमेश्वर की पूजा करवाए।

पदपाठ वैष्णव-आदि-दक्षिण-तन्त्र-अन्तेषु शासनेषु — वैष्णव से लेकर दक्षिण तन्त्रों तक के शासनों में · ये स्थिताः — जो स्थित थे · तत्-गृहीत-व्रताः वा — या जिन्होंने उनके व्रत लिए · ये च उत्तम-शासन-स्थाः अपि — और जो उत्तम शासन में होते हुए भी · अनधिकृत-अधर-शासन-गुरु-उपसेविनः — बिना अधिकार के निचले शासन के गुरु की सेवा करते थे · ते यदा — वे जब · शक्तिपातेन पारमेश्वरेण — परमेश्वर के शक्तिपात से · उन्मुखीक्रियन्ते — उन्मुख किए जाते हैं · तदा तेषाम् अयं विधिः — तब उनके लिए यह विधि है · तत्र एनं कृत-उपवासम् — उसमें, उपवास किए हुए इस व्यक्ति को · अन्य-दिने — अगले दिन · साधारण-मन्त्र-पूजितस्य — जिसकी साधारण मन्त्र से पूजा की गई है · तदीयां चेष्टां श्रावितस्य — और जिसे इसका किया हुआ सुनाया गया है · भगवतः अग्रे प्रवेशयेत् — उस भगवान् के सामने ले जाए · तत्र अस्य व्रतं गृहीत्वा — वहाँ इसका व्रत लेकर · अम्भसि क्षिपेत् — जल में फेंक

दे · **ततः असौ स्नायात्** — फिर वह स्नान करे · **ततः प्रोक्ष्य** — फिर प्रोक्षण करके · **चरु-दन्तकाष्ठाभ्यां संस्कृत्य** — चरु और दन्तकाष्ठ से संस्कार करके · **बद्ध-नेत्रं प्रवेश्य** — आँखें बाँधकर भीतर ले जाकर · **साधारणेन मन्त्रेण** — साधारण मन्त्र से · **परमेश्वर-पूजां कारयेत्** — परमेश्वर की पूजा करवाए

ततः साधारणमन्त्रेण शिवीकृते अग्नौ व्रतशुद्धिं कुर्यात्, तन्मन्त्रसंपुटं नाम कृत्वा 'प्रायश्चित्तं शोधयामि' इति स्वाहान्तं शतं जुहुयात् ।

ततोऽपि पूर्णाहुतिः वौषडन्तेन ।

ततो व्रतेश्वरम् आहूय पूजयित्वा तस्य शिवाज्ञया 'अकिंचित्करः त्वमस्य भव'इति श्रावणां कृत्वा तं तर्पयित्वा विसृज्य अग्निं विसृजेत्, इति लिङ्गोद्धारः ।

ततोऽस्य अधिवासादि प्राग्वत् ।

दीक्षा यथेच्छम् ।

फिर साधारण मन्त्र से शिवरूप बनाई हुई अग्नि में व्रत की शुद्धि करे: नाम को उस मन्त्र के बीच रखकर "प्रायश्चित्त शोधयामि" कहते हुए स्वाहा-अन्त वाली सौ आहुतियाँ दे। उसके बाद वौषट्-अन्त वाले मन्त्र से पूर्णाहुति। फिर व्रतेश्वर का आवाहन और पूजा करके, उसे शिव की आज्ञा से "तुम इसके लिए अकिंचित्कर हो जाओ" यह सुनाकर, उसे तृप्त करके विसर्जित करके अग्नि को विसर्जित करे। यह लिङ्गोद्धार है। इसके बाद इसका अधिवास आदि पहले जैसा, और दीक्षा इच्छानुसार।

पदपाठ ततः साधारण-मन्त्रेण शिवीकृते अग्नौ — फिर साधारण मन्त्र से शिवरूप बनाई हुई अग्नि में · व्रत-शुद्धिं कुर्यात् — व्रत की शुद्धि करे · तत्-मन्त्र-संपुटं नाम कृत्वा — नाम को उस मन्त्र के बीच रखकर · 'प्रायश्चित्तं शोधयामि' इति — "प्रायश्चित्त शोधयामि" कहते हुए · स्वाहा-अन्तं शतं जुहुयात् — स्वाहा-अन्त वाली सौ आहुतियाँ दे · ततः अपि पूर्णाहुतिः — उसके बाद पूर्णाहुति · वौषट्-अन्तेन — वौषट्-अन्त वाले मन्त्र से · ततः व्रत-ईश्वरम् आहूय पूजयित्वा — फिर व्रतेश्वर का आवाहन और पूजा करके · तस्य शिव-आज्ञया — उसे शिव की आज्ञा से · 'अकिंचित्करः त्वम् अस्य भव' इति — "तुम इसके लिए अकिंचित्कर हो जाओ" · श्रावणां कृत्वा — यह सुनाकर · तं तर्पयित्वा विसृज्य — उसे तृप्त करके विसर्जित करके · अग्निं विसृजेत् — अग्नि को विसर्जित करे · इति लिङ्ग-उद्धारः — यह लिङ्गोद्धार है · ततः अस्य अधिवास-आदि प्राग्वत् — इसके बाद इसका अधिवास आदि पहले जैसा · दीक्षा यथेच्छम् — दीक्षा इच्छानुसार

अधरस्थोऽपि गाढेशशक्तिप्रेरितमानसः ।
संस्कृत्य दीक्ष्यो यश्च प्राङ्निरतोऽसद्गुरावभूत् ॥ ५०

निचले शासन में स्थित भी, जिसका मन ईश्वर की प्रबल शक्ति से प्रेरित है, संस्कार करके दीक्षित किया जाए — और वह भी जो पहले असद्गुरु में निरत था।

पदपाठ अधर-स्थः — निचले शासन में स्थित · अपि — भी · गाढ-ईश-शक्ति-प्रेरित-मानसः — जिसका मन ईश्वर की प्रबल शक्ति से प्रेरित है · संस्कृत्य — संस्कार करके · दीक्ष्यः — दीक्षित किया जाए · यः — जो · च — और · प्राक् — पहले · निरतः — निरत · असत्-गुरौ — असद्गुरु में · अभूत् — था

पसवअणुहं जोत्तमसासणुल
इविणुपणुपरमेसपसाइण ।
पत्थइ सद्गुरुबोहपसाहणु
सो दिक्खइ लिङ्गोद्धारिण ॥ ५०.३

पशु-मार्गों का अनुगामी जो परमेश्वर की कृपा से उत्तम शासन की ओर झुका है और सद्गुरु से मिलने वाला बोध चाहता है — वह लिङ्गोद्धार से दीक्षित होता है।

पदपाठ पसवअणुहं — पशु-मार्गों का अनुगामी · जोत्तमसासणुल — जो उत्तम शासन की ओर · इविणुपणु — झुका है · परमेसपसाइण — परमेश्वर की कृपा से · पत्थइ — और चाहता है · सद्गुरुबोहपसाहणु — सद्गुरु से मिलने वाला बोध · सो दिक्खइ — वह दीक्षित होता है · लिङ्गोद्धारिण — लिङ्गोद्धार से

इति श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तविरचिते श्रीतन्त्रसारे लिङ्गोद्धरणं नाम सप्तदशमाह्निकम् ॥ १७ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित श्रीतन्त्रसार में लिङ्गोद्धरण नामक सत्रहवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

अष्टादशमाह्निकम्

अभिषेकप्रकाशनम्

ग्रन्थ का यह सबसे छोटा आह्निक तय करता है कि साधक या गुरु के रूप में किसका अभिषेक हो: केवल उसका जिसका ज्ञान भली-भाँति अभ्यस्त हो। बाकी सब लक्षण न भी हों, तो भी ज्ञानी ही साधक के कार्य और अनुग्रह करने के कार्य का अधिकारी है; ज्ञान के बिना अभिषिक्त होकर भी कोई अधिकारी नहीं। गुरु का अधिकार एक वास्तविक बन्धन है: जब वह अपना अधिकार उत्तराधिकारी को सौंप देता है तब दीक्षा आदि न करने पर भी उसे दोष नहीं लगता, पर उससे पहले, विद्येश्वर-पद दिलाने वाले अधिकार-बन्धन के कारण, दीक्षा न करना ही उसके लिए बन्धन है। नया अभिषिक्त पहले छह महीने का विद्याव्रत रखता है — प्रतिदिन जप, होम और विशेष पूजा — जब तक वह मन्त्र-देवता से तन्मय न हो जाए; तभी वह दीक्षा का अधिकारी होता है। वह अयोग्य को दीक्षा न दे, योग्य को न छोड़े, ज्ञान देने से पहले दीक्षित की भी परीक्षा ले, और छल से ज्ञान लेने वाले को जानकर उपेक्षा करे। देवपूजा आदि अभिषेक के वैभव के अनुसार हो। समापन-श्लोक सार कहता है: अभिषेक इसलिए किया जाता है कि जो अभ्यस्त ज्ञान से अपने और दूसरों के प्रयोजन का अधिकार धारण करता है, वह साधक और गुरु बन सके।

— अथाभिषेकः —

स्वभ्यस्तज्ञानिनं साधकत्वे गुरुत्वे वा अभिषिञ्चेत्—यतः सर्वलक्षणहीनोऽपि ज्ञानवानेव साधकत्वे अनुग्रहकरणे च अधिकृतः न अन्यः अभिषिक्तोऽपि । ५१.१

जिसका ज्ञान भली-भाँति अभ्यस्त है, उसी का साधक या गुरु के रूप में अभिषेक करे। क्योंकि सब लक्षणों से हीन होकर भी ज्ञानी ही साधक होने और अनुग्रह करने का अधिकारी है; दूसरा कोई नहीं, अभिषिक्त होकर भी।

पदपाठ **सु-अभ्यस्त-ज्ञानिनं** — जिसका ज्ञान भली-भाँति अभ्यस्त है, उसका · **साधकत्वे गुरुत्वे वा अभिषिञ्चेत्** — साधक या गुरु के रूप में अभिषेक करे · **यतः सर्व-लक्षण-हीनः अपि** — क्योंकि सब लक्षणों से हीन होकर भी · **ज्ञानवान् एव** — ज्ञानी ही · **साधकत्वे अनुग्रह-करणे च अधिकृतः** — साधक होने और अनुग्रह करने का अधिकारी है · **न अन्यः अभिषिक्तः अपि** — दूसरा कोई नहीं, अभिषिक्त होकर भी

स्वाधिकारसमर्पणे गुरुः दीक्षादि अकुर्वन् अपि न प्रत्यवैति, पूर्वं तु प्रत्यवायेन अधिकारबन्धेन विद्येशपददायिना बन्ध एव अस्य दीक्षाद्यकरणम्, सोऽभिषिक्तो मन्त्रदेवतातादात्म्यसिद्धये षाण्मासिकं प्रत्यहं जपहोमविशेषपूजाचरणेन विद्याव्रतं कुर्यात्, तदनन्तरं लब्धतन्मयीभावो ५१.२ **दीक्षादौ अधिकृतः, तत्र न अयोग्यान् दीक्षेत, न च योग्यं परिहरेत्, दीक्षितमपि ज्ञानदाने परीक्षेत, छद्मगृहीतज्ञानमपि ज्ञात्वा उपेक्षेत, अत्र च अभिषेकविभवेन देवपूजादिकम् ।**

अपना अधिकार सौंप देने पर गुरु दीक्षा आदि न करता हुआ भी दोषी नहीं होता। पर उससे पहले, विद्येश्वर-पद दिलाने वाले अधिकार-बन्धन के कारण, दोष से दीक्षा आदि न करना ही उसके लिए बन्धन है। वह अभिषिक्त मन्त्र-देवता से तादात्म्य पाने के लिए छह महीने तक प्रतिदिन जप, होम और विशेष पूजा के आचरण से विद्याव्रत करे। उसके बाद तन्मयता पाकर वह दीक्षा आदि का अधिकारी होता है। उसमें अयोग्यों को दीक्षा न दे, योग्य को न छोड़े; ज्ञान देने में दीक्षित की भी परीक्षा ले; और छल से ज्ञान लेने वाले को जानकर उसकी उपेक्षा करे। और यहाँ देवपूजा आदि अभिषेक के वैभव के अनुसार हो।

पदपाठ स्व-अधिकार-समर्पणे — अपना अधिकार सौंप देने पर · गुरुः दीक्षा-आदि अकुर्वन् अपि न प्रत्यवैति — गुरु दीक्षा आदि न करता हुआ भी दोषी नहीं होता · पूर्वं तु — पर उससे पहले · प्रत्यवायेन अधिकार-बन्धेन विद्येश-पद-दायिना — विद्येश्वर-पद दिलाने वाले अधिकार-बन्धन के कारण दोष से · बन्धः एव अस्य दीक्षा-आदि-अकरणम् — दीक्षा आदि न करना ही उसके लिए बन्धन है · सः अभिषिक्तः — वह अभिषिक्त · मन्त्र-देवता-तादात्म्य-सिद्धये — मन्त्र-देवता से तादात्म्य पाने के लिए · षाण्मासिकं प्रत्यहं — छह महीने तक प्रतिदिन · जप-होम-विशेष-पूजा-आचरणेन विद्या-व्रतं कुर्यात् — जप, होम और विशेष पूजा के आचरण से विद्याव्रत करे · तत्-अनन्तरं लब्ध-तन्मयी-भावः — उसके बाद तन्मयता पाकर · दीक्षा-आदौ अधिकृतः — वह दीक्षा आदि का अधिकारी होता है · तत्र न अयोग्यान् दीक्षेत — उसमें अयोग्यों को दीक्षा न दे · न च योग्यं परिहरेत् — और योग्य को न छोड़े · दीक्षितम् अपि ज्ञान-दाने

परीक्षेत — ज्ञान देने में दीक्षित की भी परीक्षा ले · छद्म-गृहीत-ज्ञानम् अपि ज्ञात्वा उपेक्षेत — छल से ज्ञान लेने वाले को जानकर उसकी उपेक्षा करे · अत्र च अभिषेक-विभवेन देव-पूजा-आदिकम् — और यहाँ देवपूजा आदि अभिषेक के वैभव के अनुसार हो

स्वभ्यस्तज्ञानतया
स्वार्थपरार्थाधिकारतां वहतः ।
साधकगुरुतायोग-
स्तत्र हि कार्यस्तदभिषेकः ॥

५१

जो भली-भाँति अभ्यस्त ज्ञान से अपने और दूसरों के प्रयोजन का अधिकार धारण करता है, उसे साधक और गुरु होने की प्राप्ति होती है; उसी के लिए वह अभिषेक करना चाहिए।

पदपाठ सु-अभ्यस्त-ज्ञानतया — भली-भाँति अभ्यस्त ज्ञान से · स्व-अर्थ-पर-अर्थ-अधिकारताम् — अपने और दूसरों के प्रयोजन का अधिकार · वहतः — धारण करने वाले का · साधक-गुरुता-योगः — साधक और गुरु होने की प्राप्ति · तत्र — उसके लिए · हि — ही · कार्यः — करना चाहिए · तत्-अभिषेकः — वह अभिषेक

जो परि उण्ण सत्थसं अणु
तस्स अणुग्गहमेतु पवित्ति ।
कामणाइ जो पुणुसो साह
उतइ उपा अरुहुरइ णहु चित्ति ॥

५१.३

जो शास्त्र-ज्ञान से परिपूर्ण है, उसी की प्रवृत्ति अनुग्रह करने में है। पर जो कामना वाला है, वह साधक है; और कोई उपाय मन में नहीं उठता।

पदपाठ जो परि उण्ण सत्थसं अणु — जो शास्त्र-ज्ञान से परिपूर्ण है · तस्स अणुग्गहमेतु पवित्ति — उसी की प्रवृत्ति अनुग्रह करने में है · कामणाइ जो पुणुसो साह — पर जो कामना वाला है, वह साधक है · उतइ उपा अरुहुरइ णहु चित्ति — और कोई उपाय मन में नहीं उठता

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे अभिषेकप्रकाशनं नाम अष्टादशमाह्निकम्

॥ १८ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में अभिषेकप्रकाशन नामक अठारहवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

एकोनविंशमाह्निकम्

श्राद्धदीक्षाप्रकाशनम्

परमेश्वर की आज्ञा है कि अधर शासन वालों को, उनके गुरुओं तक को, मरने के बाद अन्त्यसंस्कार नामक दीक्षा दी जाए, क्योंकि मृतोद्धार में कहा गया शक्तिपात उन पर भी लागू है; ऊर्ध्व शासन वालों को भी, जिनका समय लुप्त हो गया और जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया। मृतोद्धार की पूरी विधि शरीर पर की जाए और शव को पूर्णाहुति से जलाया जाए; मूढ़ों में विश्वास जमाने के लिए क्रिया, ज्ञान और योग के बल से प्रत्यय सहित अन्त्येष्टि की जाए — शव पर संहार-क्रम से मन्त्र न्यस्त कर, जाल-क्रम से खींचकर, प्राण-संचार के क्रम से हृदय, कण्ठ और ललाट में रोधन, वेधन और घट्टन किए जाएँ, जिससे शव काँपता है। फिर उसे परमशिव में योजित कर जलाया जाए। अन्त्येष्टि से शुद्ध हुओं की और दूसरों की भी श्राद्धदीक्षा तीसरे दिन, चौथे दिन, हर महीने और हर साल हो: होम तक की विधि कर, नैवेद्य एक हाथ में लेकर, मृत की वीर्यरूप शक्ति को, जो भोग्य-रूप है और पशु की भोग्य-शक्ति से एक हो गई है, ध्यान कर भोक्ता परमेश्वर को अर्पित किया जाए; भोग्य-भाव मिट जाने पर वह पति ही हो जाता है। इनमें से एक भी रीति पर्याप्त है, पर भोग चाहने वाले के लिए अधिक क्रिया अधिक फल देती है, और मुमुक्षु के लिए भी यह दोहराव जीवित के प्रतिदिन के अनुष्ठान-अभ्यास जैसा है। तत्त्वज्ञानी के लिए ऐसी कोई विधि उपयोगी नहीं: उसकी मृत्यु उसकी विद्या-परम्परा वालों के लिए पर्व का दिन है, क्योंकि वह उनके संवित्-अंश को पूर्ण करती है, जैसे जीवित रहते ज्ञान-लाभ का दिन था। इन सब विधियों में मूर्तियाग प्रधान है, जिसकी विधि नैमित्तिक-प्रकाशन में कही जाएगी। समापन-श्लोक कहता है: अनुग्रह में तत्पर शिव अपनी वशिता से जिस पर कृपा करते हैं, वही परमेश्वर हो जाता है, और ज्ञानी यह जानकर कि उपाय की सारी कल्पना उन्हीं का ईशन है, सीमित उपाय में भी शंका नहीं करता।

अथ अधरशासनस्थानां गुर्वन्तानामपि मरणसमनन्तरं मृतोद्धारोदितशक्तिपातयोगादेव अन्त्यसंस्काराख्यां दीक्षां कुर्यात्, ऊर्ध्वशासनस्थानामपि लुप्तसमयानाम् अकृतप्रायश्चित्तानाम्—इति परमेश्वराज्ञा । ५२.१

अब अधर शासन वालों के लिए, उनके गुरुओं तक के लिए, मरने के तुरन्त बाद अन्त्यसंस्कार नामक दीक्षा करे, क्योंकि मृतोद्धार में कहा गया शक्तिपात उन पर भी लागू है; ऊर्ध्व शासन वालों के लिए भी, जिनका समय लुप्त हो गया और जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया। ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है।

पदपाठ अथ अधर-शासन-स्थानां गुरु-अन्तानाम् अपि — अब अधर शासन वालों के लिए, उनके गुरुओं तक के लिए · मरण-समनन्तरं — मरने के तुरन्त बाद · मृत-उद्धार-उदित-शक्तिपात-योगात् एव — मृतोद्धार में कहे गए शक्तिपात के योग से ही · अन्त्य-संस्कार-आख्यां दीक्षां कुर्यात् — अन्त्यसंस्कार नामक दीक्षा करे · ऊर्ध्व-शासन-स्थानाम् अपि — ऊर्ध्व शासन वालों के लिए भी · लुप्त-समयानाम् अकृत-प्रायश्चित्तानाम् — जिनका समय लुप्त हो गया और जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया · इति परमेश्वर-आज्ञा — ऐसी परमेश्वर की आज्ञा है

तत्र यो मृतोद्धारे विधिः उक्तः स सर्व एव शरीरे कर्तव्यः, पूर्णाहुत्या शवशरीरदाहः, मूढानां तु प्रतीतिरूढये सप्रत्ययामन्त्येष्टिं क्रियाज्ञानयोगबलात् कुर्यात्, तत्र शवशरीरे संहारक्रमेण मन्त्रान् न्यस्य जालक्रमेण आकृष्य५२.२ रोधनवेधनघट्टनादि कुर्यात्—प्राणसंचारक्रमेण हृदि कण्ठे ललाटे च इत्येवं शवशरीरं कम्पते ।

उसमें मृतोद्धार में जो विधि कही गई, वह पूरी की पूरी शरीर पर की जाए, और पूर्णाहुति से शव का दाह हो। पर मूढ़ों में विश्वास जमाने के लिए क्रिया, ज्ञान और योग के बल से प्रत्यय सहित अन्त्येष्टि करे: शव पर संहार-क्रम से मन्त्र न्यस्त करके, जाल-क्रम से खींचकर, प्राण-संचार के क्रम से हृदय, कण्ठ और ललाट में रोधन, वेधन, घट्टन आदि करे — इस प्रकार शव काँपता है।

पदपाठ तत्र यः मृत-उद्धारे विधिः उक्तः — उसमें मृतोद्धार में जो विधि कही गई · सः सर्वः एव शरीरे कर्तव्यः — वह पूरी की पूरी शरीर पर की जाए · पूर्ण-आहुत्या शव-शरीर-दाहः — पूर्णाहुति से शव का दाह हो · मूढानां तु प्रतीति-रूढये — पर मूढ़ों में विश्वास जमाने के लिए · स-प्रत्ययाम् अन्त्येष्टिं क्रिया-ज्ञान-योग-बलात् कुर्यात् — क्रिया, ज्ञान और योग के बल से प्रत्यय सहित अन्त्येष्टि करे · तत्र शव-शरीरे संहार-क्रमेण मन्त्रान् न्यस्य — उसमें शव पर संहार-क्रम से मन्त्र न्यस्त करके · जाल-क्रमेण आकृष्य — जाल-क्रम से खींचकर · रोधन-वेधन-घट्टन-आदि कुर्यात् — रोधन, वेधन, घट्टन आदि करे · प्राण-संचार-क्रमेण हृदि कण्ठे ललाटे च — प्राण-संचार के क्रम से हृदय, कण्ठ और ललाट में · इति एवं शव-शरीरं कम्पते — इस प्रकार शव काँपता है

ततः परमशिवे योजनिकां कृत्वा तत् दहेत् पूर्णाहुत्या, अन्त्येष्ट्या शुद्धानाम् अन्येषामपि वा श्राद्धदीक्षां त्र्यहं तुर्ये दिने मासि मासि संवत्सरे संवत्सरे कुर्यात् ।

फिर परमशिव में योजन करके उसे पूर्णाहुति से जलाए। अन्त्येष्टि से शुद्ध हुओं की, या दूसरों की भी, श्राद्धदीक्षा तीसरे दिन, चौथे दिन, हर महीने और हर साल करे।

पदपाठ ततः परम-शिवे योजनिकां कृत्वा — फिर परमशिव में योजन करके · तत् दहेत् पूर्ण-आहुत्या — उसे पूर्णाहुति से जलाए · अन्त्येष्ट्या शुद्धानाम् अन्येषाम् अपि वा — अन्त्येष्टि से शुद्ध हुओं की, या दूसरों की भी · श्राद्ध-दीक्षां — श्राद्धदीक्षा · त्र्यहं तुर्ये दिने मासि मासि संवत्सरे संवत्सरे कुर्यात् — तीसरे दिन, चौथे दिन, हर महीने और हर साल करे

तत्र होमान्तं विधिं कृत्वा नैवेद्यमेकहस्ते कृत्वा तदीयां वीर्यरूपां शक्तिं भोग्याकारां पशुगतभोग्यशक्तितादात्म्यप्रतिपन्नां ध्यात्वा परमेश्वरे भोक्तरि अर्पयेत्, इत्येवं भोग्यभावे निवृत्ते पतिरेव भवति, अन्त्येष्टिमृतोद्धरणश्राद्धदीक्षाणाम् अन्यतमेनापि यद्यपि कृतार्थता तथापि बुभुक्षोः क्रियाभूयस्त्वं फलभूयस्त्वाय इति सर्वमाचरेत् । ५२.४

उसमें होम तक की विधि करके, नैवेद्य एक हाथ में लेकर, मृत की वीर्यरूप शक्ति को — जो भोग्य-रूप है और पशु में स्थित भोग्य-शक्ति से एक हो गई है — ध्यान करके भोक्ता परमेश्वर को अर्पित करे। इस प्रकार भोग्य-भाव मिट जाने पर वह पति ही हो जाता है। यद्यपि अन्त्येष्टि, मृतोद्धार और श्राद्धदीक्षा में से किसी एक से भी कृतार्थता हो जाती है, फिर भी भोग चाहने वाले के लिए अधिक क्रिया अधिक फल के लिए है; इसलिए सब करे।

पदपाठ तत्र होम-अन्तं विधिं कृत्वा — उसमें होम तक की विधि करके · नैवेद्यम् एक-हस्ते कृत्वा — नैवेद्य एक हाथ में लेकर · तदीयां वीर्य-रूपां शक्तिं भोग्य-आकाराम् — मृत की वीर्यरूप शक्ति को, जो भोग्य-रूप है · पशु-गत-भोग्य-शक्ति-तादात्म्य-प्रतिपन्नां ध्यात्वा — पशु में स्थित भोग्य-शक्ति से एक हुई ध्यान करके · परमेश्वरे भोक्तरि अर्पयेत् — भोक्ता परमेश्वर को अर्पित करे · इति एवं भोग्य-भावे निवृत्ते — इस प्रकार भोग्य-भाव मिट जाने पर · पतिः एव भवति — वह पति ही हो जाता है · अन्त्येष्टि-मृत-उद्धरण-श्राद्ध-दीक्षाणाम् अन्यतमेन अपि — अन्त्येष्टि, मृतोद्धार और श्राद्धदीक्षा में से किसी एक से भी · यद्यपि कृत-अर्थता — यद्यपि कृतार्थता हो जाती है · तथापि बुभुक्षोः क्रिया-भूयस्त्वं फल-भूयस्त्वाय — फिर भी भोग चाहने वाले के लिए अधिक क्रिया अधिक फल के लिए है · इति सर्वम् आचरेत् — इसलिए सब करे

मुमुक्षोरपि तन्मयीभावसिद्धये अयम् जीवतः प्रत्यहम् अनुष्ठानाभ्यासवत् । तत्त्वज्ञानिनस्तु न कोऽप्ययम् अन्त्येष्ट्यादिश्राद्धान्तो विधिः उपयोगी—तन्मरणं तद्विद्यासंतानिनां पर्वदिनं संविदंशपूरणात्, तावतः संतानस्य एकसंविन्मात्रपरमार्थत्वात् जीवतो ज्ञानलाभसंतानदिवसवत् । सर्वत्र च अत्र श्राद्धादिविधौ मूर्तियागः प्रधानम् इति श्रीसिद्धामतम्, तद्विधिश्च वक्ष्यते नैमित्तिकप्रकाशने । ५२.५

मुमुक्षु के लिए भी यह तन्मयता सिद्ध करने के लिए है, जैसे जीवित का प्रतिदिन का अनुष्ठान-अभ्यास। पर तत्त्वज्ञानी के लिए अन्त्येष्टि से श्राद्ध तक की यह कोई भी विधि उपयोगी नहीं। उसकी मृत्यु उसकी विद्या-परम्परा वालों के लिए पर्व का दिन है, क्योंकि वह उनके संवित्-अंश को पूर्ण करती है — क्योंकि वह सारी परम्परा वास्तव में एक ही संवित् है — जैसे जीवित रहते परम्परा के ज्ञान-लाभ का दिन था। और यहाँ श्राद्ध आदि की विधि में सर्वत्र मूर्तियाग प्रधान है — यह श्रीसिद्धा का मत है, और उसकी विधि नैमित्तिक-प्रकाशन में कही जाएगी।

पदपाठ मुमुक्षोः अपि तन्मयी-भाव-सिद्धये अयम् — मुमुक्षु के लिए भी यह तन्मयता सिद्ध करने के लिए है · जीवतः प्रत्यहम् अनुष्ठान-अभ्यास-वत् — जैसे जीवित का प्रतिदिन का अनुष्ठान-अभ्यास · तत्त्व-ज्ञानिनः तु — पर तत्त्वज्ञानी के लिए · न कः अपि अयम् अन्त्येष्टि-आदि-श्राद्ध-अन्तः विधिः उपयोगी — अन्त्येष्टि से श्राद्ध तक की यह कोई भी विधि उपयोगी नहीं · तत्-मरणं तत्-विद्या-संतानिनां पर्व-दिनं — उसकी मृत्यु उसकी विद्या-परम्परा वालों के लिए पर्व का दिन है · संवित्-अंश-पूरणात् — क्योंकि वह उनके संवित्-अंश को पूर्ण करती है · तावतः संतानस्य एक-संवित्-मात्र-परमार्थत्वात् — क्योंकि वह सारी परम्परा वास्तव में एक ही संवित् है · जीवतः ज्ञान-लाभ-संतान-दिवस-वत् — जैसे जीवित रहते परम्परा के ज्ञान-लाभ का दिन था · सर्वत्र च अत्र श्राद्ध-आदि-विधौ — और यहाँ श्राद्ध आदि की विधि में सर्वत्र · मूर्ति-यागः प्रधानम् इति श्री-सिद्धा-मतम् — मूर्तियाग प्रधान है — यह श्रीसिद्धा का मत है · तत्-विधिः च वक्ष्यते नैमित्तिक-प्रकाशने — और उसकी विधि नैमित्तिक-प्रकाशन में कही जाएगी

अनुग्रहपरः शिवो वशितयानुगृह्णाति यं
स एव परमेश्वरीभवति नाम किं वाद्भुतम् ।
उपायपरिकल्पना ननु तदीशनामात्रकं
विदन्निति न शङ्कते परिमितेऽप्युपाये बुधः ॥ ५२

अनुग्रह में तत्पर शिव अपनी वशिता से जिस पर कृपा करते हैं, वही परमेश्वर हो जाता है — इसमें भला क्या आश्चर्य? उपाय की कल्पना निश्चय ही केवल उन्हीं का ईशन है; ऐसा जानता हुआ ज्ञानी सीमित उपाय में भी शंका नहीं करता।

पदपाठ अनुग्रह-परः — अनुग्रह में तत्पर · शिवः — शिव · वशितया — अपनी वशिता से · अनुगृह्णाति — कृपा करते हैं · यम् — जिस पर · सः — वह · एव — ही · परमेश्वरी-भवति — परमेश्वर हो जाता है · नाम — सचमुच · किम् — क्या · वा — भला · अद्भुतम् — आश्चर्य · उपाय-परिकल्पना — उपाय की कल्पना · ननु — निश्चय ही · तत्-ईशना-मात्रकम् — केवल उन्हीं का ईशन है · विदन् — जानता हुआ · इति — ऐसा · न — नहीं · शङ्कते — शंका करता · परिमिते — सीमित · अपि — भी · उपाये — उपाय में · बुधः — ज्ञानी

एहु सरीरु सअलु अह भवसरु
इच्छामित्तणजेण विचित्ति उ ।
सोधिअ सोक्खदेयि परमेसरु
इअजानन्त उरूढिपवित्ति उ ॥ ५२.६

यह सारा शरीर, या संसार-सागर, इच्छा मात्र से ही तरह-तरह का बना है; परमेश्वर उसे शुद्ध करके सुख देते हैं। यह जानकर मनुष्य दृढ़ होकर विधि में प्रवृत्त होता है।

पदपाठ एहु सरीरु सअलु अह भवसरु — यह सारा शरीर, या संसार-सागर · इच्छामित्तणजेण विचित्ति उ — इच्छा मात्र से ही तरह-तरह का बना है · सोधिअ सोक्खदेयि परमेसरु — परमेश्वर उसे शुद्ध करके सुख देते हैं · इअजानन्त उरूढिपवित्ति उ — यह जानकर दृढ़ होकर विधि में प्रवृत्त होता है

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे श्राद्धदीक्षाप्रकाशनं नाम एकोनविंशमाह्निकम् ॥ १९ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में श्राद्धदीक्षाप्रकाशन नामक उन्नीसवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

विंशमाह्निकम्

शेषवर्तनप्रकाशनम्

दीक्षा हो जाने पर — ज्ञान के योग्य लोगों के लिए संस्कार पूरे करने वाली दीक्षा, या उनके लिए जो उसमें असमर्थ हैं, सबीज मोक्षदीक्षा — गुरु शिष्य को बताता है कि उसे जीवन भर कैसे रहना है। यह शेषवर्तन नित्य, नैमित्तिक और काम्य है; काम्य साधक का ही है, यहाँ उसका निश्चय नहीं किया गया। नित्य है सन्ध्याओं में उपासना, पर्व के दिन और पवित्रक; नैमित्तिक वह है जिसमें विशेष पूजा का कारण हो — ज्ञान या शास्त्र की प्राप्ति, गुरु या उनके वर्ग का आना, उनके जन्म, दीक्षा और प्रयाण के दिन, लौकिक उत्सव, शास्त्र की व्याख्या, देवता का दर्शन, मेलक, स्वप्न में आज्ञा, समय-भंग से छुटकारा। नित्य अभ्यास का सार है मुख से मुख दिया गया प्रधान मन्त्र और उसमें तन्मय होने का अभ्यास; इसके लिए शिष्य प्रतिदिन स्थण्डिल या लिङ्ग पर परमेश्वर की पूजा करता है। निर्मल दर्पण जैसे स्थण्डिल में वह अपने ही रूप को देवताचक्र के रूप में प्रतिबिम्बित देखकर पुष्प, आसव, नैवेद्य, गीत और नृत्य से उसकी पूजा करता है — जैसे दर्पण में लगातार अपना मुख देखने वाला जल्दी ही उसका रूप जान लेता है। दो श्लोक कहते हैं कि रहस्य के ज्ञाता परम अमृत के आसव से भगवान् की पूजा करते हैं और देह-रूपी देवालय में देवी के साथ अपने स्वभाव के फूल उन्हें अर्पित करते हैं। लिङ्ग को रहस्य-मन्त्रों से प्रतिष्ठित नहीं करना चाहिए; उसकी जगह गुरु की देह, अपनी देह, शक्ति की देह, पुस्तक, वीरपात्र, अक्षसूत्र और अन्य प्रिय आधारों की पूजा होती है। फिर पर्वविधि: छह तरह के पर्व, हर महीने के विशेष दिन उनके ग्रहों और नक्षत्रों सहित, और अनुयाग या चक्रयाग, जिसमें गुरु, उनका वर्ग, तत्त्ववेत्ता और चक्र की स्त्रियाँ पूजी और पात्र से तृप्त की जाती हैं — यह मूर्तियाग सबसे प्रधान है, जिसे वृद्ध, भोगी और स्त्रियाँ अकेले भी कर सकते हैं। फिर पवित्रक, जो आषाढ़ शुक्ल से कुलपूर्णिमा तक दिया जाता है और जिसके बिना सब निष्फल है; शास्त्र की व्याख्या की विधि; समय-भंग से छुटकारा, मालिनी का जप शंका मिटने तक; और हर याग के अगले दिन गुरु की पूजा। अन्तिम श्लोक: जो बिना कपट के नित्य और नैमित्तिक कर्म करता है, वह ज्ञान और योग के बिना भी केवल चर्या से मुक्त हो जाता है।

— अथ शेषवर्तनार्थं प्रकरणान्तरम् —

तत्र या दीक्षा संस्कारसिद्ध्यै ज्ञानयोग्यान् प्रति, या च तदशक्तान् प्रति मोक्षदीक्षा सबीजा, तस्यां कृतायाम् आजीवं शेषवर्तनं गुरुः उपदिशेत् । तत्र नित्यं, नैमित्तिकं, काम्यम् इति त्रिविधं शेषवर्तनम्, अन्त्यं च साधकस्यैव, तत् न इह निश्चेतव्यम् । ५३.१

ज्ञान के योग्य लोगों के लिए संस्कार पूरे करने वाली जो दीक्षा है, और उसमें असमर्थ लोगों के लिए जो सबीज मोक्षदीक्षा है — उसके हो जाने पर गुरु को जीवन भर का शेषवर्तन बताना चाहिए। वह शेषवर्तन तीन तरह का है: नित्य, नैमित्तिक और काम्य। अन्तिम साधक का ही है, उसका यहाँ निश्चय नहीं करना है।

पदपाठ तत्र या दीक्षा संस्कार-सिद्ध्यै — वहाँ जो दीक्षा संस्कार पूरे करने के लिए है · ज्ञान-योग्यान् प्रति — ज्ञान के योग्य लोगों के लिए · या च तत्-अशक्तान् प्रति — और जो उसमें असमर्थ लोगों के लिए है · मोक्ष-दीक्षा सबीजा — सबीज मोक्षदीक्षा · तस्यां कृतायाम् — उसके हो जाने पर · आजीवं शेष-वर्तनं — जीवन भर का शेषवर्तन · गुरुः उपदिशेत् — गुरु को बताना चाहिए · तत्र नित्यं नैमित्तिकं काम्यम् इति — उसमें नित्य, नैमित्तिक और काम्य · त्रिविधं शेष-वर्तनम् — शेषवर्तन तीन तरह का है · अन्त्यं च साधकस्य एव — और अन्तिम साधक का ही है · तत् न इह निश्चेतव्यम् — उसका यहाँ निश्चय नहीं करना है

तत्र नियतभवं नित्यं, तन्मयीभाव एव नैमित्तिकं, तदुपयोगि सन्ध्योपासनं प्रत्यहमनुष्ठानं, पर्वदिनं, पवित्रकम् इत्यादि ।

तदपि नित्यं स्वकालनैयत्यात्—इति केचित् । ५३.२

नैमित्तिकं तु तच्छासनस्थानामपि अनियतम्, तद्यथा—गुरुतद्वर्गागमनं तत्पर्वदिनं ज्ञानलाभदिनम् इत्यादिकम्—इति केचित् ।

इनमें जो नियत समय पर होता है वह नित्य है; मन्त्र में तन्मय होना ही नैमित्तिक है, और उसके काम आने वाली सन्ध्या-उपासना, प्रतिदिन का अनुष्ठान, पर्व का दिन, पवित्रक आदि हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह भी नित्य है, क्योंकि इसका समय नियत है। पर नैमित्तिक, वे कहते हैं, इस शासन में रहने वालों के लिए भी नियत नहीं है — जैसे गुरु या उनके वर्ग का आना, उनका पर्व-दिन, ज्ञान-प्राप्ति का दिन आदि।

पदपाठ तत्र नियत-भवं नित्यं — उसमें जो नियत समय पर होता है वह नित्य है · तन्मयी-भावः एव नैमित्तिकं — उसमें तन्मय होना ही नैमित्तिक है · तत्-उपयोगि सन्ध्या-उपासनं — उसके काम आने वाली सन्ध्या-उपासना · प्रत्यहम् अनुष्ठानं — प्रतिदिन का अनुष्ठान · पर्व-दिनं पवित्रकम् इति आदि — पर्व का दिन, पवित्रक आदि · तत् अपि नित्यं — वह भी नित्य है · स्व-काल-नैयत्यात् इति केचित् — क्योंकि उसका समय नियत है — ऐसा कुछ लोग कहते हैं · नैमित्तिकं तु — पर नैमित्तिक · तत्-शासन-स्थानाम् अपि अनियतम् — उस शासन में रहने वालों के लिए भी नियत नहीं है · तत् यथा गुरु-तत्-वर्ग-आगमनं — जैसे गुरु या उनके वर्ग का आना · तत्-पर्व-दिनं ज्ञान-लाभ-दिनम् इति आदिकम् — उनका पर्व-दिन, ज्ञान-प्राप्ति का दिन आदि · इति केचित् — ऐसा कुछ लोग कहते हैं

तत्र नियतपूजा, सन्ध्योपासा, गुरुपूजा, पर्वपूजा, पवित्रकम् इति अवश्यंभावि ।

नैमित्तिकम्—ज्ञानलाभः, शास्त्रलाभो, गुरुतद्वर्गगृहागमनं, तदीयजन्मसंस्कारप्रायणदिनानि, लौकिकोत्सवः, शास्त्रव्याख्या आदिमध्यान्ता, देवतादर्शनं, मेलकः, स्वप्नाज्ञा, समयनिष्कृतिलाभः—इत्येतत् नैमित्तिकं विशेषार्चनकारणम् । ५३.३

इनमें नियत पूजा, सन्ध्या की उपासना, गुरु-पूजा, पर्व-पूजा और पवित्रक अवश्य करने योग्य हैं। नैमित्तिक यह है: ज्ञान की प्राप्ति, शास्त्र की प्राप्ति, गुरु या उनके वर्ग का घर आना, उनके जन्म, दीक्षा और प्रयाण के दिन, लौकिक उत्सव, शास्त्र की व्याख्या उसके आरम्भ, मध्य और अन्त में, देवता का दर्शन, मेलक, स्वप्न में आज्ञा, समय-भंग से छुटकारा। यह नैमित्तिक विशेष पूजा का कारण है।

पदपाठ तत्र नियत-पूजा सन्ध्या-उपासा — उसमें नियत पूजा, सन्ध्या की उपासना · गुरु-पूजा पर्व-पूजा पवित्रकम् इति — गुरु-पूजा, पर्व-पूजा, पवित्रक · अवश्यंभावि — अवश्य करने योग्य हैं · नैमित्तिकम् — नैमित्तिक · ज्ञान-लाभः शास्त्र-लाभः — ज्ञान की प्राप्ति, शास्त्र की प्राप्ति · गुरु-तत्-वर्ग-गृह-आगमनं — गुरु या उनके वर्ग का घर आना · तदीय-जन्म-संस्कार-प्रायण-दिनानि — उनके जन्म, दीक्षा और प्रयाण के दिन · लौकिक-उत्सवः — लौकिक उत्सव · शास्त्र-व्याख्या आदि-मध्य-अन्ता — शास्त्र की व्याख्या, उसके आरम्भ, मध्य और अन्त में · देवता-दर्शनं मेलकः स्वप्न-आज्ञा — देवता का दर्शन, मेलक, स्वप्न में आज्ञा · समय-निष्कृति-लाभः — समय-भंग से छुटकारा · इति एतत् नैमित्तिकं — यह नैमित्तिक है · विशेष-अर्चन-कारणम् — विशेष पूजा का कारण

तत्र कृतदीक्षाकस्य शिष्यस्य प्रधानं मन्त्रं सवीर्यकं संवित्तिस्फुरणसारम् अलिखितं वक्त्रागमेनैव अर्पयेत्, ततः तन्मयीभावसिद्ध्यर्थं स शिष्यः संध्यासु तन्मयीभावाभ्यासं कुर्यात्, तद्द्वारेण सर्वकालं तथाविधसंस्कारलाभसिद्ध्यर्थं प्रत्यहं च परमेश्वरं च स्थण्डिले वा लिङ्गे वा अभ्यर्चयेत् । ५३.४

फिर गुरु दीक्षित शिष्य को प्रधान मन्त्र उसके वीर्य सहित दे, जिसका सार संवित् की स्फुरणा है — बिना लिखे, मुख से मुख ही। इसके बाद, उसमें तन्मय होने की सिद्धि के लिए, वह शिष्य सन्ध्याओं में तन्मय होने का अभ्यास करे; और उसके द्वारा सब समय उस तरह का संस्कार पाने के लिए प्रतिदिन परमेश्वर की स्थण्डिल पर या लिङ्ग पर पूजा करे।

पदपाठ तत्र कृत-दीक्षाकस्य शिष्यस्य — उसमें दीक्षित शिष्य को · प्रधानं मन्त्रं स-वीर्यकं — प्रधान मन्त्र, उसके वीर्य सहित · संवित्ति-स्फुरण-सारम् — जिसका सार संवित् की स्फुरणा है · अलिखितं वक्त्र-आगमेन एव अर्पयेत् — बिना लिखे, मुख से मुख ही देना चाहिए · ततः तन्मयी-भाव-सिद्धि-अर्थं — फिर उसमें तन्मय होने की सिद्धि के लिए · सः शिष्यः संध्यासु — वह शिष्य सन्ध्याओं में · तन्मयी-भाव-अभ्यासं कुर्यात् — तन्मय होने का अभ्यास करे · तत्-द्वारेण सर्व-कालं — और उसके द्वारा सब समय · तथाविध-संस्कार-लाभ-सिद्धि-अर्थं — उस तरह का संस्कार पाने के लिए · प्रत्यहं च परमेश्वरं च — और प्रतिदिन परमेश्वर की · स्थण्डिले वा लिङ्गे वा अभ्यर्चयेत् — स्थण्डिल पर या लिङ्ग पर पूजा करे

तत्र हृद्ये स्थण्डिले विमलमकुरवद्ध्याते स्वमेव रूपं याज्यदेवताचक्राभिन्नं मूर्तिबिम्बितमिव दृष्ट्वा हृद्यपुष्पगन्धासवतर्पणनैवेद्यधूपदीपोपहारस्तुतिगीतवाद्यनृत्तादिना पूजयेत्, जपेत्, स्तुवीत—तन्मयीभावमशङ्कितं लब्धुम् । ५३.५

आदर्शे हि स्वमुखम् अविरतम् अवलोकयतः तत्स्वरूपनिश्चितिः अचिरेणैव भवेत्, न चात्र कश्चित् क्रमः प्रधानम्—ऋते तन्मयीभावात् ।

वहाँ, निर्मल दर्पण की तरह ध्यान किए गए मनोहर स्थण्डिल पर, वह अपने ही रूप को, जो पूज्य देवताचक्र से अभिन्न है, मूर्ति में प्रतिबिम्बित-सा देखकर, मनोहर पुष्प, गन्ध, आसव, तर्पण, नैवेद्य, धूप, दीप, उपहार, स्तुति, गीत, वाद्य, नृत्य आदि से उसकी पूजा करे, जप करे, स्तुति करे — निःशंक तन्मयता पाने के लिए। क्योंकि दर्पण में लगातार अपना मुख देखने वाले को उसके स्वरूप का निश्चय जल्दी ही हो जाता है। और यहाँ कोई क्रम प्रधान नहीं है — तन्मय होने के सिवा।

पदपाठ तत्र हृद्ये स्थण्डिले — उसमें, मनोहर स्थण्डिल पर · विमल-मकुरवत् ध्याते — जिसका निर्मल दर्पण की तरह ध्यान किया गया हो · स्वम् एव रूपं — अपने ही रूप को · याज्य-देवता-चक्र-अभिन्नं — पूज्य देवताचक्र से अभिन्न · मूर्ति-बिम्बितम् इव दृष्ट्वा — मूर्ति में प्रतिबिम्बित-सा देखकर · हृद्य-पुष्प-गन्ध-आसव-तर्पण-नैवेद्य-धूप-दीप-उपहार-स्तुति-गीत-वाद्य-नृत्त-आदिना — मनोहर पुष्प, गन्ध, आसव, तर्पण, नैवेद्य, धूप, दीप, उपहार, स्तुति, गीत, वाद्य, नृत्य आदि से · पूजयेत् जपेत् स्तुवीत — पूजा करे, जप करे, स्तुति करे · तन्मयी-भावम् अशङ्कितं लब्धुम् — निःशंक तन्मयता पाने के लिए · आदर्शे हि स्व-मुखम् — क्योंकि दर्पण में अपना मुख · अविरतम् अवलोकयतः — लगातार देखने वाले को · तत्-स्वरूप-निश्चितिः अचिरेण एव भवेत् — उसके स्वरूप का निश्चय जल्दी ही हो जाता है · न च अत्र कश्चित् क्रमः प्रधानम् — और यहाँ कोई क्रम प्रधान नहीं है · ऋते तन्मयी-भावात् — तन्मय होने के सिवा

परमन्त्रतन्मयीभावाविष्टस्य निवृत्तपशुवासनाकलङ्कस्य
भक्तिरसानुवेधविद्रुतसमस्तपाशजालस्य यत् अधिवसति हृदयं तदेव ५३.६
परममुपादेयम्, इति अस्मद्गुरवः ।

जो परम मन्त्र की तन्मयता से आविष्ट है, जिसका पशु-वासना का कलंक मिट गया है, भक्ति के रस से बिंधकर जिसका सारा पाश-जाल पिघल गया है — उसका हृदय जिस पर टिकता है, वही सबसे ऊँचा ग्राह्य है। ऐसा हमारे गुरु कहते हैं।

पदपाठ पर-मन्त्र-तन्मयी-भाव-आविष्टस्य — जो परम मन्त्र की तन्मयता से आविष्ट है, उसका · निवृत्त-पशु-वासना-कलङ्कस्य — जिसका पशु-वासना का कलंक मिट गया है · भक्ति-रस-अनुवेध-विद्रुत-समस्त-पाश-जालस्य — भक्ति के रस से बिंधकर जिसका सारा पाश-जाल पिघल गया है · यत् अधिवसति हृदयं — जिस पर उसका हृदय टिकता है · तत् एव परमम् उपादेयम् — वही सबसे ऊँचा ग्राह्य है · इति अस्मत्-गुरवः — ऐसा हमारे गुरु कहते हैं

अधिशय्य पारमार्थिकः-
भावप्रसरं प्रकाशमुल्लसति या ।
परमामृतदृक्त्वं ५३
तयार्चयन्ते रहस्यविदः ॥

परम अमृत की वह दृष्टि, जो पारमार्थिक भावों के प्रसार के ऊपर उठकर प्रकाश-रूप में उल्लसित होती है — उसी से रहस्य के ज्ञाता पूजा करते हैं।

पदपाठ अधिशय्य — ऊपर उठकर · पारमार्थिक-भाव-प्रसरम् — पारमार्थिक भावों के प्रसार को · प्रकाशम् — प्रकाश-रूप में · उल्लसति — उल्लसित होती है · या — जो · परम-अमृत-दृक्त्वम् — परम अमृत की दृष्टि · तया — उससे · अर्चयन्ते — पूजा करते हैं · रहस्य-विदः — रहस्य के ज्ञाता

कृत्वाधारधरां चमत्कृतिरसप्रोक्षाक्षणक्षालिता-
मात्तैर्मानसतः स्वभावकुसुमैः स्वामोदसंदोहिभिः ।
आनन्दामृतनिर्भरस्वहृदयानर्घार्घपात्रक्रमात् ५४
त्वां देव्या सह देहदेवसदने देवार्चयेऽहर्निशम् ॥

हे देव, चमत्कार के रस के छिड़काव से क्षण भर में धुली हुई आधार-भूमि बनाकर, मन से लिए हुए अपने स्वभाव के फूलों से, जो अपनी सुगन्ध बरसाते हैं, और आनन्द के अमृत से भरे अपने हृदय के अमूल्य अर्घ्य-पात्र से — मैं देह-रूपी देवालय में देवी के साथ तुम्हें दिन-रात पूजता हूँ।

पदपाठ कृत्वा — बनाकर · आधार-धराम् — आधार-भूमि को · चमत्कृति-रस-प्रोक्षा-क्षण-क्षालिताम् — चमत्कार के रस के छिड़काव से क्षण भर में धुली हुई · आत्तैः — लिए हुए · मानसतः — मन से · स्वभाव-कुसुमैः — अपने स्वभाव के फूलों से · स्व-आमोद-संदोहिभिः — जो अपनी सुगन्ध बरसाते हैं · आनन्द-अमृत-निर्भर-स्व-हृदय-अनर्घ-अर्घ-पात्र-क्रमात् — आनन्द के अमृत से भरे अपने हृदय के अमूल्य अर्घ्य-पात्र से · त्वाम् — तुम्हें · देव्या सह — देवी के साथ · देह-देव-सदने — देह-रूपी देवालय में · देव — हे देव · अर्चये — मैं पूजता हूँ · अहर्निशम् — दिन-रात

इति श्लोकद्वयोक्तमर्थम् अन्तर्भावयन् देवताचक्रं भावयेत् ।
ततो मुद्राप्रदर्शनं, जपः, तन्निवेदनम् ।
बोध्यैकात्म्येन विसर्जनम् ।
मुख्यं नैवेद्यं स्वयम् अश्नीयात्, सर्वं वा जले क्षिपेत्, जलजा हि प्राणिनः
पूर्वदीक्षिताः चरुभोजनद्वारेण इति आगमविदः । ५५.१
मार्जारमूषकश्वादिभक्षणे तु शङ्का जनिता निरयाय—इति ज्ञानी अपि
लोकानुग्रहेच्छया न तादृक् कुर्यात्, लोकं वा परित्यज्य आसीत, इति
स्थण्डिलयागः ।

इन दो श्लोकों में कहे अर्थ को भीतर भावित करते हुए वह देवताचक्र की भावना करे। फिर मुद्रा दिखाना, जप और उसका निवेदन। विसर्जन बोध्य के साथ एकात्मता से होता है। मुख्य नैवेद्य वह स्वयं खाए, या सब जल में डाल दे — क्योंकि जल के प्राणी चरु खाने के द्वारा पहले से दीक्षित हैं, ऐसा आगम के ज्ञाता कहते हैं। पर बिल्ली, चूहा, कुत्ता आदि के खाने पर जो शंका पैदा होती है वह नरक ले जाती है; इसलिए ज्ञानी भी लोगों पर अनुग्रह की इच्छा से ऐसा न करे — या लोगों को छोड़कर रहे। यह स्थण्डिल-याग है।

पदपाठ इति श्लोक-द्वय-उक्तम् अर्थम् — इन दो श्लोकों में कहे अर्थ को · अन्तः भावयन् — भीतर भावित करते हुए · देवता-चक्रं भावयेत् — देवताचक्र की भावना करे · ततः मुद्रा-प्रदर्शनं जपः तत्-निवेदनम् — फिर मुद्रा दिखाना, जप और उसका निवेदन · बोध्य-ऐकात्म्येन विसर्जनम् — बोध्य के साथ एकात्मता से विसर्जन · मुख्यं नैवेद्यं स्वयम् अश्नीयात् — मुख्य नैवेद्य स्वयं खाए · सर्वं वा जले क्षिपेत् — या सब जल में डाल दे · जलजाः हि प्राणिनः पूर्व-दीक्षिताः — क्योंकि जल के प्राणी पहले से दीक्षित हैं · चरु-भोजन-द्वारेण इति आगम-विदः — चरु खाने के द्वारा — ऐसा आगम के ज्ञाता कहते हैं · मार्जार-मूषक-श्व-आदि-भक्षणे तु — पर बिल्ली, चूहा, कुत्ता आदि के खाने पर · शङ्का जनिता निरयाय — जो शंका पैदा होती है वह नरक ले जाती है · इति ज्ञानी अपि लोक-अनुग्रह-इच्छया — इसलिए ज्ञानी भी लोगों पर अनुग्रह की इच्छा से · न तादृक् कुर्यात् — ऐसा न करे · लोकं वा परित्यज्य आसीत — या लोगों को छोड़कर रहे · इति स्थण्डिल-यागः — यह स्थण्डिल-याग है

अथ लिङ्गे, तत्र न रहस्यमन्त्रैः लिङ्गं प्रतिष्ठापयेत्, विशेषात् व्यक्तम्—इति पूर्वप्रतिष्ठितेषु आवाहनविसर्जनक्रमेण पूजां कुर्यात् आधारतया । तत्र गुरुदेहं स्वदेहं शक्तिदेहं रहस्यशास्त्रपुस्तकं वीरपात्रं अक्षसूत्रं प्राहरणं बाणीयं मौक्तिकं सौवर्णं पुष्पगन्धद्रव्यादिह्रद्यवस्तुकृतं मकुरं वा लिङ्गम् अर्चयेत् । ५५.२

तत्र च आधारबलादेव अधिकाधिकमन्त्रसिद्धिः भवति इति पूर्वं पूर्वं प्रधानम्, आधारगुणानुविधायित्वात् च मन्त्राणां तत्र तत्र साध्ये तत्तत्प्रधानम् इति शास्त्रगुरवः ।

सर्वत्र परमेश्वराभेदाभिमान एव परमः संस्कारः ।

अब लिङ्ग पर। रहस्य-मन्त्रों से लिङ्ग की प्रतिष्ठा न करे, विशेषकर व्यक्त लिङ्ग की; इसलिए पहले से प्रतिष्ठित लिङ्गों पर आवाहन और विसर्जन के क्रम से, उन्हें आधार मानकर, पूजा करे। यहाँ जिस लिङ्ग की पूजा करनी है वह है गुरु की देह, अपनी देह, शक्ति की देह, रहस्य-शास्त्र की पुस्तक, वीरपात्र, अक्षसूत्र, शस्त्र, बाणलिङ्ग, मोती का, सोने का, पुष्प और गन्ध-द्रव्य आदि प्रिय वस्तुओं से बना, या दर्पण। और वहाँ आधार के बल से ही मन्त्र की सिद्धि अधिकाधिक होती है, इसलिए पहले-पहले वाला प्रधान है; और क्योंकि मन्त्र आधार के गुणों के अनुसार चलते हैं, जिस साध्य के लिए जो उचित हो वही प्रधान है — ऐसा शास्त्र के गुरु कहते हैं। सब जगह परमेश्वर से अभेद का अभिमान ही परम संस्कार है।

पदपाठ अथ लिङ्गे — अब लिङ्ग पर · तत्र न रहस्य-मन्त्रैः लिङ्गं प्रतिष्ठापयेत् — वहाँ रहस्य-मन्त्रों से लिङ्ग की प्रतिष्ठा न करे · विशेषात् व्यक्तम् — विशेषकर व्यक्त लिङ्ग की · इति पूर्व-प्रतिष्ठितेषु — इसलिए पहले से प्रतिष्ठित लिङ्गों पर · आवाहन-विसर्जन-क्रमेण — आवाहन और विसर्जन के क्रम से · पूजां कुर्यात् आधारतया — उन्हें आधार मानकर पूजा करे · तत्र गुरु-देहं स्व-देहं शक्ति-देहं — वहाँ गुरु की देह, अपनी

देह, शक्ति की देह · **रहस्य-शास्त्र-पुस्तकं वीर-पात्रं अक्ष-सूत्रं** — रहस्य-शास्त्र की पुस्तक, वीरपात्र, अक्षसूत्र · **प्राहरणं बाणीयं मौक्तिकं सौवर्णं** — शस्त्र, बाणलिङ्ग, मोती का, सोने का · **पुष्प-गन्ध-द्रव्य-आदि-हृद्य-वस्तु-कृतं** — पुष्प, गन्ध-द्रव्य आदि प्रिय वस्तुओं से बना · **मकुरं वा लिङ्गम् अर्चयेत्** — या दर्पण — ऐसे लिङ्ग की पूजा करे · **तत्र च आधार-बलात् एव** — और वहाँ आधार के बल से ही · **अधिक-अधिक-मन्त्र-सिद्धिः भवति इति** — मन्त्र की सिद्धि अधिकाधिक होती है · **पूर्वं पूर्वं प्रधानम्** — पहले-पहले वाला प्रधान है · **आधार-गुण-अनुविधायित्वात् च मन्त्राणां** — और क्योंकि मन्त्र आधार के गुणों के अनुसार चलते हैं · **तत्र तत्र साध्ये तत्-तत्-प्रधानम्** — जिस साध्य के लिए जो उचित हो वही प्रधान है · **इति शास्त्र-गुरवः** — ऐसा शास्त्र के गुरु कहते हैं · **सर्वत्र परमेश्वर-अभेद-अभिमानः एव** — सब जगह परमेश्वर से अभेद का अभिमान ही · **परमः संस्कारः** — परम संस्कार है

— अथ पर्वविधिः —

तत्र सामान्यं, सामान्यसामान्यं, सामान्यविशेषो, विशेषसामान्यं, विशेषो, विशेषविशेषश्च इति षोढा पर्व—पूरणात् विधेः ।

तत्र मासि मासि प्रथमं पञ्चमं दिनं सामान्यम्, चतुर्थाष्टमनवमचतुर्दशपञ्चदशानि द्वयोरपि पक्षयोः सामान्यसामान्यम्, अनयोरुभयोरपि राश्योः वक्ष्यमाणतत्तत्तिथ्युचितग्रहनक्षत्रयोगे सामान्यविशेषः, मार्गशीर्षस्य प्रथमरात्रिभागः कृष्णनवम्याम्, पौषस्य तु रात्रिमध्यं कृष्णनवम्याम्, माघस्य रात्रिमध्यं शुक्लपञ्चदश्याम्, फाल्गुनस्य दिनमध्यं शुक्लद्वादश्याम्, चैत्रस्य शुक्लत्रयोदश्याम्, वैशाखस्य कृष्णाष्टम्याम्, ज्यैष्ठस्य कृष्णनवम्याम्, आषाढस्य प्रथमे दिने, श्रावणस्य दिवसपूर्वभागः कृष्णैकादश्याम्, भाद्रपदस्य दिनमध्यं शुक्लषष्ठ्याम्, आश्वयुजस्य शुक्लनवमीदिनम्, कार्तिकस्य प्रथमो रात्रिभागः शुक्लनवम्याम्—इति विशेषपर्व ।

चित्राचन्द्रौ, मघाजीवौ, तिष्यचन्द्रौ, पूर्वफाल्गुनीबुधौ, श्रवणबुधौ, शतभिषक्चन्द्रौ, मूलादित्यौ, रोहिणीशुक्रौ, विशाखाबृहस्पती, श्रवणचन्द्रौ इति ।

पर्व छह तरह का है — सामान्य, सामान्य-सामान्य, सामान्य-विशेष, विशेष-सामान्य, विशेष और विशेष-विशेष — क्योंकि वह विधि को पूरा करता है। हर महीने पहला और पाँचवाँ दिन सामान्य है। दोनों पक्षों की चौथी, आठवीं, नौवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं सामान्य-सामान्य हैं। इन दोनों समूहों में, जब आगे कही जाने वाली उस-उस तिथि के उचित ग्रह और नक्षत्र का योग हो, तब सामान्य-विशेष है। विशेष पर्व यह है: मार्गशीर्ष का कृष्ण नवमी को रात का पहला भाग; पौष का कृष्ण नवमी को आधी रात; माघ का शुक्ल पूर्णिमा को आधी रात; फाल्गुन का शुक्ल द्वादशी को दोपहर;

चैत्र का शुक्ल त्रयोदशी; वैशाख का कृष्ण अष्टमी; ज्येष्ठ का कृष्ण नवमी; आषाढ़ का पहला दिन; श्रावण का कृष्ण एकादशी को दिन का पहला भाग; भाद्रपद का शुक्ल षष्ठी को दोपहर; आश्विन का शुक्ल नवमी का दिन; कार्तिक का शुक्ल नवमी को रात का पहला भाग। योग ये हैं: चित्रा और चन्द्र, मघा और बृहस्पति, पुष्य और चन्द्र, पूर्वफाल्गुनी और बुध, श्रवण और बुध, शतभिषा और चन्द्र, मूल और सूर्य, रोहिणी और शुक्र, विशाखा और बृहस्पति, श्रवण और चन्द्र।

पदपाठ तत्र सामान्यं सामान्य-सामान्यं सामान्य-विशेषः — उसमें सामान्य, सामान्य-सामान्य, सामान्य-विशेष · विशेष-सामान्यं विशेषः विशेष-विशेषः च इति — विशेष-सामान्य, विशेष और विशेष-विशेष · षोढा पर्व — पर्व छह तरह का है · पूरणात् विधेः — क्योंकि वह विधि को पूरा करता है · तत्र मासि मासि प्रथमं पञ्चमं दिनं सामान्यम् — उसमें हर महीने पहला और पाँचवाँ दिन सामान्य है · चतुर्थ-अष्टम-नवम-चतुर्दश-पञ्चदशानि द्वयोः अपि पक्षयोः — दोनों पक्षों की चौथी, आठवीं, नौवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं · सामान्य-सामान्यम् — सामान्य-सामान्य हैं · अनयोः उभयोः अपि राश्योः — इन दोनों समूहों में · वक्ष्यमाण-तत्-तत्-तिथि-उचित-ग्रह-नक्षत्र-योगे — आगे कही जाने वाली उस-उस तिथि के उचित ग्रह और नक्षत्र के योग में · सामान्य-विशेषः — सामान्य-विशेष है · मार्गशीर्षस्य प्रथम-रात्रि-भागः कृष्ण-नवम्याम् — मार्गशीर्ष का कृष्ण नवमी को रात का पहला भाग · पौषस्य तु रात्रि-मध्यं कृष्ण-नवम्याम् — पौष का कृष्ण नवमी को आधी रात · माघस्य रात्रि-मध्यं शुक्ल-पञ्चदश्याम् — माघ का शुक्ल पूर्णिमा को आधी रात · फाल्गुनस्य दिन-मध्यं शुक्ल-द्वादश्याम् — फाल्गुन का शुक्ल द्वादशी को दोपहर · चैत्रस्य शुक्ल-त्रयोदश्याम् — चैत्र का शुक्ल त्रयोदशी · वैशाखस्य कृष्ण-अष्टम्याम् — वैशाख का कृष्ण अष्टमी · ज्यैष्ठस्य कृष्ण-नवम्याम् — ज्येष्ठ का कृष्ण नवमी · आषाढस्य प्रथमे दिने — आषाढ़ का पहला दिन · श्रावणस्य दिवस-पूर्व-भागः कृष्ण-एकादश्याम् — श्रावण का कृष्ण एकादशी को दिन का पहला भाग · भाद्रपदस्य दिन-मध्यं शुक्ल-षष्ठ्याम् — भाद्रपद का शुक्ल षष्ठी को दोपहर · आश्वयुजस्य शुक्ल-नवमी-दिनम् — आश्विन का शुक्ल नवमी का दिन · कार्तिकस्य प्रथमः रात्रि-भागः शुक्ल-नवम्याम् — कार्तिक का शुक्ल नवमी को रात का पहला भाग · इति विशेष-पर्व — यह विशेष पर्व है · चित्रा-चन्द्रौ मघा-जीवौ तिष्य-चन्द्रौ — चित्रा और चन्द्र, मघा और बृहस्पति, पुष्य और चन्द्र · पूर्वफाल्गुनी-बुधौ श्रवण-बुधौ शतभिषक्-चन्द्रौ — पूर्वफाल्गुनी और बुध, श्रवण और बुध, शतभिषा और चन्द्र · मूला-आदित्यौ रोहिणी-शुक्रौ — मूल और सूर्य, रोहिणी और शुक्र · विशाखा-बृहस्पती श्रवण-चन्द्रौ इति — विशाखा और बृहस्पति, श्रवण और चन्द्र

यदि मार्गशीर्षादिक्रमेण यथासंख्यं भवति आश्वयुजं वर्जयित्वा तदा विशेषविशेषः ।

अन्यविशेषश्चेत् अन्यपर्वणि तदा तत्—अनुपर्व इत्याहुः ।

भग्रहयोगे च न वेला प्रधानं—तिथेरेव विशेषलाभात्, अनुयागकालानुवृत्तिस्तु पर्वदिने मुख्या—अनुयागप्राधान्यात् पर्वयागानाम्, अनुयागो मूर्तियागः चक्रयागः इति पर्यायाः । ५५.४

तत्र गुरुः, तद्वर्ग्यः ससन्तानः, तत्त्ववित्, कन्या, अन्त्या, वेश्या, अरुणा, तत्त्ववेदिनी वा इति चक्रयागे मुख्यपूज्याः—विशेषात् सामस्त्येन ।

यदि वे मार्गशीर्ष से क्रम में, आश्विन को छोड़कर, एक-एक करके पड़ें, तब विशेष-विशेष है। यदि एक का विशेष दूसरे पर्व पर पड़े, तब उसे अनुपर्व कहते हैं। और नक्षत्र-ग्रह के योग में वेला प्रधान नहीं है, क्योंकि तिथि से ही विशेषता मिल जाती है; पर पर्व के दिन अनुयाग के समय का पालन मुख्य है, क्योंकि पर्व-यागों में अनुयाग प्रधान है। अनुयाग, मूर्तियाग और चक्रयाग पर्यायवाची हैं। चक्रयाग में मुख्य पूज्य हैं गुरु, उनके वर्ग के लोग अपनी परम्परा सहित, तत्त्व का ज्ञाता, कन्या, अन्त्यजा, वेश्या, रजस्वला, या तत्त्व जानने वाली स्त्री — विशेषकर सब मिलकर।

पदपाठ यदि मार्गशीर्ष-आदि-क्रमेण यथासंख्यं भवति — यदि मार्गशीर्ष से क्रम में एक-एक करके पड़ें · आश्वयुजं वर्जयित्वा — आश्विन को छोड़कर · तदा विशेष-विशेषः — तब विशेष-विशेष है · अन्य-विशेषः चेत् अन्य-पर्वणि — यदि एक का विशेष दूसरे पर्व पर पड़े · तदा तत् अनुपर्व इति आहुः — तब उसे अनुपर्व कहते हैं · भ-ग्रह-योगे च न वेला प्रधानं — और नक्षत्र-ग्रह के योग में वेला प्रधान नहीं है · तिथेः एव विशेष-लाभात् — क्योंकि तिथि से ही विशेषता मिल जाती है · अनुयाग-काल-अनुवृत्तिः तु पर्व-दिने मुख्या — पर पर्व के दिन अनुयाग के समय का पालन मुख्य है · अनुयाग-प्राधान्यात् पर्व-यागानाम् — क्योंकि पर्व-यागों में अनुयाग प्रधान है · अनुयागः मूर्ति-यागः चक्र-यागः इति पर्यायाः — अनुयाग, मूर्तियाग और चक्रयाग पर्यायवाची हैं · तत्र गुरुः तत्-वर्ग्यः स-सन्तानः — उसमें गुरु, उनके वर्ग के लोग अपनी परम्परा सहित · तत्त्व-वित् — तत्त्व का ज्ञाता · कन्या अन्त्या वेश्या अरुणा — कन्या, अन्त्यजा,

वेश्या, रजस्वला · **तत्त्व-वेदिनी वा इति** — या तत्त्व जानने वाली स्त्री · **चक्र-यागे मुख्य-पूज्याः** — चक्रयाग में मुख्य पूज्य हैं · **विशेषात् सामस्त्येन** — विशेषकर सब मिलकर

तत्र मध्ये गुरुः तदावरणक्रमेण गुर्वादिसमय्यन्तं वीरः शक्तिः इति, क्रमेण— इत्येवं चक्रस्थित्या वा पङ्क्तिस्थित्या वा आसीत, ततो गन्धधूपपुष्पादिभिः क्रमेण पूजयेत्, ततः पात्रं सदाशिवरूपं ध्यात्वा शक्त्यमृतध्यातेन आसवेन पूरयित्वा तत्र भोक्त्रीं शक्तिं शिवतया पूजयित्वा तयैव देवताचक्रतर्पणं कृत्वा। नरशक्तिशिवात्मकत्रितयमेलकं ध्यात्वा आवरणावतरणक्रमेण मोक्षभोगप्राधान्यं बहिरन्तश्च तर्पणं कुर्यात्, पुनः प्रतिसंचरणक्रमेण, एवं पूर्णं भ्रमणं चक्रं पुष्णाति ।

उसमें बीच में गुरु बैठते हैं, और उनके चारों ओर आवरण के क्रम से, गुरु से लेकर समयी तक, वीर और फिर शक्ति — इस क्रम से, चक्र में या पंक्ति में, सब बैठें। फिर गन्ध, धूप, पुष्प आदि से क्रम से उनकी पूजा करे। फिर पात्र को सदाशिव-रूप ध्याकर, शक्ति के अमृत-रूप ध्याए गए आसव से भरकर, उसमें भोक्त्री शक्ति की शिव-रूप से पूजा करे; उसी से देवताचक्र का तर्पण करे; और नर, शक्ति और शिव — इस त्रय के मेल का ध्यान करके, आवरणों में उतरते हुए क्रम से, मोक्ष और भोग को प्रधान रखकर, बाहर और भीतर तर्पण करे, फिर लौटने के क्रम से। इस तरह पूरा चक्कर चक्र को पुष्ट करता है।

पदपाठ तत्र मध्ये गुरुः — उसमें बीच में गुरु · तत्-आवरण-क्रमेण गुरु-आदि-समयि-अन्तं — उनके चारों ओर आवरण के क्रम से, गुरु से लेकर समयी तक · वीरः शक्तिः इति क्रमेण — वीर, शक्ति — इस क्रम से · इति एवं चक्र-स्थित्या वा पङ्क्ति-स्थित्या वा आसीत — इस तरह चक्र में या पंक्ति में बैठें · ततः गन्ध-धूप-पुष्प-आदिभिः क्रमेण पूजयेत् — फिर गन्ध, धूप, पुष्प आदि से क्रम से उनकी पूजा करे · ततः पात्रं सदाशिव-रूपं ध्यात्वा — फिर पात्र को सदाशिव-रूप ध्याकर · शक्ति-अमृत-ध्यातेन आसवेन पूरयित्वा — शक्ति के अमृत-रूप ध्याए गए आसव से भरकर · तत्र भोक्त्रीं शक्तिं शिवतया पूजयित्वा — उसमें भोक्त्री शक्ति की शिव-रूप से पूजा करके · तया एव देवता-चक्र-तर्पणं कृत्वा — उसी से देवताचक्र का तर्पण करके · नर-शक्ति-शिव-आत्मक-त्रितय-मेलकं ध्यात्वा — नर, शक्ति और शिव — इस त्रय के मेल का ध्यान करके · आवरण-अवतरण-क्रमेण — आवरणों में उतरते हुए क्रम से · मोक्ष-भोग-प्राधान्यं

बहिः अन्तः च तर्पणं कुर्यात् — मोक्ष और भोग को प्रधान रखकर बाहर और भीतर तर्पण करे · **पुनः प्रतिसंचरण-क्रमेण** — फिर लौटने के क्रम से · **एवं पूर्णं भ्रमणं चक्रं पुष्णाति** — इस तरह पूरा चक्कर चक्र को पुष्ट करता है

तत्र आधारे विश्वमयं पात्रं स्थापयित्वा देवताचक्रं तर्पयित्वा स्वात्मानं वन्दितेन तेन तर्पयेत्, पात्राभावे भद्रं वेल्लितशुक्तिः वा, दक्षहस्तेन पात्राकारं भद्रं, द्वाभ्यामुपरिगतदक्षिणाभ्यां निःसन्धीकृताभ्यां वेल्लितशुक्तिः, पतद्भिः बिन्दुभिः वेतालगुह्यकाः संतुष्यन्ति, धारया भैरवः, अत्र प्रवेशो न कस्यचित् देयः,५५.६ प्रमादात् प्रविष्टस्य विचारं न कुर्यात्, कृत्वा पुनर्द्विगुणं चक्रयागं कुर्यात्, ततोऽवदंशान् भोजनादीन् च अग्रे यथेष्टं विकीर्येत, गुप्तगृहे वा संकेताभिधानवर्जं देवताशब्देन सर्वान् योजयेत्—इति वीरसंकरयागः ।

वहाँ आधार पर विश्वमय पात्र रखकर और देवताचक्र का तर्पण करके, उसे प्रणाम करके उससे अपना तर्पण करे। पात्र न हो तो भद्र या वेल्लितशुक्ति: दाहिने हाथ से बना पात्र का आकार भद्र है; दोनों हाथ, दाहिना ऊपर, बिना दरार जोड़े हुए — यह वेल्लितशुक्ति है। गिरती बूँदों से वेताल और गुह्यक तृप्त होते हैं, धारा से भैरव। यहाँ किसी को प्रवेश न दिया जाए। भूल से आ जाने वाले पर विचार न करे; यदि करे तो फिर दुगुना चक्रयाग करे। फिर चाट और भोजन आदि सामने इच्छानुसार फैला दे — या गुप्त घर में — और सांकेतिक नाम लिए बिना सबको "देवता" शब्द से जोड़े। यह वीरसंकर-याग है।

पदपाठ तत्र आधारे विश्व-मयं पात्रं स्थापयित्वा — वहाँ आधार पर विश्वमय पात्र रखकर · देवता-चक्रं तर्पयित्वा — देवताचक्र का तर्पण करके · स्व-आत्मानं वन्दितेन तेन तर्पयेत् — उसे प्रणाम करके उससे अपना तर्पण करे · पात्र-अभावे भद्रं वेल्लित-शुक्तिः वा — पात्र न हो तो भद्र या वेल्लितशुक्ति · दक्ष-हस्तेन पात्र-आकारं भद्रं — दाहिने हाथ से बना पात्र का आकार भद्र है · द्वाभ्याम् उपरिगत-दक्षिणाभ्यां निःसन्धीकृताभ्यां वेल्लित-शुक्तिः — दोनों हाथ, दाहिना ऊपर, बिना दरार जोड़े हुए — यह वेल्लितशुक्ति है · पतद्भिः बिन्दुभिः वेताल-गुह्यकाः संतुष्यन्ति — गिरती बूँदों से वेताल और गुह्यक तृप्त होते हैं · धारया भैरवः — धारा से भैरव · अत्र प्रवेशः न कस्यचित् देयः — यहाँ किसी को प्रवेश न दिया जाए · प्रमादात् प्रविष्टस्य विचारं न कुर्यात् — भूल से आ जाने वाले पर विचार न करे · कृत्वा पुनः द्विगुणं चक्र-यागं कुर्यात् — यदि करे तो फिर दुगुना चक्रयाग करे · ततः अवदंशान् भोजन-आदीन् च — फिर चाट और भोजन

आदि · अग्रे यथेष्टं विकीर्येत — सामने इच्छानुसार फैला दे · गुप्त-गृहे वा — या गुप्त घर में · संकेत-अभिधान-वर्जं — सांकेतिक नाम लिए बिना · देवता-शब्देन सर्वान् योजयेत् — सबको "देवता" शब्द से जोड़े · इति वीर-संकर-यागः — यह वीरसंकर-याग है

ततोऽन्ते दक्षिणाताम्बूलवस्त्रादिभिः तर्पयेत्—इति प्रधानतमोऽयं मूर्तियागः । अदृष्टमण्डलोऽपि मूर्तियागेन पर्वदिनानि पूजयन् वर्षादेव पुत्रकोक्तं फलमेति, विना सन्ध्यानुष्ठानादिभिः—इति वृद्धानां भोगिनां स्त्रीणां विधिरयम्, शक्तिपाते सति उपदेष्टव्यो गुरुणा । ५५.७

फिर अन्त में दक्षिणा, ताम्बूल, वस्त्र आदि से उन्हें तृप्त करे। यह सबसे प्रधान मूर्तियाग है। जिसने मण्डल नहीं देखा वह भी, मूर्तियाग से पर्व के दिनों में पूजा करता हुआ, सन्ध्या के अनुष्ठान आदि के बिना एक वर्ष में ही पुत्रक का कहा हुआ फल पा लेता है। यह वृद्धों, भोगियों और स्त्रियों की विधि है; शक्तिपात होने पर गुरु को इसका उपदेश देना चाहिए।

पदपाठ ततः अन्ते — फिर अन्त में · दक्षिणा-ताम्बूल-वस्त्र-आदिभिः तर्पयेत् — दक्षिणा, ताम्बूल, वस्त्र आदि से उन्हें तृप्त करे · इति प्रधानतमः अयं मूर्ति-यागः — यह सबसे प्रधान मूर्तियाग है · अदृष्ट-मण्डलः अपि — जिसने मण्डल नहीं देखा वह भी · मूर्ति-यागेन पर्व-दिनानि पूजयन् — मूर्तियाग से पर्व के दिनों में पूजा करता हुआ · वर्षात् एव पुत्रक-उक्तं फलम् एति — एक वर्ष में ही पुत्रक का कहा हुआ फल पा लेता है · विना सन्ध्या-अनुष्ठान-आदिभिः — सन्ध्या के अनुष्ठान आदि के बिना · इति वृद्धानां भोगिनां स्त्रीणां विधिः अयम् — यह वृद्धों, भोगियों और स्त्रियों की विधि है · शक्ति-पाते सति उपदेष्टव्यः गुरुणा — शक्तिपात होने पर गुरु को इसका उपदेश देना चाहिए

अथ पवित्रकविधिः ।

स च श्रीरत्नमालात्रिशिरोमतश्रीसिद्धामतादौ विधिपूर्वकः पारमेश्वराज्ञापूरकश्च,

उक्तं चैतत् श्रीतन्त्रालोके 'विना पवित्रकेण सर्वं निष्फलम् ।' इति ।

तत्र आषाढशुक्लात् कुलपूर्णिमादिनान्तं कार्यं पवित्रकम्, तत्र ५५.८

कार्तिककृष्णपञ्चदशी कुलचक्रं नित्याचक्रं पूरयति इति श्रीनित्यातन्त्रविदः ।

माघशुक्लपञ्चदशी इति श्रीभैरवकुलोर्मिविदः ।

दक्षिणायनान्तपञ्चदशी इति श्रीतन्त्रसद्भावविदः ।

अब पवित्रक की विधि। वह श्रीरत्नमाला, त्रिशिरोमत, श्रीसिद्धामत आदि में विधि सहित कहा गया है और परमेश्वर की आज्ञा को पूरा करता है। श्रीतन्त्रालोक में यह कहा गया है: "पवित्रक के बिना सब निष्फल है।" पवित्रक आषाढ़ शुक्ल से कुलपूर्णिमा के दिन तक करना चाहिए। कार्तिक की कृष्ण पन्द्रहवीं कुलचक्र, नित्याचक्र को पूरा करती है — ऐसा श्रीनित्यातन्त्र के ज्ञाता कहते हैं। माघ की शुक्ल पन्द्रहवीं, ऐसा श्रीभैरवकुलोर्मि के ज्ञाता कहते हैं। दक्षिणायन के अन्त की पन्द्रहवीं, ऐसा श्रीतन्त्रसद्भाव के ज्ञाता कहते हैं।

पदपाठ अथ पवित्रक-विधिः — अब पवित्रक की विधि · सः च श्रीरत्नमाला-त्रिशिरोमत-श्रीसिद्धामत-आदौ — और वह श्रीरत्नमाला, त्रिशिरोमत, श्रीसिद्धामत आदि में · विधि-पूर्वकः — विधि सहित कहा गया है · पारमेश्वर-आज्ञा-पूरकः च — और परमेश्वर की आज्ञा को पूरा करता है · उक्तं च एतत् श्रीतन्त्रालोके — और यह श्रीतन्त्रालोक में कहा गया है · विना पवित्रकेण सर्वं निष्फलम् इति — "पवित्रक के बिना सब निष्फल है" · तत्र आषाढ-शुक्लात् कुल-पूर्णिमा-दिन-अन्तं — उसमें आषाढ़ शुक्ल से कुलपूर्णिमा के दिन तक · कार्यं पवित्रकम् — पवित्रक करना चाहिए · तत्र कार्तिक-कृष्ण-पञ्चदशी — उसमें कार्तिक की कृष्ण पन्द्रहवीं · कुल-चक्रं नित्या-चक्रं पूरयति — कुलचक्र, नित्याचक्र को पूरा करती है · इति श्रीनित्यातन्त्र-विदः — ऐसा श्रीनित्यातन्त्र के ज्ञाता कहते हैं · माघ-शुक्ल-पञ्चदशी इति श्रीभैरवकुलोर्मि-विदः — माघ की शुक्ल पन्द्रहवीं, ऐसा श्रीभैरवकुलोर्मि के ज्ञाता कहते हैं · दक्षिणायन-अन्त-पञ्चदशी इति श्रीतन्त्रसद्भाव-विदः — दक्षिणायन के अन्त की पन्द्रहवीं, ऐसा श्रीतन्त्रसद्भाव के ज्ञाता कहते हैं

तत्र विभवेन देवं पूजयित्वा आहुत्या तर्पयित्वा पवित्रकं दद्यात्, सौवर्णमुक्तारत्नविरचितात् प्रभृति पटसूत्रकार्पासकुशगर्भान्तमपि कुर्यात् । तच्च तत्त्वसंख्यग्रन्थिकं पदकलाभुवनवर्णमन्त्रसंख्यग्रन्थि च जान्वन्तमेकं, नाभ्यन्तमपरं, कण्ठान्तमन्यत्, शिरसि अन्यत्—इति चत्वारि पवित्रकाणि देवाय गुरवे च समस्ताध्वपरिपूर्णतद्रूपभावनेन दद्यात्, शेषेभ्य एकम् इति । ५.९

वहाँ वैभव के अनुसार देव की पूजा करके और आहुति से तर्पण करके पवित्रक दे। वह सोने, मोती और रत्न से बने से लेकर कपड़े, सूत, कपास या कुश के गर्भ तक का भी बना सकता है। उसमें तत्त्वों की संख्या के बराबर गाँठें हों, या पदों, कलाओं, भुवनों, वर्णों या मन्त्रों की संख्या के बराबर। एक घुटनों तक, दूसरा नाभि तक, एक कण्ठ तक, एक सिर पर — ये चार पवित्रक देव को और गुरु को सम्पूर्ण अध्वा से परिपूर्ण उस रूप की भावना से दे; और बाकी को एक।

पदपाठ तत्र विभवेन देवं पूजयित्वा — उसमें वैभव के अनुसार देव की पूजा करके · आहुत्या तर्पयित्वा — आहुति से तर्पण करके · पवित्रकं दद्यात् — पवित्रक दे · सौवर्ण-मुक्ता-रत्न-विरचितात् प्रभृति — सोने, मोती और रत्न से बने से लेकर · पट-सूत्र-कार्पास-कुश-गर्भ-अन्तम् अपि कुर्यात् — कपड़े, सूत, कपास या कुश के गर्भ तक का भी बना सकता है · तत् च तत्त्व-संख्य-ग्रन्थिकं — और उसमें तत्त्वों की संख्या के बराबर गाँठें हों · पद-कला-भुवन-वर्ण-मन्त्र-संख्य-ग्रन्थि च — या पदों, कलाओं, भुवनों, वर्णों या मन्त्रों की संख्या के बराबर · जानु-अन्तम् एकं नाभि-अन्तम् अपरं — एक घुटनों तक, दूसरा नाभि तक · कण्ठ-अन्तम् अन्यत् शिरसि अन्यत् — एक कण्ठ तक, एक सिर पर · इति चत्वारि पवित्रकाणि — ये चार पवित्रक · देवाय गुरवे च — देव को और गुरु को · समस्त-अध्व-परिपूर्ण-तत्-रूप-भावनेन दद्यात् — सम्पूर्ण अध्वा से परिपूर्ण उस रूप की भावना से दे · शेषेभ्यः एकम् इति — और बाकी को एक

ततो महोत्सवः कार्यः, चातुर्मास्यं सप्तदिनं त्रिदिनं च इति मुख्यान्वापत्कल्पाः, सति विभवे मासि मासि पवित्रकम्, अथ वा चतुर्षु मासेषु, अथ वा सकृत्, तदकरणे प्रायश्चित्तं जपेत्, ज्ञानी अपि संभवद्वित्तोऽपि अकरणे प्रत्यवैति ५५.१०
लोभोपहितज्ञानाकरणे ज्ञाननिन्दापत्तेः ।
‘यदा प्राप्यापि विज्ञानं दूषितं परमेशशासनं तदा प्रायश्चित्ती ।’ इति वचनात् ।
इत्येष पवित्रकविधिः ।

फिर महोत्सव करना चाहिए — चार महीने, सात दिन या तीन दिन: ये मुख्य, गौण और आपत्काल के विकल्प हैं। वैभव हो तो हर महीने पवित्रक; या चार महीनों में; या एक बार। न करने पर प्रायश्चित्त का जप करे। ज्ञानी भी, धन होते हुए भी, न करने पर गिरता है, क्योंकि लोभ से दूषित ज्ञान के कारण न करने पर ज्ञान की निन्दा होती है। जैसा वचन है: "जब ज्ञान पाकर भी परमेश्वर का शासन दूषित किया जाता है, तब प्रायश्चित्त करना होता है।" यह पवित्रक की विधि है।

पदपाठ ततः महा-उत्सवः कार्यः — फिर महोत्सव करना चाहिए · चातुर्मास्यं सप्त-दिनं त्रि-दिनं च इति — चार महीने, सात दिन या तीन दिन · मुख्य-अनु-आपत्-कल्पाः — मुख्य, गौण और आपत्काल के विकल्प · सति विभवे मासि मासि पवित्रकम् — वैभव हो तो हर महीने पवित्रक · अथ वा चतुर्षु मासेषु अथ वा सकृत् — या चार महीनों में, या एक बार · तत्-अकरणे प्रायश्चित्तं जपेत् — न करने पर प्रायश्चित्त का जप करे · ज्ञानी अपि संभवत्-वित्तः अपि — ज्ञानी भी, धन होते हुए भी · अकरणे प्रत्यवैति — न करने पर गिरता है · लोभ-उपहित-ज्ञान-अकरणे — क्योंकि लोभ से दूषित ज्ञान के कारण न करने पर · ज्ञान-निन्दा-आपत्तेः — ज्ञान की निन्दा होती है · यदा प्राप्य अपि विज्ञानं — "जब ज्ञान पाकर भी · दूषितं परमेश-शासनं — परमेश्वर का शासन दूषित किया जाता है · तदा प्रायश्चित्ती इति वचनात् — तब प्रायश्चित्त करना होता है" — ऐसे वचन से · इति एषः पवित्रक-विधिः — यह पवित्रक की विधि है

ज्ञानलाभादौ लौकिकोत्सवान्तेऽपि सर्वत्र संविदुल्लासाधिक्यं देवताचक्रसंनिधिः विशेषतो भवति, इति तथाविधाधिक्यपर्यालोचनया तथाविधमेव विशेषमनुयागादौ कुर्यात् । ५५.११

ज्ञान की प्राप्ति से लेकर लौकिक उत्सव तक, सब जगह संवित् के उल्लास की अधिकता और देवताचक्र की विशेष सन्निधि होती है। इसलिए उस अधिकता को देखकर उसी के अनुसार अनुयाग आदि में विशेष करे।

पदपाठ ज्ञान-लाभ-आदौ लौकिक-उत्सव-अन्ते अपि — ज्ञान की प्राप्ति से लेकर लौकिक उत्सव तक · सर्वत्र संवित्-उल्लास-आधिक्यं — सब जगह संवित् के उल्लास की अधिकता · देवता-चक्र-संनिधिः विशेषतः भवति — और देवताचक्र की विशेष सन्निधि होती है · इति तथाविध-आधिक्य-पर्यालोचनया — इसलिए उस अधिकता को देखकर · तथाविधम् एव विशेषम् — उसी के अनुसार विशेष · अनुयाग-आदौ कुर्यात् — अनुयाग आदि में करे

— अथ व्याख्याविधिः —

सर्वशास्त्रसंपूर्णं गुरुं व्याख्यार्थम् अभ्यर्थयेत, सोऽपि स्वशिष्याय परशिष्यायापि वा समुचितसंस्कारोचितं शास्त्रं व्याचक्षीत, अधरशासनस्थायापि करुणावशात् ईश्वरेच्छावैचित्र्योद्भावितशक्तिपातसंभावनाभावितहृदयो व्याचक्षीत— मर्मोपदेशवर्जम् । ५५.१२

तत्र निम्नासनस्थितेभ्यः तत्परेभ्यो नियमितवाङ्मनःकायेभ्यो व्याख्या क्रियमाणा फलवती भवति, प्रथमं गन्धादिलिप्तायां भुवि उल्लिख्य संकल्प्य वा पद्माधारं चतुरश्रं पद्मत्रयं पद्ममध्ये वागीशीं वामदक्षिणयोः गणपतिगुरू च पूजयेत्, आधारपद्मे व्याख्येयकल्पदेवताम् ।

सब शास्त्रों में पूर्ण गुरु से व्याख्या के लिए प्रार्थना करे। वह अपने शिष्य को, या दूसरे के शिष्य को भी, उसके संस्कार के योग्य शास्त्र की व्याख्या करे; और निचले शासन वाले को भी करुणा से व्याख्या करे, ईश्वर की इच्छा की विचित्रता से उत्पन्न शक्तिपात की संभावना से भावित हृदय होकर — पर मर्म के उपदेश को छोड़कर। व्याख्या तब फलवती होती है जब वह नीचे आसन पर बैठे हुओं को दी जाए, जो उसमें लगे हों और जिनकी वाणी, मन और शरीर संयमित हों। पहले गन्ध आदि से लिपी भूमि पर, रेखा खींचकर या संकल्प से, पद्म के आधार वाला चौकोर और तीन पद्म बनाकर, बीच के पद्म में वागीशी की, बाएँ-दाएँ गणपति और गुरु की, और आधार-पद्म पर व्याख्येय कल्प की देवता की पूजा करे।

पदपाठ सर्व-शास्त्र-संपूर्णं गुरुं — सब शास्त्रों में पूर्ण गुरु से · व्याख्या-अर्थम् अभ्यर्थयेत — व्याख्या के लिए प्रार्थना करे · सः अपि स्व-शिष्याय पर-शिष्याय अपि वा — और वह अपने शिष्य को या दूसरे के शिष्य को भी · समुचित-संस्कार-उचितं शास्त्रं व्याचक्षीत — उसके संस्कार के योग्य शास्त्र की व्याख्या करे · अधर-शासन-स्थाय अपि करुणा-वशात् — निचले शासन वाले को भी, करुणा से · ईश्वर-इच्छा-

वैचित्र्य-उद्भावित-शक्तिपात-संभावना-भावित-हृदयः — ईश्वर की इच्छा की विचित्रता से उत्पन्न शक्तिपात की संभावना से भावित हृदय वाला · **व्याचक्षीत मर्म-उपदेश-वर्जम्** — मर्म के उपदेश को छोड़कर व्याख्या करे · **तत्र निम्न-आसन-स्थितेभ्यः** — उसमें नीचे आसन पर बैठे हुओं को · **तत्-परेभ्यः नियमित-वाक्-मनः-कायेभ्यः** — जो उसमें लगे हों, जिनकी वाणी, मन और शरीर संयमित हों · **व्याख्या क्रियमाणा फलवती भवति** — की गई व्याख्या फलवती होती है · **प्रथमं गन्ध-आदि-लिप्तायां भुवि** — पहले गन्ध आदि से लिपी भूमि पर · **उल्लिख्य संकल्प्य वा** — रेखा खींचकर या संकल्प से · **पद्म-आधारं चतुरश्रं पद्म-त्रयं** — पद्म के आधार वाला चौकोर और तीन पद्म · **पद्म-मध्ये वागीशीं** — बीच के पद्म में वागीशी को · **वाम-दक्षिणयोः गणपति-गुरू च पूजयेत्** — और बाएँ-दाएँ गणपति और गुरु की पूजा करे · **आधार-पद्मे व्याख्येय-कल्प-देवताम्** — आधार-पद्म पर व्याख्येय कल्प की देवता को

ततः सामान्यार्घपात्रयोगेन चक्रं तर्पयेत्, ततो व्याचक्षीत सूत्रवाक्यपटलग्रन्थम्, पूर्वापराविरुद्धं कुर्वन् तन्त्रावृत्तिप्रसङ्गसमुच्चयविकल्पादिशास्त्रन्यायौचित्येन पूर्वं पक्षं सम्यक् घटयित्वा सम्यक् च दूषयन् साध्यं साधयन् तात्पर्यवृत्तिं प्रदर्शयन् पटलान्तं व्याचक्षीत नाधिकम्, तत्रापि वस्त्वन्ते वस्त्वन्ते तर्पणं पूजनम् इति यावद्व्याख्यासमाप्तिः ।

ततोऽपि पूजयित्वा विद्यापीठं विसर्ज्य उपलिप्य अगाधे तत् क्षेपयेत् ।

इति व्याख्याविधिः ।

फिर सामान्य अर्घ्य-पात्र से चक्र का तर्पण करे। फिर सूत्र, वाक्य और पटल वाले ग्रन्थ की व्याख्या करे — आगे-पीछे में विरोध न आने देते हुए, तन्त्र, आवृत्ति, प्रसंग, समुच्चय, विकल्प आदि शास्त्रीय न्यायों के औचित्य से, पूर्वपक्ष को ठीक से रखकर और ठीक से खण्डन करते हुए, साध्य को सिद्ध करते हुए, तात्पर्य दिखाते हुए; पटल के अन्त तक व्याख्या करे, उससे अधिक नहीं। और उसमें भी हर विषय के अन्त में तर्पण और पूजन — यों व्याख्या की समाप्ति तक। उसके बाद भी पूजा करके विद्यापीठ का विसर्जन करे, भूमि लीपकर उसे गहरे जल में डाल दे। यह व्याख्याविधि है।

पदपाठ ततः सामान्य-अर्घ-पात्र-योगेन चक्रं तर्पयेत् — फिर सामान्य अर्घ्य-पात्र से चक्र का तर्पण करे · ततः व्याचक्षीत सूत्र-वाक्य-पटल-ग्रन्थम् — फिर सूत्र, वाक्य और पटल वाले ग्रन्थ की व्याख्या करे · पूर्व-अपर-अविरुद्धं कुर्वन् — आगे-पीछे में विरोध न आने देते हुए · तन्त्र-आवृत्ति-प्रसङ्ग-समुच्चय-विकल्प-आदि-शास्त्र-न्याय-औचित्येन — तन्त्र, आवृत्ति, प्रसंग, समुच्चय, विकल्प आदि शास्त्रीय न्यायों के औचित्य से · पूर्वं पक्षं सम्यक् घटयित्वा सम्यक् च दूषयन् — पूर्वपक्ष को ठीक से रखकर और ठीक से खण्डन करते हुए · साध्यं साधयन् तात्पर्य-वृत्तिं प्रदर्शयन् — साध्य को सिद्ध करते हुए, तात्पर्य दिखाते हुए · पटल-अन्तं व्याचक्षीत न अधिकम् — पटल के अन्त तक व्याख्या करे, उससे अधिक नहीं · तत्र अपि वस्तु-अन्ते वस्तु-अन्ते तर्पणं पूजनम् — और उसमें भी हर विषय के अन्त में तर्पण और पूजन · इति यावत् व्याख्या-समाप्तिः — यों व्याख्या की समाप्ति तक · ततः अपि पूजयित्वा — उसके बाद भी पूजा

करके · **विद्या-पीठं विसर्ज्य** — विद्यापीठ का विसर्जन करके · **उपलिप्य अगाधे तत् क्षेपयेत्** — भूमि लीपकर उसे गहरे जल में डाल दे · **इति व्याख्या-विधिः** — यह व्याख्याविधि है

— अथ समयनिष्कृतिः —

यद्यपि तत्त्वज्ञाननिष्ठस्य प्रायश्चित्तादि न किंचित् तथापि चर्यामात्रादेव मोक्षभागिनः, तान् अनुग्रहीतुम् आचारवर्तनीं दर्शयेत् । अतत्त्वज्ञानी तु चर्यैकायत्तभोगमोक्षः समयोल्लङ्घने कृते प्रायश्चित्तम् अकुर्वन् वर्षशतं क्रव्यादो भवतीति—इति प्रायश्चित्तविधिः वक्तव्यः, तत्र स्त्रीवधे प्रायश्चित्तं नास्ति, अन्यत्र तु बलाबलं ज्ञात्वा अखण्डां भगवतीं मालिनीम् एकवारात् प्रभृति त्रिलक्षान्तम् आवर्तयेत् यावत् शङ्काविच्युतिः भवति, तदन्ते विशेषपूजा, तत्रापि चक्रयागः, स हि सर्वत्र शेषभूतः । इति समयनिष्कृतिविधिः । ५५.१४

यद्यपि तत्त्वज्ञान में स्थित के लिए प्रायश्चित्त आदि कुछ नहीं है, फिर भी जो केवल चर्या से ही मोक्ष के भागी हैं, उन पर अनुग्रह करने के लिए वह आचार का मार्ग दिखाए। पर जो तत्त्व को नहीं जानता, जिसका भोग और मोक्ष केवल चर्या पर टिका है, वह समय का उल्लंघन करके प्रायश्चित्त न करे तो सौ वर्ष तक क्रव्याद बनता है; इसलिए प्रायश्चित्त की विधि कहनी चाहिए। स्त्री-वध का कोई प्रायश्चित्त नहीं है। पर अन्य में दोष का बल-अबल जानकर अखण्ड भगवती मालिनी को एक बार से लेकर तीन लाख तक जपे, जब तक शंका न मिट जाए। उसके अन्त में विशेष पूजा, और उसमें भी चक्रयाग — क्योंकि वह सब जगह शेष-रूप है। यह समयनिष्कृति की विधि है।

पदपाठ **यद्यपि तत्त्व-ज्ञान-निष्ठस्य** — यद्यपि तत्त्वज्ञान में स्थित के लिए · **प्रायश्चित्त-आदि न किंचित्** — प्रायश्चित्त आदि कुछ नहीं है · **तथापि चर्या-मात्रात् एव मोक्ष-भागिनः** — फिर भी जो केवल चर्या से ही मोक्ष के भागी हैं · **तान् अनुग्रहीतुम्** — उन पर अनुग्रह करने के लिए · **आचार-वर्तनीं दर्शयेत्** — आचार का मार्ग दिखाए · **अतत्त्व-ज्ञानी तु** — पर जो तत्त्व को नहीं जानता · **चर्या-एक-आयत्त-भोग-मोक्षः** — जिसका भोग और मोक्ष केवल चर्या पर टिका है · **समय-उल्लङ्घने कृते प्रायश्चित्तम् अकुर्वन्** — समय का उल्लंघन करके प्रायश्चित्त न करता हुआ · **वर्ष-शतं क्रव्यादः भवति इति** — सौ वर्ष तक क्रव्याद बनता है · **इति**

प्रायश्चित्त-विधिः वक्तव्यः — इसलिए प्रायश्चित्त की विधि कहनी चाहिए · **तत्र स्त्री-वधे प्रायश्चित्तं न अस्ति** — उसमें स्त्री-वध का कोई प्रायश्चित्त नहीं है · **अन्यत्र तु बल-अबलं ज्ञात्वा** — पर अन्य में दोष का बल-अबल जानकर · **अखण्डां भगवतीं मालिनीम्** — अखण्ड भगवती मालिनी को · **एक-वारात् प्रभृति त्रि-लक्ष-अन्तम् आवर्तयेत्** — एक बार से लेकर तीन लाख तक जपे · **यावत् शङ्का-विच्युतिः भवति** — जब तक शंका न मिट जाए · **तत्-अन्ते विशेष-पूजा तत्र अपि चक्र-यागः** — उसके अन्त में विशेष पूजा, और उसमें भी चक्रयाग · **सः हि सर्वत्र शेष-भूतः** — क्योंकि वह सब जगह शेष-रूप है · **इति समय-निष्कृति-विधिः** — यह समयनिष्कृति की विधि है

— अथ गुरुपूजाविधिः —

सर्वयागान्तेषु उपसंहृते यागे अपरेद्युः गुरुपूजां कुर्यात्, पूर्वं हि स विध्यङ्गतया तोषितो न तु प्राधान्येन, इति तां प्राधान्येन अकुर्वन् अधिकारबन्धेन बद्धो भवति—इति तां सर्वथा चरेत् ।

तत्र स्वास्तिकं मण्डलं कृत्वा तत्र सौवर्णं पीठं दत्त्वा तत्र समस्तमध्वानं पूजयित्वा तत्पीठं तेन अधिष्ठाप्य तस्मै पूजां कृत्वा तर्पणं भोजनं दक्षिणाम् आत्मानम् इति निवेद्य नैवेद्योच्छिष्टं प्रार्थ्य वन्दित्वा स्वयं प्राश्य चक्रपूजां कुर्यात् । ५५.१५

इति गुरुपूजाविधिः ।

हर याग के अन्त में, याग समाप्त हो जाने पर, अगले दिन गुरु-पूजा करे। क्योंकि पहले गुरु केवल विधि के अंग के रूप में तुष्ट किए गए, प्रधान रूप से नहीं; इसलिए जो इस पूजा को प्रधान रूप से नहीं करता वह अधिकार के बन्धन से बँध जाता है। इसलिए उसे हर तरह से करे। वहाँ स्वस्तिक मण्डल बनाकर, उस पर सोने का पीठ रखकर, उस पर सम्पूर्ण अध्वा की पूजा करके, उस पीठ पर गुरु को बिठाकर, उनकी पूजा करके, तर्पण, भोजन, दक्षिणा और अपने आप को निवेदित करके, नैवेद्य का उच्छिष्ट माँगकर, प्रणाम करके, स्वयं खाकर, चक्र-पूजा करे। यह गुरुपूजा की विधि है।

पदपाठ सर्व-याग-अन्तेषु उपसंहृते यागे — हर याग के अन्त में, याग समाप्त हो जाने पर · अपरेद्युः गुरु-पूजां कुर्यात् — अगले दिन गुरु-पूजा करे · पूर्वं हि सः विधि-अङ्गतया तोषितः — क्योंकि पहले वे केवल विधि के अंग के रूप में तुष्ट किए गए · न तु प्राधान्येन — प्रधान रूप से नहीं · इति तां प्राधान्येन अकुर्वन् — इसलिए जो उसे प्रधान रूप से नहीं करता · अधिकार-बन्धेन बद्धः भवति — वह अधिकार के बन्धन से बँध जाता है · इति तां सर्वथा चरेत् — इसलिए उसे हर तरह से करे · तत्र स्वास्तिकं मण्डलं कृत्वा — वहाँ स्वस्तिक मण्डल बनाकर · तत्र सौवर्णं पीठं दत्त्वा — उस पर सोने का पीठ रखकर · तत्र समस्तम् अध्वानं पूजयित्वा — उस पर सम्पूर्ण अध्वा की पूजा करके · तत्-पीठं तेन अधिष्ठाप्य — उस पीठ पर उन्हें

बिठाकर · **तस्मै पूजां कृत्वा** — उनकी पूजा करके · **तर्पणं भोजनं दक्षिणाम् आत्मानम् इति निवेद्य** — तर्पण, भोजन, दक्षिणा और अपने आप को निवेदित करके · **नैवेद्य-उच्छिष्टं प्रार्थ्य** — नैवेद्य का उच्छिष्ट माँगकर · **वन्दित्वा स्वयं प्राश्य** — प्रणाम करके, स्वयं खाकर · **चक्र-पूजां कुर्यात्** — चक्र-पूजा करे · **इति गुरु-पूजा-विधिः** — यह गुरुपूजा की विधि है

नित्यं नैमित्तिकं कर्म कुर्वञ्शाठ्यविवर्जितः ।
विनापि ज्ञानयोगाभ्यां चर्यामात्रेण मुच्यते ॥ ५५

जो कपट से रहित होकर नित्य और नैमित्तिक कर्म करता है, वह ज्ञान और योग के बिना भी केवल चर्या से मुक्त हो जाता है।

पदपाठ **नित्यम्** — नित्य · **नैमित्तिकम्** — नैमित्तिक · **कर्म** — कर्म · **कुर्वन्** — करता हुआ · **शाठ्य-विवर्जितः** — कपट से रहित · **विना** — बिना · **अपि** — भी · **ज्ञान-योगाभ्याम्** — ज्ञान और योग के · **चर्या-मात्रेण** — केवल चर्या से · **मुच्यते** — मुक्त हो जाता है

सिवणाहु सच्छन्दु
तच्चकोणविअप्प इच्छ ।
चरि आमित्ति णजिणजण
हुकिअ भवरोअ चिइच्छ ॥ ५५.१६

स्वच्छन्द शिवनाथ तत्त्वों के अनेक रूपों की इच्छा करता है। जो लोग और उपायों से जीत नहीं सकते, उनके लिए उसने जो चर्या कही है, वह भव-रोग की चिकित्सा बनाई गई है।

पदपाठ **सिवणाहु सच्छन्दु** — शिवनाथ, जो स्वच्छन्द है · **तच्चकोणविअप्प इच्छ** — तत्त्वों के अनेक रूपों की इच्छा करता है · **चरि आमित्ति** — चर्या जो उसने कही है · **णजिणजण** — जो लोग और उपायों से जीत नहीं सकते, उनके लिए · **हुकिअ** — बनाई गई है · **भवरोअ चिइच्छ** — भव-रोग की चिकित्सा

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे शेषवर्तनप्रकाशनं नाम विंशमाह्निकम् ॥ २० ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में शेषवर्तनप्रकाशन नामक बीसवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

एकविंशमाह्निकम्

आगमप्रामाण्यप्रकाशनम्

नित्य और नैमित्तिक कर्म बताने के बाद यह छोटा आह्निक पूछता है कि शास्त्र पर भरोसा क्यों किया जाए। उत्तर ग्रन्थ के पहले सिद्धान्त से शुरू होता है: सारा विश्व संवित् है, संवित् विमर्श-रूप है, और विमर्श शब्दन-रूप है। इसलिए जगत् की हर वस्तु का और कर्म-फल के विचित्र सम्बन्ध का जो विमर्श है, वही शास्त्र है; शास्त्र का पूरा समूह परमेश्वर के स्वभाव से भिन्न नहीं, एक ही फल देता है और एक ही तरह के अधिकारी के लिए है। लोग जो किसी एक भाग में — वेद, सांख्य, शैवसिद्धान्त, मतङ्ग, या बहुत कम लोग त्रिक में — टिक जाते हैं, वह केवल परमेश्वर की नियति-शक्ति की महिमा से है; कुछ क्रम से चढ़ते हैं, कुछ छलाँग लगाते हैं। भेद मानने पर भी सब शास्त्रों का प्रामाण्य बना रहता है, क्योंकि प्रामाण्य के आधार सबमें समान हैं और उनका आपसी विरोध विषय-भेद के कारण कुछ नहीं बिगाड़ता। फिर गहरी बात: प्रत्यक्ष, अन्वय-व्यतिरेक आदि सब प्रमाण प्रसिद्धि पर टिके हैं — बच्चा भूख लगने पर प्रसिद्धि से ही खाता है, और मनुष्य दूसरों के कहने पर किसी चीज़ को चाँदी मानता है। प्रसिद्धि ही आगम है, और वह अनेक प्रकार की है, अनेक फलों वाली; मनुष्य जैसा बनने वाला है, वैसी ही प्रसिद्धि को हृदय में बिठा लेता है। इसलिए कोई शास्त्र से बच नहीं सकता, और आश्रय लेने योग्य वही शास्त्र है जिसका फल सबसे ऊँचा है। अन्तिम श्लोक विवेकी जनों से कहता है कि उस अनुत्तर शास्त्र का आश्रय लें जिसका सार सर्वमय चित् का विमर्श है; देशी भाषा का पद्य कहता है कि अपने दृढ़ निश्चय पर निःशंक होकर जीने से मनुष्य परमशिव हो जाता है।

एवं समस्तं नित्यं नैमित्तिकं कर्म निरूपितम् ।
अधुना अस्यैव आगमस्य प्रामाण्यम् उच्यते । ५६.१

इस प्रकार सब नित्य और नैमित्तिक कर्म बताया गया। अब इसी आगम का प्रामाण्य कहा जाता है।

पदपाठ एवं समस्तं नित्यं नैमित्तिकं कर्म — इस प्रकार सब नित्य और नैमित्तिक कर्म · निरूपितम् — बताया गया · अधुना अस्य एव आगमस्य — अब इसी आगम का · प्रामाण्यम् उच्यते — प्रामाण्य कहा जाता है

तत्र संविन्मात्रमये विश्वस्मिन् संविदि च विमर्शात्मिकायां, विमर्शस्य च शब्दनात्मकतायां सिद्धायां, सकलजगन्निष्ठवस्तुनः तद्गतस्य च कर्मफलसंबन्धवैचित्र्यस्य यत् विमर्शनं तदेव शास्त्रम्—इति परमेश्वरस्वभावाभिन्न एव समस्तः शास्त्रसंदर्भो वस्तुत एकफलप्रापकः एकाधिकार्युद्देशेनैव, तत्र तु परमेश्वरनियतिशक्तिमहिम्नैव भागे भागे रूढिः लोकानाम् इति । ५६.२

यहाँ विश्व केवल संवित् से बना है; संवित् विमर्श-रूप है; और यह सिद्ध है कि विमर्श शब्दन-रूप है। इसलिए सारे जगत् की हर वस्तु का और उसमें रहने वाले कर्म-फल के विचित्र सम्बन्ध का जो विमर्श है, वही शास्त्र है। अतः शास्त्र का पूरा समूह परमेश्वर के स्वभाव से अभिन्न ही है; वास्तव में वह एक ही फल देता है और एक ही अधिकारी को लक्ष्य करके है। पर उसमें लोग अलग-अलग भाग में टिक जाते हैं, केवल परमेश्वर की नियति-शक्ति की महिमा से।

पदपाठ तत्र — यहाँ · संवित्-मात्र-मये विश्वस्मिन् — जब विश्व केवल संवित् से बना है · संविदि च विमर्श-आत्मिकायाम् — और संवित् विमर्श-रूप है · विमर्शस्य च शब्दन-आत्मकतायां सिद्धायाम् — और यह सिद्ध है कि विमर्श शब्दन-रूप है · सकल-जगत्-निष्ठ-वस्तुनः — सारे जगत् की हर वस्तु का · तत्-गतस्य च कर्म-फल-संबन्ध-वैचित्र्यस्य — और उसमें रहने वाले कर्म-फल के विचित्र सम्बन्ध का · यत् विमर्शनं तत् एव शास्त्रम् — जो विमर्श है, वही शास्त्र है · इति — इसलिए · परमेश्वर-स्वभाव-अभिन्नः एव — परमेश्वर के स्वभाव से अभिन्न ही · समस्तः शास्त्र-संदर्भः — शास्त्र का पूरा समूह है · वस्तुतः एक-फल-प्रापकः — वास्तव में एक ही फल देने वाला · एक-अधिकारि-उद्देशेन एव — और एक ही अधिकारी को लक्ष्य करके है · तत्र तु — पर उसमें · परमेश्वर-नियति-शक्ति-महिम्ना एव — केवल परमेश्वर की नियति-शक्ति की महिमा से · भागे भागे रूढिः लोकानाम् — लोग अलग-अलग भाग में टिक जाते हैं · इति — ऐसा

केचित् मायोचितभेदपरामर्शात्मनि वेदागमादिशास्त्रे रूढाः, अन्ये तथाविध एव मोक्षाभिमानेन सांख्यवैष्णवशास्त्रादौ, परे तु विविक्तशिवस्वभावामर्शनसारे शैवसिद्धान्तादौ, अन्ये सर्वमयपरमेश्वरतामर्शनसारे मतङ्गादिशास्त्रे, केचित् तु विरलविरलाः ५६.३

समस्तावच्छेदवन्ध्यस्वातन्त्र्यानन्दपरमार्थसंविन्मयपरमेश्वरस्वरूपामर्शनात्मनि श्रीत्रिकशास्त्रक्रमे, केचित् तु पूर्वपूर्वत्यागक्रमेण लङ्घनेन वा—इत्येवम् एकफलसिद्धिः एकस्मादेव आगमात् ।

कुछ लोग वेद, आगम आदि शास्त्र में टिके हैं, जो माया के योग्य भेद का परामर्श है। दूसरे मोक्ष के अभिमान से वैसे ही शास्त्र में — सांख्य, वैष्णव आदि शास्त्र में — टिके हैं। और दूसरे शैवसिद्धान्त आदि में, जिसका सार शिव के पृथक् स्वभाव का विमर्श है। अन्य मतङ्ग आदि शास्त्र में, जिसका सार सर्वमय परमेश्वरता का विमर्श है। और कुछ, बहुत ही विरले, श्रीत्रिकशास्त्र के क्रम में हैं, जो परमेश्वर के स्वरूप का विमर्श है — वह संवित् जिसका परमार्थ स्वातन्त्र्य और आनन्द है, हर सीमा से रहित। कुछ पहले-पहले को क्रम से छोड़ते हुए वहाँ पहुँचते हैं, कुछ छलाँग लगाकर। इस प्रकार एक ही आगम से एक ही फल सिद्ध होता है।

पदपाठ केचित् — कुछ लोग · माया-उचित-भेद-परामर्श-आत्मनि — जो माया के योग्य भेद का परामर्श है · वेद-आगम-आदि-शास्त्रे रूढाः — वेद, आगम आदि शास्त्र में टिके हैं · अन्ये तथाविधे एव — दूसरे, वैसे ही शास्त्र में · मोक्ष-अभिमानेन — मोक्ष के अभिमान से · सांख्य-वैष्णव-शास्त्र-आदौ — सांख्य, वैष्णव आदि शास्त्र में · परे तु — और दूसरे · विविक्त-शिव-स्वभाव-आमर्शन-सारे — जिसका सार शिव के पृथक् स्वभाव का विमर्श है · शैव-सिद्धान्त-आदौ — शैवसिद्धान्त आदि में · अन्ये — अन्य · सर्वमय-परमेश्वरता-आमर्शन-सारे — जिसका सार सर्वमय परमेश्वरता का विमर्श है · मतङ्ग-आदि-शास्त्रे — मतङ्ग आदि शास्त्र में · केचित् तु विरल-विरलाः — और कुछ, बहुत ही विरले · समस्त-अवच्छेद-वन्ध्य-स्वातन्त्र्य-आनन्द-परमार्थ-संवित्-मय-परमेश्वर-स्वरूप-आमर्शन-आत्मनि — जो परमेश्वर के स्वरूप का विमर्श है — वह संवित् जिसका परमार्थ स्वातन्त्र्य और आनन्द है, हर सीमा से रहित · श्री-त्रिक-शास्त्र-क्रमे —

श्रीत्रिकशास्त्र के क्रम में · केचित् तु पूर्व-पूर्व-त्याग-क्रमेण — कुछ पहले-पहले को क्रम से छोड़ते हुए · लङ्घनेन वा — या छलाँग लगाकर · इति एवम् — इस प्रकार · एक-फल-सिद्धिः एकस्मात् एव आगमात् — एक ही आगम से एक ही फल सिद्ध होता है

भेदवादेऽपि समस्तागमानाम् एकेश्वरकार्यत्वेऽपि प्रामाण्यं तावत् अवस्थितम्, प्रामाण्यनिबन्धनस्य एकदेशसंवादस्य अविगीततायाः अनिदन्ताप्रवृत्तेश्च तुल्यत्वात्, परस्परबाधो विषयभेदात् अकिंचित्करः । ५६.४

भेद मानने पर भी, और सब आगमों के एक ही ईश्वर की रचना होने पर भी, उनका प्रामाण्य तो बना रहता है — क्योंकि प्रामाण्य का आधार सबमें समान है: एक अंश में संवाद, निर्विवाद होना, और सामने के किसी "यह" के बिना प्रवृत्त होना। उनका आपसी विरोध, विषय भिन्न होने से, कुछ नहीं बिगाड़ता।

पदपाठ भेद-वादे अपि — भेद मानने पर भी · समस्त-आगमानाम् — सब आगमों का · एक-ईश्वर-कार्यत्वे अपि — एक ही ईश्वर की रचना होने पर भी · प्रामाण्यं तावत् अवस्थितम् — प्रामाण्य तो बना रहता है · प्रामाण्य-निबन्धनस्य — क्योंकि प्रामाण्य का आधार · एक-देश-संवादस्य — एक अंश में संवाद · अविगीततायाः — निर्विवाद होना · अनिदन्ता-प्रवृत्तेः च — और सामने के किसी "यह" के बिना प्रवृत्त होना · तुल्यत्वात् — सबमें समान है · परस्पर-बाधः — उनका आपसी विरोध · विषय-भेदात् — विषय भिन्न होने से · अकिंचित्करः — कुछ नहीं बिगाड़ता

ब्रह्महननतन्निषेधवत् संस्कारभेदः संस्कारातिशयः तदभावे क्वचित् अनधिकृतत्वम् इति समानम्—आश्रमभेदवत्, फलोत्कर्षाच्च उत्कर्षः—तत्रैव उपनिषद्भागवत्, भिन्नकर्तृकत्वेऽपि सर्वसर्वज्ञकृतत्वमत्र संभाव्यते—तदुक्ततदतिरिक्तयुक्तार्थयोगात्, नित्यत्वेऽपि आगमानां प्रसिद्धिः तावत् अवश्योपगम्या—अन्वयव्यतिरेकाध्यक्षादीनां तत्प्रामाण्यस्य तन्मूलत्वात्, 'सत्यं रजतं पश्यामि' इति हि सौवर्णिकादिपरप्रसिद्ध्यैव, प्रसिद्धिरेव आगमः सा कांचित् दृष्टफला 'बुभुक्षितो भुङ्क्ते' इति बालस्य प्रसिद्धित एव तत्र तत्र प्रवृत्तिः नान्वयव्यतिरेकाभ्यां—तदा तयोः अभावात्, यौवनावस्थायां तद्भावोऽपि अकिंचित्करः, प्रसिद्धिं तु मूलीकृत्य सोऽस्तु कस्मैचित् कार्याय, ५६.५ काचित् अदृष्ट-वैदेह्य-प्रकृतिलय-पुरुषकैवल्यफलदा, काचित् शिवसमानत्वफलदा, काचित् ऐक्यपर्यवसायिनी, सा च प्रत्येकम् अनेकविधा—इत्येवं बहुतरप्रसिद्धिपूर्णे जगति यो यादृशो भविष्यन् स तादृशीमेव प्रसिद्धिं बलादेव हृदयपर्यवसायिनीम् अभिमन्यते—इति रिक्तस्य जन्तोः अतिरिक्ता वाचोयुक्तिः, तासां कांचन प्रसिद्धिं प्रमाणीकुर्वता अभ्युपगन्तव्यमेव आगमप्रामाण्यम्, इति स आगम आश्रयणीयो यत्र उत्कृष्टं फलम्, इत्यलमन्येन ।

जैसे ब्रह्महत्या और उसके निषेध में, वैसे ही संस्कार का भेद है; संस्कार का उत्कर्ष है; और उसके बिना कहीं अधिकार नहीं होता। यह सब जगह समान है, जैसे आश्रमों के भेद में। और फल के उत्कर्ष से शास्त्र का उत्कर्ष है, जैसे वेद में ही उपनिषद्-भाग। कर्ता भिन्न होने पर भी यहाँ यह सम्भव है कि सब सर्वज्ञों की रचना हैं, क्योंकि उनके कहे में उससे आगे भी युक्त अर्थ जुड़ा है। और आगमों के नित्य होने पर भी प्रसिद्धि तो माननी ही होगी, क्योंकि अन्वय-व्यतिरेक, प्रत्यक्ष आदि का प्रामाण्य उसी

पर टिका है। क्योंकि "मैं सच्ची चाँदी देखता हूँ" — यह सुनार आदि दूसरों की प्रसिद्धि से ही है। प्रसिद्धि ही आगम है। उसमें कोई दृष्ट फल वाली है: "भूखा खाता है" — बच्चा जहाँ-तहाँ प्रसिद्धि से ही प्रवृत्त होता है, अन्वय-व्यतिरेक से नहीं, क्योंकि तब वे दोनों नहीं होते; और जवानी में उनका होना भी कुछ नहीं करता। पर प्रसिद्धि को मूल बनाकर वह किसी काम के लिए हो। कोई प्रसिद्धि अदृष्ट फल, विदेहता, प्रकृतिलय या पुरुष का कैवल्य फल देती है; कोई शिव-समानता फल देती है; कोई ऐक्य में जा टिकती है; और इनमें हर एक अनेक प्रकार की है। इस प्रकार बहुत-सी प्रसिद्धियों से भरे जगत् में जो जैसा बनने वाला है, वह वैसी ही प्रसिद्धि को बलपूर्वक हृदय में बैठी हुई मान लेता है। इसलिए प्रसिद्धि से खाली जीव के लिए वचन की युक्ति व्यर्थ है; और जो उनमें से किसी प्रसिद्धि को प्रमाण मानता है, उसे आगम का प्रामाण्य मानना ही होगा। इसलिए उस आगम का आश्रय लेना चाहिए जिसका फल सबसे ऊँचा है। बाकी की बात रहने दें।

पदपाठ ब्रह्म-हनन-तत्-निषेधवत् — जैसे ब्रह्महत्या और उसके निषेध में · संस्कार-भेदः — संस्कार का भेद है · संस्कार-अतिशयः — संस्कार का उत्कर्ष है · तत्-अभावे क्वचित् अनधिकृतत्वम् — और उसके बिना कहीं अधिकार नहीं होता · इति समानम् — यह सब जगह समान है · आश्रम-भेदवत् — जैसे आश्रमों के भेद में · फल-उत्कर्षात् च उत्कर्षः — और फल के उत्कर्ष से उत्कर्ष है · तत्र एव उपनिषद्-भागवत् — जैसे वेद में ही उपनिषद्-भाग · भिन्न-कर्तृकत्वे अपि — कर्ता भिन्न होने पर भी · सर्व-सर्वज्ञ-कृतत्वम् अत्र संभाव्यते — यहाँ यह सम्भव है कि सब सर्वज्ञों की रचना हैं · तत्-उक्त-तत्-अतिरिक्त-युक्त-अर्थ-योगात् — क्योंकि उनके कहे में उससे आगे भी युक्त अर्थ जुड़ा है · नित्यत्वे अपि आगमानाम् — आगमों के नित्य होने पर भी · प्रसिद्धिः तावत् अवश्य-उपगम्या — प्रसिद्धि तो माननी ही होगी · अन्वय-व्यतिरेक-अध्यक्ष-आदीनाम् — अन्वय-व्यतिरेक, प्रत्यक्ष आदि का · तत्-प्रामाण्यस्य तत्-मूलत्वात् — क्योंकि उनका प्रामाण्य उसी पर टिका है · 'सत्यं रजतं पश्यामि' इति हि — क्योंकि "मैं सच्ची चाँदी देखता हूँ" · सौवर्णिक-आदि-पर-प्रसिद्ध्या एव — सुनार आदि दूसरों की प्रसिद्धि से ही है · प्रसिद्धिः एव आगमः — प्रसिद्धि ही आगम है · सा काचित् दृष्ट-फला — उसमें कोई दृष्ट फल वाली है · 'बुभुक्षितः भुङ्क्ते' इति — "भूखा खाता है" · बालस्य प्रसिद्धितः एव तत्र तत्र प्रवृत्तिः — बच्चा जहाँ-तहाँ प्रसिद्धि से ही प्रवृत्त होता है · न अन्वय-व्यतिरेकाभ्याम् — अन्वय-व्यतिरेक से नहीं · तदा तयोः अभावात् — क्योंकि तब वे दोनों

नहीं होते · यौवन-अवस्थायां तत्-भावः अपि अकिंचित्करः — और जवानी में उनका होना भी कुछ नहीं करता · प्रसिद्धिं तु मूलीकृत्य — पर प्रसिद्धि को मूल बनाकर · सः अस्तु कस्मैचित् कार्याय — वह किसी काम के लिए हो · काचित् अदृष्ट-वैदेह्य-प्रकृतिलय-पुरुषकैवल्य-फलदा — कोई अदृष्ट फल, विदेहता, प्रकृतिलय या पुरुष का कैवल्य फल देती है · काचित् शिव-समानत्व-फलदा — कोई शिव-समानता फल देती है · काचित् ऐक्य-पर्यवसायिनी — कोई ऐक्य में जा टिकती है · सा च प्रत्येकम् अनेकविधा — और इनमें हर एक अनेक प्रकार की है · इति एवं बहुतर-प्रसिद्धि-पूर्णे जगति — इस प्रकार बहुत-सी प्रसिद्धियों से भरे जगत् में · यः यादृशः भविष्यन् — जो जैसा बनने वाला है · सः तादृशीम् एव प्रसिद्धिम् — वह वैसी ही प्रसिद्धि को · बलात् एव हृदय-पर्यवसायिनीम् अभिमन्यते — बलपूर्वक हृदय में बैठी हुई मान लेता है · इति रिक्तस्य जन्तोः — इसलिए प्रसिद्धि से खाली जीव के लिए · अतिरिक्ता वाचोयुक्तिः — वचन की युक्ति व्यर्थ है · तासां कांचन प्रसिद्धिं प्रमाणीकुर्वता — जो उनमें से किसी प्रसिद्धि को प्रमाण मानता है · अभ्युपगन्तव्यम् एव आगम-प्रामाण्यम् — उसे आगम का प्रामाण्य मानना ही होगा · इति सः आगमः आश्रयणीयः — इसलिए उस आगम का आश्रय लेना चाहिए · यत्र उत्कृष्टं फलम् — जिसका फल सबसे ऊँचा है · इति अलम् अन्येन — बाकी की बात रहने दें

संवित्प्रकाशपरमार्थतया यथैव
भात्यामृशत्यपि तथेति विवेचयन्तः ।
सन्तः समस्तमयचित्प्रतिभाविमर्श-
सारं समाश्रयत शास्त्रमनुत्तरात्म ॥ ५६

सज्जनो, यह विवेक करते हुए कि संवित् का प्रकाश ही परमार्थ होने से कोई वस्तु जैसे चमकती है वैसे ही विमर्श में आती है — उस शास्त्र का आश्रय लो जिसका स्वरूप अनुत्तर है, जिसका सार सर्वमय चित् की प्रतिभा का विमर्श है।

पदपाठ संवित्-प्रकाश-परमार्थतया — संवित् का प्रकाश ही परमार्थ होने से · यथा — जैसे · एव — ही · भाति — कोई वस्तु चमकती है · आमृशति — वह विमर्श में आती है · अपि — भी · तथा — वैसे · इति — ऐसा · विवेचयन्तः — विवेक करते हुए · सन्तः — सज्जनो · समस्तमय-चित्-प्रतिभा-विमर्श-सारम् — जिसका सार सर्वमय चित् की प्रतिभा का विमर्श है · समाश्रयत — आश्रय लो · शास्त्रम् — शास्त्र का · अनुत्तर-आत्म — जिसका स्वरूप अनुत्तर है

जिस्स दढपसिद्धिघडिए
ववहारे सोइ अस्मि णीसंको ।
तह होहि जहुत्तिण
पसिद्धिरूढिए परमसिवो ॥ ५६.६

जो अपनी दृढ़ प्रसिद्धि से बने व्यवहार में निःशंक होकर रहता है — वह यहाँ कही हुई प्रसिद्धि में जड़ जमाकर परमशिव हो जाता है।

पदपाठ जिस्स दढपसिद्धिघडिए ववहारे — जिसके दृढ़ प्रसिद्धि से बने व्यवहार में · सोइ अस्मि णीसंको — वह यहाँ निःशंक है · तह होहि — तब वह हो जाता है · जहुत्तिण पसिद्धिरूढिए — कही हुई प्रसिद्धि में जड़ जमाने से · परमसिवो — परमशिव

निजदृढप्रसिद्धिघटिते
व्यवहारे लोक अस्ति निःशङ्कः ।
तदा भवति जनोत्तीर्ण-
प्रसिद्धिरूढः परमशिवः ॥ ५६.७

मनुष्य अपनी दृढ़ प्रसिद्धि से बने व्यवहार में निःशंक होता है। तब साधारण लोगों से ऊपर उठी प्रसिद्धि में जड़ जमाकर वह परमशिव हो जाता है।

पदपाठ निज-दृढ-प्रसिद्धि-घटिते — अपनी दृढ़ प्रसिद्धि से बने · व्यवहारे — व्यवहार में · लोकः — मनुष्य · अस्ति — है · निःशङ्कः — निःशंक · तदा — तब · भवति — हो जाता है · जन-उत्तीर्ण-प्रसिद्धि-रूढः — साधारण लोगों से ऊपर उठी प्रसिद्धि में जड़ जमाया हुआ · परमशिवः — परमशिव

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे आगमप्रामाण्यप्रकाशनं नाम एकविंशमाह्निकम् ॥ २१ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में आगमप्रामाण्यप्रकाशन नामक इक्कीसवाँ आह्निक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

द्वाविंशमाह्निकम्

कुलयागप्रकाशनम्

अन्तिम आह्निक कौल पद्धति से पूरी उपासना सिखाता है, उन अधिकारियों के लिए जिनमें वैसी दृढ़ वासना पहले से जग चुकी है। आरम्भ शास्त्र के इस वचन से है कि आनन्द ही ब्रह्म है, जो देह में तीन स्थानों पर टिका है, और जो उसे छोड़ते हैं तथा जो चक्र को कृत्रिम आहार से पूजते हैं, दोनों घोर नरक में जाते हैं — इसलिए कौल स्थिति को अपनाना चाहिए। कुलयाग छह प्रकार का है: बाहर, शक्ति में, अपनी देह में, यामल में, प्राण में और संवित् में; आगे-आगे का श्रेष्ठ है, और पहले-पहले का उसकी रुचि जगाने के लिए है। बाह्य याग में स्नान आदि की अपेक्षा नहीं: पूर्ण आनन्द में विश्रान्ति से ही शुद्धि है। मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्य और देह पर सत्ताईस बार मन्त्र उच्चारण करके सारा विश्व-अध्वा — अपर में सत्ताईस तत्त्व, परापर में ब्रह्म के सत्ताईस धर्म, पर में सत्ताईस शक्तियाँ — संवित् की शिखा में व्याप्त हो जाता है और उसे ऐसा बाँध देता है कि वह परमशिव के सिवा कहीं नहीं दौड़ती। उसी एक उच्चारण से अर्घपात्र, स्थण्डिल, देह के चक्र और त्रिशूल-आसन सब भर जाते हैं; संवित् और विश्व एक-दूसरे को संपुटित करते हैं, और यही संपुटीभाव संवित् का तत्त्व है। शक्ति में और अपनी देह में याग उसी व्याप्ति से होता है। फिर तीस श्लोक यामल-याग बताते हैं: शक्ति का लक्षण अभेद है, दोनों एक-दूसरे को पूजते और तृप्त करते हैं, इन्द्रियों के अनुचक्र मध्य के संविच्चक्र में लीन होते हैं, शान्त और उदित का युगल एक साथ उदय होता है, और तीन प्रकार का विसर्ग — शान्त, उदित और उनका संघट्ट — वह परम कौल है जिससे मन्त्र, मुद्रा और आठ प्रकार का नादभैरव अपना वीर्य पाते हैं और जीवन्मुक्ति मिलती है। प्राण-याग और संवित्-याग संक्षेप में कहे गए हैं; जिस शिष्य का हृदय ऐसा याग देखकर पवित्र हो जाए, उसे अवलोकन से दीक्षा दी जाती है; और गुरु-शरीर में सातवाँ कुलयाग, पहले यागों के साथ एक बार भी किया जाए तो सब पूरा कर देता है। अन्त के दो श्लोक कश्मीर के अभिनवगुप्त का नाम लेते हैं, जिन्होंने शम्भुनाथ से त्रिक की परम्परा पाकर यह तन्त्रसार रचा ताकि सब लोग शिव तक पहुँचें।

अथ समस्ता इयम् उपासा समुन्मिषत्तादृशदृढवासनारूढान् अधिकारिणः प्रति श्रीमत्कौलिकप्रक्रियया निरूप्यते, तत्र उक्तं योगसंचारादौ

'आनन्दं ब्रह्म तद्देहे त्रिधौष्ठ्यान्त्यव्यवस्थितम् ।
अब्रह्मचारिणस्तस्य त्यागादानन्दवर्जिताः ॥ ५७.१
आनन्दकृत्रिमाहारवर्जं चक्रस्य याजकाः ।
द्वयेऽपि नरके घोरे तस्मादेनां स्थितिं भजेत् ॥'

अब यह पूरी उपासना श्रीमत् कौलिक प्रक्रिया से उन अधिकारियों के लिए बताई जाती है जिनमें वैसी दृढ़ वासना जग चुकी है। इस विषय में योगसंचार आदि में कहा है: "आनन्द ब्रह्म है, जो देह में तीन स्थानों पर, ओष्ठ में और अन्त्य स्थान में टिका है। जो ब्रह्म में नहीं चलते, वे उसे छोड़ने से आनन्द से वंचित हैं; और जो आनन्द के बिना कृत्रिम आहार से चक्र को पूजते हैं — दोनों घोर नरक में जाते हैं। इसलिए इस स्थिति को अपनाए।"

पदपाठ अथ समस्ता इयम् उपासा — अब यह पूरी उपासना · समुन्मिषत्-तादृश-दृढ-वासना-रूढान् अधिकारिणः प्रति — उन अधिकारियों के लिए जिनमें वैसी दृढ़ वासना जग चुकी है · श्रीमत्-कौलिक-प्रक्रियया निरूप्यते — श्रीमत् कौलिक प्रक्रिया से बताई जाती है · तत्र उक्तं योगसंचार-आदौ — इस विषय में योगसंचार आदि में कहा है · आनन्दं ब्रह्म — आनन्द ब्रह्म है · तत्-देहे त्रिधा ओष्ठ्य-अन्त्य-व्यवस्थितम् — देह में तीन स्थानों पर, ओष्ठ में और अन्त्य स्थान में टिका है · अब्रह्मचारिणः तस्य त्यागात् आनन्द-वर्जिताः — जो ब्रह्म में नहीं चलते, उसे छोड़ने से आनन्द से वंचित हैं · आनन्द-कृत्रिम-आहार-वर्जं चक्रस्य याजकाः — और जो आनन्द के बिना कृत्रिम आहार से चक्र को पूजते हैं · द्वये अपि नरके घोरे — दोनों घोर नरक में जाते हैं · तस्मात् एनां स्थितिं भजेत् — इसलिए इस स्थिति को अपनाए

तदनया स्थित्या कुलयागः, सच षोढा—बाह्ये शक्तौ स्वदेहे यामले प्राणे संविदि च इति ।

तत्र च उत्तर उत्तर उत्कृष्टः, पूर्वः पूर्वस्तद्रुच्यर्थम् । ५७.२

सिद्धिकामस्य द्वितीयतुर्यपञ्चमाः सर्वथा निर्वर्त्याः, षष्ठस्तु मुमुक्षोः मुख्यः, तस्यापि द्वितीयाद्या नैमित्तिके यथासंभवम् अनुष्ठेया एव विधिपूरणार्थं च ।

इसलिए इस स्थिति से कुलयाग होता है, और वह छह प्रकार का है: बाहर, शक्ति में, अपनी देह में, यामल में, प्राण में और संवित् में। इनमें आगे-आगे का श्रेष्ठ है, और पहले-पहले का उसकी रुचि जगाने के लिए है। सिद्धि चाहने वाले के लिए दूसरा, चौथा और पाँचवाँ हर तरह करने योग्य हैं; पर मुमुक्षु के लिए छठा मुख्य है, फिर भी उसके लिए भी दूसरा आदि नैमित्तिक में यथासम्भव और विधि पूरी करने के लिए करने ही चाहिए।

पदपाठ तत् अनया स्थित्या कुलयागः — इसलिए इस स्थिति से कुलयाग होता है · स च षोढा — और वह छह प्रकार का है · बाह्ये शक्तौ स्वदेहे यामले प्राणे संविदि च इति — बाहर, शक्ति में, अपनी देह में, यामल में, प्राण में और संवित् में · तत्र च उत्तरः उत्तरः उत्कृष्टः — इनमें आगे-आगे का श्रेष्ठ है · पूर्वः पूर्वः तत्-रुचि-अर्थम् — पहले-पहले का उसकी रुचि जगाने के लिए है · सिद्धि-कामस्य — सिद्धि चाहने वाले के लिए · द्वितीय-तुर्य-पञ्चमाः सर्वथा निर्वर्त्याः — दूसरा, चौथा और पाँचवाँ हर तरह करने योग्य हैं · षष्ठः तु मुमुक्षोः मुख्यः — पर मुमुक्षु के लिए छठा मुख्य है · तस्य अपि द्वितीय-आद्याः — उसके लिए भी दूसरा आदि · नैमित्तिके यथासंभवम् अनुष्ठेयाः एव — नैमित्तिक में यथासम्भव करने ही चाहिए · विधि-पूरण-अर्थं च — और विधि पूरी करने के लिए

तत्र बाह्यं स्थण्डिलम्, आनन्दपूर्णं वीरपात्रं, अरुणः पटः, पूर्वोक्तमपि वा लिङ्गादि ।

तत्र स्नानादिकर्तव्यानपेक्षयैव पूर्णानन्दविश्रान्त्यैव लब्धशुद्धिः प्रथमं प्राणसंविद्देहैकीभावं भावयित्वा संविदश्च परमशिवरूपत्वात् सप्तविंशतिवारं ५७.३ **मन्त्रम् उच्चार्य मूर्ध-वक्त्र-हृद्गुह्य-मूर्तिषु अनुलोमविलोमाभ्यां विश्वाध्वपरिपूर्णता परमेश्वरे अपरत्वे परापरत्वे परत्वेऽपि च ।**

इनमें बाह्य है स्थण्डिल, आनन्द से भरा वीरपात्र, लाल वस्त्र, या पहले कहे हुए लिङ्ग आदि। वहाँ स्नान आदि कर्तव्यों की अपेक्षा के बिना ही, पूर्ण आनन्द में विश्रान्ति से ही शुद्धि पाकर, पहले प्राण, संवित् और देह को एक भावकर, और संवित् परमशिव-रूप है इसलिए, मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्य और देह पर अनुलोम और विलोम क्रम से सत्ताईस बार मन्त्र उच्चारण करे। इससे सारा विश्व-अध्वा परमेश्वर में अपर, परापर और पर में भी परिपूर्ण हो जाता है।

पदपाठ तत्र बाह्यं स्थण्डिलम् — इनमें बाह्य है स्थण्डिल · आनन्द-पूर्णं वीर-पात्रम् — आनन्द से भरा वीरपात्र · अरुणः पटः — लाल वस्त्र · पूर्व-उक्तम् अपि वा लिङ्ग-आदि — या पहले कहे हुए लिङ्ग आदि · तत्र स्नान-आदि-कर्तव्य-अनपेक्षया एव — वहाँ स्नान आदि कर्तव्यों की अपेक्षा के बिना ही · पूर्ण-आनन्द-विश्रान्त्या एव लब्ध-शुद्धिः — पूर्ण आनन्द में विश्रान्ति से ही शुद्धि पाकर · प्रथमं प्राण-संवित्-देह-एकीभावं भावयित्वा — पहले प्राण, संवित् और देह को एक भावकर · संविदः च परमशिव-रूपत्वात् — और संवित् परमशिव-रूप है, इसलिए · सप्तविंशति-वारं मन्त्रम् उच्चार्य — सत्ताईस बार मन्त्र उच्चारण करके · मूर्ध-वक्त्र-हृद्-गुह्य-मूर्तिषु — मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्य और देह पर · अनुलोम-विलोमाभ्याम् — अनुलोम और विलोम क्रम से · विश्व-अध्व-परिपूर्णता परमेश्वरे — सारा विश्व-अध्वा परमेश्वर में परिपूर्ण हो जाता है · अपरत्वे परापरत्वे परत्वे अपि च — अपर, परापर और पर में भी

तथाहि—माया-पुं-प्रकृति-गुण-धी-प्रभृति धरान्तं सप्तविंशतितत्त्वानि—कलादीनां तत्रैव अन्तर्भावात्, विद्याशक्तावपि परापरत्वे ब्रह्मपञ्चकस्य सद्यस्त्वाजातत्वभवोद्भवत्वादीनां धर्माणां सप्तविंशतिरूपत्वमेव उक्तं श्रीमल्लकुलेशादिपादैः । ५७.४

क्योंकि माया, पुरुष, प्रकृति, गुण, बुद्धि आदि से लेकर पृथ्वी तक सत्ताईस तत्त्व हैं, क्योंकि कला आदि उसी में समा जाते हैं। और विद्याशक्ति में, परापर में भी, श्रीमान् लकुलेश आदि आचार्यों ने पाँच ब्रह्मों के सद्योजातत्व, अजातत्व, भवोद्भवत्व आदि धर्मों का सत्ताईस रूप होना ही कहा है।

पदपाठ तथाहि — क्योंकि · माया-पुं-प्रकृति-गुण-धी-प्रभृति धर-अन्तम् — माया, पुरुष, प्रकृति, गुण, बुद्धि आदि से लेकर पृथ्वी तक · सप्तविंशति-तत्त्वानि — सत्ताईस तत्त्व हैं · कला-आदीनां तत्र एव अन्तर्भावात् — क्योंकि कला आदि उसी में समा जाते हैं · विद्या-शक्तौ अपि परापरत्वे — और विद्याशक्ति में, परापर में भी · ब्रह्म-पञ्चकस्य — पाँच ब्रह्मों के · सद्यस्त्व-अजातत्व-भवोद्भवत्व-आदीनां धर्माणाम् — सद्योजातत्व, अजातत्व, भवोद्भवत्व आदि धर्मों का · सप्तविंशति-रूपत्वम् एव उक्तम् — सत्ताईस रूप होना ही कहा गया है · श्रीमत्-लकुलेश-आदि-पादैः — श्रीमान् लकुलेश आदि आचार्यों ने

परत्वेऽपि पञ्चशक्तिः हि परमेश्वरः, प्रतिशक्ति च पञ्चरूपता, एवं पञ्चविंशतिः शक्तयः, ताश्च अन्योन्यम् अनुद्भिन्नविभागा इत्येका शक्तिः, सा चानुद्भिन्नविभागा—इत्येवं सप्तविंशतिरूपया व्याप्त्या संविदग्नेः शिखां बुद्धिप्राणरूपां सकृदुच्चारमात्रेणैव बद्धां कुर्यात्—येन परमशिव एव प्रतिबद्धा तद्व्यतिरिक्तं न किंचिदभिधावति, तथाविधबुद्ध्यधिष्ठितकरणचक्रानुवेधेन पुरोवर्तिनो यागद्रव्यगृहदिगाधारादीनपि तन्मयीभूतान् कुर्यात्, ततोऽर्घपात्रमपि शिखाबन्धव्याप्त्यैव पूरयेत् पूजयेच्च, तद्विप्रुड्भिः स्थण्डिलान्यपि तद्रसेन वामानामाङ्गुष्ठयोगात् देहचक्रेषु मन्त्रचक्रं पूजयेत् तर्पयेत् च, ततः प्राणान्त॥१९.५॥ ततः स्थण्डिले त्रिशूलात्मकं शक्तित्रयान्तमासनं कल्पयेत्, मायान्तं हि सार्णे औकारे च शक्तित्रयान्तं तदुपरि याज्या विमर्शरूपा शक्तिः—इत्येवं सकृदुच्चारेणैव आधाराधेयन्यासं कृत्वा तत्रैव आधेयभूतायामपि संविदि विश्वं पश्येत्, तदपि च संविन्मयम्—इत्येवं विश्वस्य संविदा तेन च तस्याः संपुटीभावो भवति, संविद उदितं तत्रैव पर्यवसितं यतो विश्वं, वेद्याच्च संवित् उदेति तत्रैव च विश्राम्यति—इति एतावत्त्वं संवित्तत्त्वं संपुटीभावद्वयात् लभ्यते ।

पर में भी परमेश्वर पाँच शक्तियों वाला है, और हर शक्ति पाँच रूप वाली है; इस प्रकार पच्चीस शक्तियाँ। वे आपस में अविभक्त होकर एक शक्ति हैं, और वह भी अविभक्त है। इस प्रकार सत्ताईस रूप वाली व्याप्ति से संवित्-अग्नि की बुद्धि-प्राण-रूप शिखा को एक ही उच्चारण से बाँध दे, जिससे परमशिव में ही बँधी हुई वह उससे भिन्न किसी ओर नहीं दौड़ती। ऐसी बुद्धि से अधिष्ठित इन्द्रिय-चक्र के अनुवेध से सामने के याग-द्रव्य, घर, दिशाएँ, आधार आदि को भी उसी से भरा हुआ कर दे। फिर अर्घपात्र को भी शिखा-बन्ध की उसी व्याप्ति से भरे और पूजे; उसकी बूँदों से

स्थण्डिलों को भी; और उसके रस से, बाएँ हाथ की अनामिका और अँगूठे के योग से, देह के चक्रों में मन्त्र-चक्र को पूजे और तृप्त करे; फिर प्राण के भीतर। फिर स्थण्डिल पर त्रिशूल-रूप, तीन शक्तियों में समाप्त होने वाला आसन बनाए — क्योंकि स-वर्ण में वह माया तक और औकार में तीन शक्तियों तक है — और उसके ऊपर पूज्य विमर्श-रूप शक्ति है। इस प्रकार एक ही उच्चारण से आधार और आधेय का न्यास करके उसी आधेय-रूप संवित् में विश्व को देखे, और उसे भी संवित्-मय। इस प्रकार विश्व का संवित् से और संवित् का विश्व से संपुटीभाव होता है, क्योंकि विश्व संवित् से उदित होकर उसी में समाप्त होता है, और संवित् वेद्य से उदित होकर उसी में विश्राम पाती है। इस प्रकार इतना ही संवित्-तत्त्व दोनों संपुटीभावों से प्राप्त होता है।

पदपाठ परत्वे अपि — पर में भी · पञ्च-शक्तिः हि परमेश्वरः — परमेश्वर पाँच शक्तियों वाला है · प्रतिशक्ति च पञ्च-रूपता — और हर शक्ति पाँच रूप वाली है · एवं पञ्चविंशतिः शक्तयः — इस प्रकार पच्चीस शक्तियाँ · ताः च अन्योन्यम् अनुद्भिन्न-विभागाः इति एका शक्तिः — और वे आपस में अविभक्त होकर एक शक्ति हैं · सा च अनुद्भिन्न-विभागा — और वह भी अविभक्त है · इति एवं सप्तविंशति-रूपया व्याप्त्या — इस प्रकार सत्ताईस रूप वाली व्याप्ति से · संवित्-अग्नेः शिखां बुद्धि-प्राण-रूपाम् — संवित्-अग्नि की बुद्धि-प्राण-रूप शिखा को · सकृत्-उच्चार-मात्रेण एव बद्धां कुर्यात् — एक ही उच्चारण से बाँध दे · येन परमशिवे एव प्रतिबद्धा — जिससे परमशिव में ही बँधी हुई · तत्-व्यतिरिक्तं न किंचित् अभिधावति — वह उससे भिन्न किसी ओर नहीं दौड़ती · तथाविध-बुद्धि-अधिष्ठित-करण-चक्र-अनुवेधेन — ऐसी बुद्धि से अधिष्ठित इन्द्रिय-चक्र के अनुवेध से · पुरोवर्तिनः याग-द्रव्य-गृह-दिक्-आधार-आदीन् अपि — सामने के याग-द्रव्य, घर, दिशाएँ, आधार आदि को भी · तन्मयीभूतान् कुर्यात् — उसी से भरा हुआ कर दे · ततः अर्घ-पात्रम् अपि शिखा-बन्ध-व्याप्त्या एव पूरयेत् पूजयेत् च — फिर अर्घपात्र को भी शिखा-बन्ध की उसी व्याप्ति से भरे और पूजे · तत्-विप्रुड्भिः स्थण्डिलानि अपि — उसकी बूँदों से स्थण्डिलों को भी · तत्-रसेन वाम-अनामा-अङ्गुष्ठ-योगात् — उसके रस से, बाएँ हाथ की अनामिका और अँगूठे के योग से · देह-चक्रेषु मन्त्र-चक्रं पूजयेत् तर्पयेत् च — देह के चक्रों में मन्त्र-चक्र को पूजे और तृप्त करे · ततः प्राण-अन्तः — फिर प्राण के भीतर · ततः स्थण्डिले त्रिशूल-आत्मकं शक्ति-त्रय-अन्तम् आसनं कल्पयेत् — फिर स्थण्डिल पर त्रिशूल-रूप, तीन शक्तियों में समाप्त होने वाला आसन बनाए · माया-अन्तं

हि स-अर्णे औकारे च शक्ति-त्रय-अन्तम् — क्योंकि स-वर्ण में वह माया तक और औकार में तीन शक्तियों तक है · तत्-उपरि याज्या विमर्श-रूपा शक्तिः — उसके ऊपर पूज्य विमर्श-रूप शक्ति है · इति एवं सकृत्-उच्चारेण एव आधार-आधेय-न्यासं कृत्वा — इस प्रकार एक ही उच्चारण से आधार और आधेय का न्यास करके · तत्र एव आधेय-भूतायाम् अपि संविदि विश्वं पश्येत् — उसी आधेय-रूप संवित् में विश्व को देखे · तत् अपि च संवित्-मयम् — और उसे भी संवित्-मय · इति एवं विश्वस्य संविदा तेन च तस्याः संपुटीभावः भवति — इस प्रकार विश्व का संवित् से और संवित् का विश्व से संपुटीभाव होता है · संविदः उदितं तत्र एव पर्यवसितं यतः विश्वम् — क्योंकि विश्व संवित् से उदित होकर उसी में समाप्त होता है · वेद्यात् च संवित् उदेति तत्र एव च विश्राम्यति — और संवित् वेद्य से उदित होकर उसी में विश्राम पाती है · इति एतावत्त्वं संवित्-तत्त्वं संपुटीभाव-द्वयात् लभ्यते — इस प्रकार इतना ही संवित्-तत्त्व दोनों संपुटीभावों से प्राप्त होता है

तदुक्तम् 'सृष्टिं तु संपुटीकृत्य...।' इति ।
ततो गन्धधूपासवकुसुमादीन् आत्मप्रह्वीभावान्तान् अर्पयित्वा स्वविश्रान्त्या ५७.६
जप्त्वा उपसंहृत्य जले निक्षिपेत् ।
इति बाह्ययागः ।

जैसा कहा है: "सृष्टि को संपुटित करके..."। फिर गन्ध, धूप, आसव, फूल आदि अपने झुक जाने तक अर्पित करके, अपने में विश्रान्त होकर जप करके, उपसंहार करके जल में डाल दे। यह बाह्य याग है।

पदपाठ तत् उक्तम् — जैसा कहा है · 'सृष्टिं तु संपुटीकृत्य...' इति — "सृष्टि को संपुटित करके..." · ततः गन्ध-धूप-आसव-कुसुम-आदीन् — फिर गन्ध, धूप, आसव, फूल आदि · आत्म-प्रह्वीभाव-अन्तान् अर्पयित्वा — अपने झुक जाने तक अर्पित करके · स्व-विश्रान्त्या जप्त्वा — अपने में विश्रान्त होकर जप करके · उपसंहृत्य जले निक्षिपेत् — उपसंहार करके जल में डाल दे · इति बाह्य-यागः — यह बाह्य याग है

अथ शक्तौ, तत्र अन्योन्यं शक्तितालासावीराणाम्—उभयेषाम् उभयात्मकत्वेन प्रोल्लासप्रारम्भसृष्ट्यन्तशिवशक्तिप्रबोधे परस्परं व्यापारात्, परमेशनियत्या च शुद्धरूपतया तत्र प्राधान्यम्, एतेन च विशिष्टचक्रस्यापि शक्तित्वं व्याख्यातम्, तत्र शिखाबन्धव्याप्त्यैव पूजनं शक्तित्रयान्तमासनं ५७.७
कोणत्रये मध्ये विसर्गशक्तिः इति तु व्याप्तौ विशेषः ।
एवं स्वदेहे तत्रैव चक्रे ततो ब्रह्मरन्ध्राद्यनुचक्रेषु ।

अब शक्ति में। वहाँ शक्ति और वीर के आपस में, क्योंकि दोनों में दोनों का स्वरूप है, उल्लास के आरम्भ से सृष्टि के अन्त तक शिव-शक्ति के जागरण में दोनों एक-दूसरे पर क्रिया करते हैं; और परमेश्वर की नियति से, शुद्ध रूप होने से, वहाँ शक्ति की प्रधानता है। इससे विशिष्ट चक्र का शक्तित्व भी समझा दिया गया। वहाँ शिखा-बन्ध की उसी व्याप्ति से पूजन है; तीन कोणों में तीन शक्तियों तक का आसन, और मध्य में विसर्ग-शक्ति — व्याप्ति में बस इतना अन्तर है। ऐसे ही अपनी देह में, उसी चक्र में, फिर ब्रह्मरन्ध्र आदि अनुचक्रों में।

पदपाठ अथ शक्तौ — अब शक्ति में · तत्र अन्योन्यं शक्ति-ताला-सा-वीराणाम् — वहाँ शक्ति और वीर के आपस में · उभयेषाम् उभय-आत्मकत्वेन — क्योंकि दोनों में दोनों का स्वरूप है · प्रोल्लास-प्रारम्भ-सृष्टि-अन्त-शिव-शक्ति-प्रबोधे परस्परं व्यापारात् — क्योंकि उल्लास के आरम्भ से सृष्टि के अन्त तक शिव-शक्ति के जागरण में दोनों एक-दूसरे पर क्रिया करते हैं · परमेश-नियत्या च शुद्ध-रूपतया तत्र प्राधान्यम् — और परमेश्वर की नियति से, शुद्ध रूप होने से, वहाँ शक्ति की प्रधानता है · एतेन च विशिष्ट-चक्रस्य अपि शक्तित्वं व्याख्यातम् — इससे विशिष्ट चक्र का शक्तित्व भी समझा दिया गया · तत्र शिखा-बन्ध-व्याप्त्या एव पूजनम् — वहाँ शिखा-बन्ध की उसी व्याप्ति से पूजन है · शक्ति-त्रय-अन्तम् आसनं कोण-त्रये मध्ये विसर्ग-शक्तिः — तीन कोणों में तीन शक्तियों तक का आसन, और मध्य में विसर्ग-शक्ति · इति तु व्याप्तौ विशेषः — व्याप्ति में बस इतना अन्तर है · एवं स्वदेहे तत्र एव चक्रे — ऐसे ही अपनी देह में, उसी चक्र में · ततः ब्रह्मरन्ध्र-आदि-अनुचक्रेषु — फिर ब्रह्मरन्ध्र आदि अनुचक्रों में

— अथ यामले —

शक्तेर्लक्षणमेतत्
तद्वदभेदस्ततोऽनपेक्ष्य वयः ।
जात्यादींश्चासङ्गात् ५७
लोकेतरयुगलजं हि तादात्म्यम् ॥

शक्ति का लक्षण यह है: उसके साथ अभेद। इसलिए असंग होने से आयु, जाति आदि पर ध्यान नहीं दिया जाता; क्योंकि युगल से उत्पन्न तादात्म्य लोक से परे है।

पदपाठ शक्तेः — शक्ति का · लक्षणम् — लक्षण · एतत् — यह · तद्वत् — उसके साथ · अभेदः — अभेद · ततः — इसलिए · अनपेक्ष्य — ध्यान न देकर · वयः — आयु · जाति-आदीन् — जाति आदि · च — और · असङ्गात् — असंग होने से · लोक-इतर-युगल-जम् — लोक से परे युगल से उत्पन्न · हि — क्योंकि · तादात्म्यम् — तादात्म्य

कार्यहेतुसहोत्थत्वात्त्रैधं साक्षादथान्यथा ।
क्लृप्तावतो मिथोऽभ्यर्च्या तर्प्यानन्दान्तिकत्वतः ॥ ५८

कार्य से, कारण से, या साथ उत्पन्न होने से वह तीन प्रकार की है — साक्षात् या अन्य रीति से। ऐसा बन जाने पर दोनों एक-दूसरे को आनन्द की सीमा तक पूजें और तृप्त करें।

पदपाठ कार्य-हेतु-सह-उत्थत्वात् — कार्य से, कारण से, या साथ उत्पन्न होने से · त्रैधम् — तीन प्रकार की · साक्षात् — साक्षात् · अथ — या · अन्यथा — अन्य रीति से · क्लृप्तौ — ऐसा बन जाने पर · अतः — इसलिए · मिथः — एक-दूसरे को · अभ्यर्च्या — पूजने योग्य · तर्प्या — तृप्त करने योग्य · आनन्द-अन्तिकत्वतः — आनन्द की सीमा तक

चक्रमर्चेत्तदौचित्यादनुचक्रं तथानुगम् ।
बहिः पुष्पादिनान्तश्च गन्धभुक्त्यासवादिभिः ॥ ५९

चक्र को उसके औचित्य से पूजे, और वैसे ही उसके पीछे चलने वाले अनुचक्र को: बाहर फूल आदि से, और भीतर गन्ध, भोजन, आसव आदि से।

पदपाठ चक्रम् — चक्र को · अर्चेत् — पूजे · तत्-औचित्यात् — उसके औचित्य से · अनुचक्रम् — अनुचक्र को · तथा — वैसे ही · अनुगम् — उसके पीछे चलने वाले · बहिः — बाहर · पुष्प-आदिना — फूल आदि से · अन्तः — भीतर · च — और · गन्ध-भुक्ति-आसव-आदिभिः — गन्ध, भोजन, आसव आदि से

एवमानन्दसन्दोहितत्तच्चेष्टोच्छलत्स्थितिः ।
अनुचक्रगणश्चक्रतादात्म्यादभिलीयते ॥ ६०

इस प्रकार अनुचक्रों का समूह, आनन्द से भरी हर चेष्टा में उछलती हुई स्थिति वाला, चक्र के साथ तादात्म्य से लीन हो जाता है।

पदपाठ एवम् — इस प्रकार · आनन्द-सन्दोहित-तत्-तत्-चेष्टा-उच्छलत्-स्थितिः — आनन्द से भरी हर चेष्टा में उछलती हुई स्थिति वाला · अनुचक्र-गणः — अनुचक्रों का समूह · चक्र-तादात्म्यात् — चक्र के साथ तादात्म्य से · अभिलीयते — लीन हो जाता है

निजनिजभोगाभोग-
प्रविकासमयस्वरूपपरिमर्शे ।
क्रमशोऽनुचक्रदेव्यः ६१
संविच्चक्रं हि मध्यमं यान्ति ॥

जब हर एक अपने-अपने भोग के विस्तार के पूर्ण विकास-रूप स्वरूप को पहचानती है, तब अनुचक्रों की देवियाँ क्रम से मध्य के संवित्-चक्र में जाती हैं।

पदपाठ निज-निज-भोग-आभोग-प्रविकास-मय-स्वरूप-परिमर्शे — जब हर एक अपने-अपने भोग के विस्तार के पूर्ण विकास-रूप स्वरूप को पहचानती है · क्रमशः — क्रम से · अनुचक्र-देव्यः — अनुचक्रों की देवियाँ · संवित्-चक्रम् — संवित्-चक्र में · हि — ही · मध्यमम् — मध्य के · यान्ति — जाती हैं

अनुचक्रदेवतात्मक-
मरीचिगणपूरणाधिगतवीर्यम् ।
तच्छक्तितद्वदात्मक- ६२
मन्योन्यसमुन्मुखं भवति ॥

अनुचक्रों की देवता-रूप किरणों के समूह के भर जाने से वीर्य पाकर, शक्ति-रूप और शक्तिमान्-रूप एक-दूसरे के सम्मुख हो जाते हैं।

पदपाठ अनुचक्र-देवता-आत्मक-मरीचि-गण-पूरण-अधिगत-वीर्यम् — अनुचक्रों की देवता-रूप किरणों के समूह के भर जाने से वीर्य पाकर · तत्-शक्ति-तद्वत्-आत्मकम् — शक्ति-रूप और शक्तिमान्-रूप · अन्योन्य-समुन्मुखम् — एक-दूसरे के सम्मुख · भवति — हो जाता है

तद्युगलमूर्ध्वधाम-
प्रवेशसस्पन्दजातसंक्षोभम् ।
क्षुभ्नात्यनुचक्राण्यपि ६३
तानि तदा तन्मयानि न पृथक्तु ॥

वह युगल, ऊपर के धाम में प्रवेश के स्पन्द से उत्पन्न क्षोभ वाला, अनुचक्रों को भी क्षुब्ध करता है; तब वे उसी से भरे होते हैं, अलग नहीं।

पदपाठ तत्-युगलम् — वह युगल · ऊर्ध्व-धाम-प्रवेश-सस्पन्द-जात-संक्षोभम् — ऊपर के धाम में प्रवेश के स्पन्द से उत्पन्न क्षोभ वाला · क्षुभ्नाति — क्षुब्ध करता है · अनुचक्राणि — अनुचक्रों को · अपि — भी · तानि — वे · तदा — तब · तन्मयानि — उसी से भरे होते हैं · न — नहीं · पृथक् — अलग · तु — पर

इत्थं यामलमेतद्
गलितभिदासंकथं यदैव तदा ।
क्रमतारतम्ययोगात् ६४
सैव हि संविद्विसर्गसंघट्टः ॥

जब यह यामल इस प्रकार ऐसा हो जाता है कि भेद की बात गल गई है, तब क्रम के तारतम्य के योग से वही संवित् और विसर्ग का संघट्ट है।

पदपाठ इत्थम् — इस प्रकार · यामलम् — यामल · एतत् — यह · गलित-भिदा-संकथम् — जिसमें भेद की बात गल गई है · यदा — जब · एव — ही · तदा — तब · क्रम-तारतम्य-योगात् — क्रम के तारतम्य के योग से · सा — वही · एव — ही · हि — निश्चय · संवित्-विसर्ग-संघट्टः — संवित् और विसर्ग का संघट्ट

तद्ध्रुवधामानुत्तर-
मुभयात्मकजगदुदारमानन्दम् ।
नो शान्तं नाप्युदितं ६५
शान्तोदितसूतिकारणं परं कौलम् ॥

वह ध्रुव धाम है, अनुत्तर, दोनों स्वरूपों वाले जगत् से उदार आनन्द — न शान्त, न ही उदित, शान्त और उदित के जन्म का कारण, परम कौल।

पदपाठ तत् — वह · ध्रुव-धाम — ध्रुव धाम · अनुत्तरम् — अनुत्तर · उभय-आत्मक-जगत्-उदारम् — दोनों स्वरूपों वाले जगत् से उदार · आनन्दम् — आनन्द · नो — न · शान्तम् — शान्त · न — न · अपि — ही · उदितम् — उदित · शान्त-उदित-सूति-कारणम् — शान्त और उदित के जन्म का कारण · परम् — परम · कौलम् — कौल

अनवच्छिन्नपदेप्सु-
स्तां संविदमात्मसात्कुर्यात् ।
शान्तोदितात्मकद्वय- ६६
मथ युगपदुदेति शक्तिशक्तिमतोः ॥

असीम पद का इच्छुक उस संवित् को अपना बना ले। तब शान्त और उदित का युगल शक्ति और शक्तिमान् में एक साथ उदय होता है।

पदपाठ अनवच्छिन्न-पद-ईप्सुः — असीम पद का इच्छुक · ताम् — उस · संविदम् — संवित् को · आत्मसात् — अपना · कुर्यात् — बना ले · शान्त-उदित-आत्मक-द्वयम् — शान्त और उदित का युगल · अथ — तब · युगपत् — एक साथ · उदेति — उदय होता है · शक्ति-शक्तिमतोः — शक्ति और शक्तिमान् में

स्वात्मान्योन्यावेशात्
शान्तान्यत्वे द्वयोर्द्वयात्मत्वात् ।
शक्तिस्तु तद्वदुदितां
सृष्टिं पुष्णाति नो तद्वान् ॥ ६७

क्योंकि हर एक दूसरे के आत्मा में प्रविष्ट होता है, और शान्त और उससे अन्य में दोनों का दोनों का स्वरूप है, इसलिए शक्ति उदित सृष्टि को उसी की तरह पुष्ट करती है — पर शक्तिमान् नहीं।

पदपाठ स्व-आत्म-अन्योन्य-आवेशात् — क्योंकि हर एक दूसरे के आत्मा में प्रविष्ट होता है · शान्त-अन्यत्वे — शान्त और उससे अन्य में · द्वयोः — दोनों के · द्वय-आत्मत्वात् — दोनों का स्वरूप होने से · शक्तिः — शक्ति · तु — पर · तद्वत् — उसी की तरह · उदिताम् — उदित · सृष्टिम् — सृष्टि को · पुष्णाति — पुष्ट करती है · नो — नहीं · तद्वान् — शक्तिमान्

तस्यां चार्यं कुलमथ
तया नृषु प्रोक्तयोगसंघट्टात् ।
अथ सृष्टे द्वितयेऽस्मिन्
शान्तोदितधाम्नि येऽनुसंदधते ॥ ६८

और उसमें आर्य कुल है; फिर उसके द्वारा, कहे हुए योग के संघट्ट से, वह मनुष्यों में है। फिर शान्त और उदित के धाम में इस युगल के सृष्ट होने पर जो अनुसंधान करते हैं —

पदपाठ तस्याम् — उसमें · च — और · आर्यम् — आर्य · कुलम् — कुल · अथ — फिर · तया — उसके द्वारा · नृषु — मनुष्यों में · प्रोक्त-योग-संघट्टात् — कहे हुए योग के संघट्ट से · अथ — फिर · सृष्टे — सृष्ट होने पर · द्वितये — युगल के · अस्मिन् — इस · शान्त-उदित-धाम्नि — शान्त और उदित के धाम में · ये — जो · अनुसंदधते — अनुसंधान करते हैं

प्राच्यां विसर्गसत्ता-
मनवच्छिदिते पदे रूढाः ।
उदितं च मिथो वक्त्रात्
मुख्याद्वक्त्रे प्रगृह्यते च बहिः ॥ ६९

— वे विसर्ग की पहली सत्ता, असीम पद में जड़ जमाए हुए हैं। और उदित को एक-दूसरे से, मुख्य मुख से मुख में, और बाहर भी ग्रहण किया जाता है।

पदपाठ प्राच्याम् — पहली · विसर्ग-सत्ताम् — विसर्ग की सत्ता में · अनवच्छिदिते — असीम · पदे — पद में · रूढाः — जड़ जमाए हुए हैं · उदितम् — उदित · च — और · मिथः — एक-दूसरे से · वक्त्रात् — मुख से · मुख्यात् — मुख्य · वक्त्रे — मुख में · प्रगृह्यते — ग्रहण किया जाता है · च — और · बहिः — बाहर

तृप्तं देवीचक्रं
सिद्धिज्ञानापवर्गदं भवति ।
शान्ताभ्यासे शान्तं
शिवमेति यदत्र देवताचक्रम् ॥ ७०

तृप्त देवी-चक्र सिद्धि, ज्ञान और मोक्ष देने वाला हो जाता है। शान्त के अभ्यास में यहाँ जो देवता-चक्र है, वह शान्त होकर शिव को प्राप्त होता है।

पदपाठ तृप्तम् — तृप्त · देवी-चक्रम् — देवी-चक्र · सिद्धि-ज्ञान-अपवर्ग-दम् — सिद्धि, ज्ञान और मोक्ष देने वाला · भवति — हो जाता है · शान्त-अभ्यासे — शान्त के अभ्यास में · शान्तम् — शान्त होकर · शिवम् — शिव को · एति — प्राप्त होता है · यत् — जो · अत्र — यहाँ · देवता-चक्रम् — देवता-चक्र

शून्यं निरानन्दमयं
निर्वृतिनिजधामतोऽर्घं च ।
रणरणकरसान्निजरस-
भरितबहिर्भावचर्वणरसेन ॥ ७१

निरानन्द-मय शून्य, और निर्वृति के अपने धाम से अर्घ; उत्कण्ठा के रस से, अपने रस से भरे बाहरी भावों के चर्वण के रस से —

पदपाठ शून्यम् — शून्य · निरानन्द-मयम् — निरानन्द-मय · निर्वृति-निज-धामतः — निर्वृति के अपने धाम से · अर्घम् — अर्घ · च — और · रणरणक-रसात् — उत्कण्ठा के रस से · निज-रस-भरित-बहिर्भाव-चर्वण-रसेन — अपने रस से भरे बाहरी भावों के चर्वण के रस से

आन्तरपूर्णसमुच्छल-
दनुचक्रं याति चक्रमथ तदपि ।
उच्छलति प्राग्वदिति
त्रिविधोऽन्वर्थो विसर्गोऽयम् ॥ ७२

— अनुचक्र, भीतर से पूर्ण होकर उछलता हुआ, चक्र में जाता है; फिर वह भी पहले की तरह उछलता है। इस प्रकार यह विसर्ग तीन प्रकार का है, नाम के अनुरूप।

पदपाठ आन्तर-पूर्ण-समुच्छलत् — भीतर से पूर्ण होकर उछलता हुआ · अनुचक्रम् — अनुचक्र · याति — जाता है · चक्रम् — चक्र में · अथ — फिर · तत् — वह · अपि — भी · उच्छलति — उछलता है · प्राग्वत् — पहले की तरह · इति — इस प्रकार · त्रिविधः — तीन प्रकार का · अन्वर्थः — नाम के अनुरूप · विसर्गः — विसर्ग · अयम् — यह

एतद्विसर्गधामनि
परिमर्शनतस्त्रिधैव मनुवीर्यम् ।
तत्तत्संविद्गर्भे
मन्त्रस्तत्तत्फलं सूते ॥ ७३

इस विसर्ग के धाम में परिमर्श से मन्त्र का वीर्य तीन प्रकार का ही है; उस-उस संवित् के गर्भ में मन्त्र उस-उस फल को जन्म देता है।

पदपाठ एतत्-विसर्ग-धामनि — इस विसर्ग के धाम में · परिमर्शनतः — परिमर्श से · त्रिधा — तीन प्रकार का · एव — ही · मनु-वीर्यम् — मन्त्र का वीर्य · तत्-तत्-संवित्-गर्भे — उस-उस संवित् के गर्भ में · मन्त्रः — मन्त्र · तत्-तत्-फलम् — उस-उस फल को · सूते — जन्म देता है

कोणत्रयान्तराश्रित-
नित्योदितमङ्गलच्छदे कमले ।
नित्याविद्युतं नालं
षोडशदलकमलसन्मूलम् ॥ ७४

जिस कमल के नित्य उदित मंगल दल तीन कोणों के भीतर टिके हैं, उसमें कभी अलग न होने वाला नाल है, जिसका सच्चा मूल सोलह दल का कमल है।

पदपाठ कोण-त्रय-अन्तर-आश्रित-नित्य-उदित-मङ्गल-छदे — जिसके नित्य उदित मंगल दल तीन कोणों के भीतर टिके हैं · कमले — कमल में · नित्य-अवियुतम् — कभी अलग न होने वाला · नालम् — नाल · षोडश-दल-कमल-सत्-मूलम् — जिसका सच्चा मूल सोलह दल का कमल है

मध्यस्थनालगुम्फित-
सरोजयुगघट्टनक्रमादग्नौ ।
मध्यस्थपूर्णशशधर-
सुन्दरदिनकरकरौघसंघट्टात् ॥ ७५

अग्नि में, मध्य के नाल में गुँथे कमल-युगल के क्रमशः घर्षण से, मध्य के पूर्ण चन्द्र और सुन्दर सूर्य की किरण-राशि के संघट्ट से —

पदपाठ मध्यस्थ-नाल-गुम्फित-सरोज-युग-घट्टन-क्रमात् — मध्य के नाल में गुँथे कमल-युगल के क्रमशः घर्षण से · अग्नौ — अग्नि में · मध्यस्थ-पूर्ण-शशधर-सुन्दर-दिनकर-कर-ओघ-संघट्टात् — मध्य के पूर्ण चन्द्र और सुन्दर सूर्य की किरण-राशि के संघट्ट से

त्रिदलारुणवीर्यकला-
सङ्गान्मध्येऽङ्कुरसृष्टिः ।
इति शशधरवासरपति-
चित्रगुसंघट्टमुद्रया झटिति ॥ ७६

— तीन दलों में लाल वीर्य-कला के संग से मध्य में अंकुर की सृष्टि होती है। इस प्रकार चन्द्र, सूर्य और अग्नि के संघट्ट की मुद्रा से झट से —

पदपाठ त्रिदल-अरुण-वीर्य-कला-सङ्गात् — तीन दलों में लाल वीर्य-कला के संग से · मध्ये — मध्य में · अङ्कुर-सृष्टिः — अंकुर की सृष्टि होती है · इति — इस प्रकार · शशधर-वासरपति-चित्रगु-संघट्ट-मुद्रया — चन्द्र, सूर्य और अग्नि के संघट्ट की मुद्रा से · झटिति — झट से

सृष्ट्यादिक्रममन्तः
कुर्वंस्तुर्ये स्थितिं लभते ।
एतत्खेचरमुद्रा-
वेशेऽन्योन्यं स्वशक्तिशक्तिमतोः ॥ ७७

— सृष्टि आदि के क्रम को भीतर करता हुआ तुरीय में स्थिति पाता है। यह अपनी शक्ति और शक्तिमान् के परस्पर खेचरी मुद्रा के आवेश में होता है।

पदपाठ सृष्टि-आदि-क्रमम् — सृष्टि आदि के क्रम को · अन्तः — भीतर · कुर्वन् — करता हुआ · तुर्ये — तुरीय में · स्थितिम् — स्थिति · लभते — पाता है · एतत् — यह · खेचर-मुद्रा-आवेशे — खेचरी मुद्रा के आवेश में · अन्योन्यम् — परस्पर · स्व-शक्ति-शक्तिमतोः — अपनी शक्ति और शक्तिमान् के

पानोपभोगलीला-
हासादिषु यो भवेद्विमर्शमयः ।
अव्यक्तध्वनिराव-
स्फोटश्रुतिनादनादान्तैः ॥ ७८

जो पान, उपभोग, लीला, हास आदि में विमर्श-मय हो जाता है — अव्यक्त ध्वनि, राव, स्फोट, श्रुति, नाद और नादान्त से,

---

पदपाठ पान-उपभोग-लीला-हास-आदिषु — पान, उपभोग, लीला, हास आदि में · यः — जो · भवेत् — हो जाता है · विमर्श-मयः — विमर्श-मय · अव्यक्त-ध्वनि-राव-स्फोट-श्रुति-नाद-नादान्तैः — अव्यक्त ध्वनि, राव, स्फोट, श्रुति, नाद और नादान्त से

अव्युच्छिन्नानाहत-
परमार्थैर्मन्त्रवीर्यं तत् ।
गमनागमविश्रान्तिषु
कर्णे नयने द्विलक्ष्मसंपर्के ॥ ७९

अखण्ड, अनाहत, परमार्थ-रूप — वह मन्त्र का वीर्य है। जाने, आने और विश्राम में; कान में, आँख में, दो चिह्नों के मिलन में;

पदपाठ अव्युच्छिन्न-अनाहत-परमार्थैः — अखण्ड, अनाहत, परमार्थ-रूप · मन्त्र-वीर्यम् — मन्त्र का वीर्य · तत् — वह · गमन-आगम-विश्रान्तिषु — जाने, आने और विश्राम में · कर्णे — कान में · नयने — आँख में · द्वि-लक्ष्म-संपर्के — दो चिह्नों के मिलन में

तत्संमीलनयोगे
देहान्ताख्ये च यामले चक्रे ।
कुचमध्यहृदयदेशा-
दोष्ठान्ते कण्ठगं यदव्यक्तम् ॥ ८०

उनके मिल जाने के योग में, और देहान्त नामक यामल चक्र में; जो अव्यक्त स्तनों के बीच हृदय-प्रदेश से ओठों के अन्त तक कण्ठ में रहता है —

पदपाठ तत्-संमीलन-योगे — उनके मिल जाने के योग में · देह-अन्त-आख्ये — देहान्त नामक · च — और · यामले — यामल · चक्रे — चक्र में · कुच-मध्य-हृदय-देशात् — स्तनों के बीच हृदय-प्रदेश से · ओष्ठ-अन्ते — ओठों के अन्त तक · कण्ठ-गम् — कण्ठ में रहने वाला · यत् — जो · अव्यक्तम् — अव्यक्त

तच्चक्रद्वयमध्यग-
माकर्ण्य क्षोभविगमसमये यत् ।
निर्वान्ति तत्र चैवं ८१
योऽष्टविधो नादभैरवः परमः ॥

दोनों चक्रों के बीच रहने वाले उस अव्यक्त को क्षोभ के शान्त होने के समय सुनकर वे वहाँ शान्त हो जाते हैं। और इस प्रकार यह आठ प्रकार का परम नादभैरव है।

पदपाठ तत् — उसे · चक्र-द्वय-मध्यगम् — दोनों चक्रों के बीच रहने वाला · आकर्ण्य — सुनकर · क्षोभ-विगम-समये — क्षोभ के शान्त होने के समय · यत् — जो · निर्वान्ति — शान्त हो जाते हैं · तत्र — वहाँ · च — और · एवम् — इस प्रकार · यः — जो · अष्ट-विधः — आठ प्रकार का · नाद-भैरवः — नादभैरव · परमः — परम

ज्योतिर्ध्वनिश्च यस्मात्
सा मान्त्री व्याप्तिरुच्यते परमा ।
एवं कर्मणि कर्मणि
विदुषः स्याज्जीवतो मुक्तिः । ८२
तज्ज्ञः शास्त्रे मुक्तः
परकुलविज्ञानभाजनं गर्भः ॥

क्योंकि वह ज्योति और ध्वनि है, इसलिए वह मन्त्र की परम व्याप्ति कही जाती है। इस प्रकार जानने वाले की हर कर्म में जीते हुए मुक्ति होती है। उसे जानने वाला शास्त्र के अनुसार मुक्त है; उसका गर्भ भी परम कुल के विज्ञान का पात्र है।

पदपाठ ज्योतिः — ज्योति · ध्वनिः — ध्वनि · च — और · यस्मात् — क्योंकि · सा — वह · मान्त्री — मन्त्र की · व्याप्तिः — व्याप्ति · उच्यते — कही जाती है · परमा — परम · एवम् — इस प्रकार · कर्मणि कर्मणि — हर कर्म में · विदुषः — जानने वाले की · स्यात् — होती है · जीवतः — जीते हुए · मुक्तिः — मुक्ति · तत्-ज्ञः — उसे जानने वाला · शास्त्रे — शास्त्र में · मुक्तः — मुक्त है · पर-कुल-विज्ञान-भाजनम् — परम कुल के विज्ञान का पात्र · गर्भः — गर्भ

शून्याशून्यालयं कुर्यादिकदण्डेऽनलानिलौ ।
शूलं समरसीकृत्य रसे रसमिव स्थितम् ॥ ८३

एक दण्ड में अग्नि और वायु को शून्य और अशून्य का आलय बनाए, शूल को समरस करके, रस में रस की तरह स्थित।

पदपाठ शून्य-अशून्य-आलयम् — शून्य और अशून्य का आलय · कुर्यात् — बनाए · एक-दण्डे — एक दण्ड में · अनल-अनिलौ — अग्नि और वायु को · शूलम् — शूल को · समरसीकृत्य — समरस करके · रसे — रस में · रसम् — रस · इव — की तरह · स्थितम् — स्थित

त्यक्ताशङ्को निराचारो नाहमस्मीति भावयन् ।
देहस्था देवताः पश्यन् ह्लादोद्वेगादि चिद्घने ॥ ८४

शंका छोड़कर, आचार से रहित, "मैं नहीं हूँ" ऐसी भावना करता हुआ, देह में स्थित देवताओं को देखता हुआ, हर्ष, उद्वेग आदि को चिद्घन में देखता हुआ,

पदपाठ त्यक्त-आशङ्कः — शंका छोड़कर · निराचारः — आचार से रहित · न — नहीं · अहम् — मैं · अस्मि — हूँ · इति — ऐसा · भावयन् — भावना करता हुआ · देह-स्थाः — देह में स्थित · देवताः — देवताओं को · पश्यन् — देखता हुआ · ह्लाद-उद्वेग-आदि — हर्ष, उद्वेग आदि को · चित्-घने — चिद्घन में

कर्णाक्षिमुखनासादिचक्रस्थं देवतागणम् ।
ग्रहीतारं सदा पश्यन् खेचर्या सिध्यति ध्रुवम् ॥ ८५

कान, आँख, मुख, नाक आदि के चक्रों में स्थित देवता-समूह को सदा ग्रहण करने वाले के रूप में देखता हुआ — वह खेचरी से निश्चय सिद्ध होता है।

पदपाठ कर्ण-अक्षि-मुख-नासा-आदि-चक्र-स्थम् — कान, आँख, मुख, नाक आदि के चक्रों में स्थित · देवता-गणम् — देवता-समूह को · ग्रहीतारम् — ग्रहण करने वाले के रूप में · सदा — सदा · पश्यन् — देखता हुआ · खेचर्या — खेचरी से · सिध्यति — सिद्ध होता है · ध्रुवम् — निश्चय

श्वभ्रे सुदूरे झटिति स्वदेहं
संपातयन्वासमसाहसेन ।
आकुञ्च्य हस्तद्वितयं प्रपश्यन्
मुद्रामिमां व्योमचरीं भजेत ॥ ८६

अपनी देह को झट से बहुत गहरे गड्ढे में गिराता हुआ, बिना उतावली के वहाँ वास करता हुआ, दोनों हाथ सिकोड़कर देखता हुआ — इस व्योमचरी मुद्रा को अपनाए।

पदपाठ श्वभ्रे — गड्ढे में · सुदूरे — बहुत गहरे · झटिति — झट से · स्व-देहम् — अपनी देह को · संपातयन् — गिराता हुआ · वासम् — वास · असाहसेन — बिना उतावली के · आकुञ्च्य — सिकोड़कर · हस्त-द्वितयम् — दोनों हाथ · प्रपश्यन् — देखता हुआ · मुद्राम् — मुद्रा को · इमाम् — इस · व्योमचरीम् — व्योमचरी · भजेत — अपनाए

इत्येष यामलयागः ।
उक्तव्याप्तिके प्राणे विश्वमये प्रोक्तसंविद्व्याप्त्या तर्पणान्नगन्धधूपादिसमर्पणेन ८७.१
उपोद्बलनं प्राणयागः ।
विश्रान्तिरूढिस्तु संविद्यागः प्रागेव निरूपितः ।

यह यामल-याग है। कही हुई व्याप्ति वाले, विश्वमय प्राण में, कही हुई संवित् की व्याप्ति से, तर्पण, अन्न, गन्ध, धूप आदि समर्पित करके उसे पुष्ट करना प्राण-याग है। और विश्रान्ति में जड़ जमाना संवित्-याग है, जो पहले ही बताया गया है।

पदपाठ इति एषः यामल-यागः — यह यामल-याग है · उक्त-व्याप्तिके प्राणे विश्व-मये — कही हुई व्याप्ति वाले, विश्वमय प्राण में · प्रोक्त-संवित्-व्याप्त्या — कही हुई संवित् की व्याप्ति से · तर्पण-अन्न-गन्ध-धूप-आदि-समर्पणेन — तर्पण, अन्न, गन्ध, धूप आदि समर्पित करके · उपोद्बलनं प्राण-यागः — उसे पुष्ट करना प्राण-याग है · विश्रान्ति-रूढिः तु संवित्-यागः — और विश्रान्ति में जड़ जमाना संवित्-याग है · प्राक् एव निरूपितः — जो पहले ही बताया गया है

एवम् एतेभ्यो यागेभ्योऽन्यतमं कृत्वा यदि तथाविधनिर्विचिकित्सतापवित्रितहृदयः शिष्यो भवति तदा तस्मै तद्यागदर्शनपूर्वकं तिलाज्याहुतिपूर्वकनिरपेक्षमेव पूर्वोक्तव्याप्त्या अनुसंधानक्रमेण अवलोकनया दीक्षां कुर्यात्, परोक्षदीक्षादिके नैमित्तिकान्ते तु पूर्व एव विधिः—केवलम् एतद्यागप्रधानतया इति । गुरुशरीरे सप्तमः कुलयागः सर्वोत्तमः, सोऽपि प्राग्यागसाहित्येन सकृदेव कृतः सर्वं पूरयति इति शिवम् ॥

इस प्रकार इन यागों में से कोई एक करके, यदि ऐसी निःसंशयता से पवित्र हृदय वाला शिष्य हो, तब उसे वह याग दिखाने के बाद, तिल और घी की आहुति की अपेक्षा के बिना ही, पहले कही व्याप्ति से अनुसंधान के क्रम से अवलोकन से दीक्षा दे। पर परोक्ष-दीक्षा आदि से नैमित्तिक तक में पहले वाली ही विधि है, बस इस याग की प्रधानता से। गुरु-शरीर में सातवाँ कुलयाग सबसे उत्तम है; वह भी पहले यागों के साथ एक बार भी किया जाए तो सब पूरा कर देता है। इति शिवम्।

पदपाठ एवम् एतेभ्यः यागेभ्यः अन्यतमं कृत्वा — इस प्रकार इन यागों में से कोई एक करके · यदि तथाविध-निर्विचिकित्सता-पवित्रित-हृदयः शिष्यः भवति — यदि ऐसी निःसंशयता से पवित्र हृदय वाला शिष्य हो · तदा तस्मै तत्-याग-दर्शन-पूर्वकम् — तब उसे वह याग दिखाने के बाद · तिल-आज्य-आहुति-पूर्वक-निरपेक्षम् एव — तिल और घी की आहुति की अपेक्षा के बिना ही · पूर्व-उक्त-व्याप्त्या अनुसंधान-क्रमेण — पहले कही व्याप्ति से अनुसंधान के क्रम से · अवलोकनया दीक्षां कुर्यात् — अवलोकन से दीक्षा दे · परोक्ष-दीक्षा-आदिके नैमित्तिक-अन्ते तु — पर परोक्ष-दीक्षा आदि से नैमित्तिक तक में · पूर्वः एव विधिः — पहले वाली ही विधि है · केवलम् एतत्-याग-प्रधानतया इति — बस इस याग की प्रधानता से · गुरु-शरीरे सप्तमः कुल-यागः सर्वोत्तमः — गुरु-शरीर में सातवाँ कुलयाग सबसे उत्तम है · सः अपि प्राक्-याग-साहित्येन सकृत् एव कृतः — वह भी पहले यागों के साथ एक बार भी किया जाए तो · सर्वं पूरयति — सब पूरा कर देता है · इति शिवम् — इति शिवम्

बाहोरि सत्तिदेहिणि अदेह
इजामलि पाणबुद्धिगुरुबोधइ ।
जो अणुसंविदि सन्धि अरोह
इसो पर इक्कुल लद्धणि सोहइ ॥

८७.३

बाहर, शक्ति में, देह में, अदेह में, यामल में, प्राण, बुद्धि और गुरु के बोध में — जो संवित् में इनकी सन्धि पर चढ़ता है, वह परम एक कुल को पाकर शोभित होता है।

पदपाठ बाहोरि सत्तिदेहिणि अदेह — बाहर, शक्ति में, देह में, अदेह में · इजामलि पाणबुद्धिगुरुबोधइ — यामल में, प्राण, बुद्धि और गुरु के बोध में · जो अणुसंविदि सन्धि अरोह — जो संवित् में इनकी सन्धि पर चढ़ता है · इसो पर इक्कुल लद्धणि सोहइ — वह परम एक कुल को पाकर शोभित होता है

इत्थं षडर्धक्रमसंप्रदायं
सप्रत्ययाप्रत्ययभिन्नमाप्य ।
श्रीशंभुनाथात्करुणारसेन
स्वयं प्रसन्नादनपेक्षवृत्त्या ॥

८७

इस प्रकार श्रद्धालु और अश्रद्धालु दोनों से भिन्न त्रिक-क्रम की परम्परा को श्रीशम्भुनाथ से पाकर — जो करुणा के रस से स्वयं प्रसन्न थे, बिना किसी अपेक्षा के —

पदपाठ इत्थम् — इस प्रकार · षडर्ध-क्रम-संप्रदायम् — त्रिक-क्रम की परम्परा को · सप्रत्यय-अप्रत्यय-भिन्नम् — श्रद्धालु और अश्रद्धालु दोनों से भिन्न · आप्य — पाकर · श्री-शंभुनाथात् — श्रीशम्भुनाथ से · करुणा-रसेन — करुणा के रस से · स्वयम् — स्वयं · प्रसन्नात् — प्रसन्न · अनपेक्ष-वृत्त्या — बिना किसी अपेक्षा के

काश्मीरिकोऽभिनवगुप्तपदाभिधानः
श्रीतन्त्रसारमकरोदृजुना क्रमेण ।
यत्तेन सर्वजन एष शिवं प्रयातु
लोकोत्तरप्रसरशांभवतन्त्रसारम् ॥ ८८

कश्मीर के अभिनवगुप्त नाम वाले ने यह श्रीतन्त्रसार सीधे क्रम से रचा, ताकि उससे सब लोग शिव को — लोक से परे फैलने वाले शाम्भव तन्त्रों के सार को — पहुँचें।

पदपाठ काश्मीरिकः — कश्मीर का · अभिनवगुप्त-पद-अभिधानः — अभिनवगुप्त नाम वाला · श्री-तन्त्रसारम् — श्रीतन्त्रसार को · अकरोत् — रचा · ऋजुना — सीधे · क्रमेण — क्रम से · यत् — ताकि · तेन — उससे · सर्व-जनः — सब लोग · एषः — यह · शिवम् — शिव को · प्रयातु — पहुँचें · लोकोत्तर-प्रसर-शांभव-तन्त्र-सारम् — लोक से परे फैलने वाले शाम्भव तन्त्रों के सार को

कृतिस्तत्रभवच्छ्रीमन्महामाहेश्वराचार्यवर्यश्रीमदभिनवगुप्तपादानाम् ॥ ८८.१

पूज्य, श्रीमान्, महामाहेश्वर, आचार्यश्रेष्ठ, श्रीमद् अभिनवगुप्तपाद की रचना।

पदपाठ कृतिः — रचना · तत्रभवत्-श्रीमत्-महामाहेश्वर-आचार्यवर्य-श्रीमत्-अभिनवगुप्त-पादानाम् — पूज्य, श्रीमान्, महामाहेश्वर, आचार्यश्रेष्ठ, श्रीमद् अभिनवगुप्तपाद की

इति श्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचिते तन्त्रसारे कुलयागप्रकाशनं नाम द्वाविंशमाह्निकम् ॥ २२ ॥

आचार्य अभिनवगुप्त-रचित तन्त्रसार में कुलयागप्रकाशन नामक बाईसवाँ आह्निक समाप्त हुआ।